गोपाल कवि

कृत

रीतिकालीन साहित्य के वैविध्य में

दंपति वाक्य विलास

राजकीय महाविद्यालय कोटा
53053
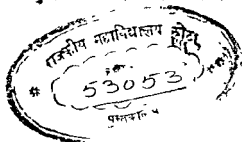
संपादक

डा० चन्द्रभान रावत

[हिन्दी विभागध्यक्ष, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान]

डा० राम कुमार खंडेलवाल

[रीडर, हिन्दी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद]

प्रकाशक

हिन्दी अकादमी

हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)

क्रमणिका

राष्ट्रीय पुस्तकालय

आभार

रीतिकालीन साहित्य के वैविध्य की चर्चा प्रायः रीतिकाल के मर्मज्ञ विद्वानों ने की है। 'दंपति वाक्य विलास' उसी मत को अपने ढंग से सिद्ध करने वाली रचना है। इसको इस रूप में प्रस्तुत करने में अनेक सूत्रों का संगठन हुआ है। उन सभी सूत्रों का महत्व है, हम सभी के प्रति आभारी हैं।

सबसे पहले हम वृन्दावन स्थित श्रीरंग जी के मन्दिर के गद्दीनशीन स्वामी श्री रंगाचार्यजी महाराज के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। इस ग्रंथ की सबसे बड़ी प्रति श्री रंगलक्ष्मी पुस्तकालय वृंदावन में ही है। श्री रंगाचार्यजी की कृपा से वह पाठ-शोधन के लिए प्राप्त हो सकी। उनकी इस कृपा के बिना इसका संपादन-कार्य किस प्रकार पूर्ण नहीं होता।

जब इस ग्रंथ का प्रकाशन निश्चित हो गया, तब हमने स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल को पत्र लिखा कि वे ज्ञानकोशों की संस्कृत, प्राकृत, और आधुनिक भाषाओं की परम्परा को स्पष्ट करते हुए एक विशद् भूमिका लिखें, और आपने भूमिका लिखना स्वीकार भी कर लिया था। उन्होंने पत्र लिखा
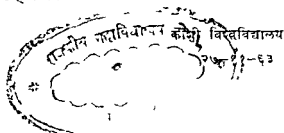
प्रिय श्री चन्द्रभान जी,

'दंपति वाक्य विलास' पुस्तक की सामग्री रोचक जान पड़ती है। आप अवश्य सम्पादन करें। जब मुद्रित फार्म भेजेंगे, मैं भूमिका लिख दूंगा।

शुभेच्छु
वासुदेव शरण

और हमें खेद है कि मुद्रण-कार्य टलता गया। हम एक दिग्गज पारखी से भूमिका का प्रसाद न ले सके। परिणामत पुस्तक उनकी भूमिका के बिना ही प्रस्तुत की जा रही है। उनके प्रोत्साहन की गूंज तो बनी ही रही। सामग्री पर उनकी छाप तो लग ही गई। हम इस के लिए उस दिवंगत आत्मा के प्रति ऋणी हैं।

योजना यह भी थी कि हम श्री प्रभुदयालजी मीतल से कवि के जीवन संबंधी एक लेख लिखवा कर इस पुस्तक में दे दें। मीतलजी ने कवि का कुछ परिचय 'चैतन्यमत और व्रज साहित्य' में दिया है। साथ ही आपने 'दंपतिवाक्यविलास' पर एक लेख भी लिखा है। हमारे पूछ ने पर उन्होंने कवि के संबंध में महत्वपूर्ण सूचनाएं भी दी। इन सभी अन्तर्बाह्य सूत्रों के आधार पर कवि का परिचय प्रस्तुत किया गया है। श्री मीतलजी के सहयोग का मूल्य हम हृदय से स्वीकार करते हैं।

श्री अगर चन्द नाहटा का सहयोग भी कम महत्वपूर्ण नहीं रहा। आपने ही हमारा ध्यान इस ग्रंथ की मुद्रित प्रतियों की ओर

आकर्षित किया । आपने हमे उसकी मुद्रित प्रति दिलवाई भी, साथ ही कुछ अन्य प्रतियो की सूचना भी दी । 'सरस्वती' मे आपने इस ग्रथ पर एक लेख भी लिखा ।

हम हिन्दी अकादमी के उन सभी सदस्यो के प्रति अपना आभार प्रकट करते है, जिन्होंने इस ग्रथ के प्रकाशन का भार स्वीकार किया ।

व्रज-भाषा के मर्मज्ञ विद्वान तथा कवि प० मधुसूदनजी चतुर्वेदी आचार्य सर बसी लाल बालिका विद्यालय, हैदराबाद के प्रति आभार प्रकट करने के लिए हमारे पास शब्द नहीं है । हिन्दी अकादमी के मत्री होने के नाते उन्होने प्रकाशन की पूरी व्यवस्था की तथा प्रूफ सशोधन मे बहुत सहायता दी । सपादन मे भी उनके व्रज-भाषा ज्ञान का हमने पूरा लाभ उठाया तथा उनके अमूल्य सुझावो को अपनाया ।

अकादमी के अध्यक्ष श्री वासुदेव नाईक, उपाध्यक्ष डॉ० राम निरजन पाडेय (प्रोफेसर व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय), तथा अन्य स्थायी सदस्य डॉ० राज किशोर पाडेय, डॉ० गया प्रसादजी शास्त्री, श्री बैज नाथ जी चतुर्वेदी, श्री ऋमुदेवशर्मा तथा श्रीमती शैलबालजी आदि के हम बहुत आभारी हैं, जिनकी सहायता से पुस्तक प्रकाशित होसकी ।

अत मे हम उन सभी के प्रति आभारी है जिनसे हमने इस कार्य मे मार्ग दर्शन एव सहयोग प्राप्त किया ।

चन्द्रभान रावत

दीपावली, स० २०२५ वि०　　　　रामकुमार खडलवाल

प्रकाशक की ओर से

हिन्दी अकादमी की स्थापना सन १९५६ ई० में हुई थी। इसके संस्थापक सदस्यों मे श्री डा० एस० भगवन्तम, डा० आर्येन्द शर्मा प० नरेन्द्रजी, डा० एस श्री देवी, श्री बदरी विशाल पित्ती, श्रीमती सुशीला देवी विद्यालकृतता प्रमुख है। अपने अत्यन सीमित साधनो के बल पर भी अकादमी ने हिन्दी मे ग्रथो के प्रकाशन का कार्य अपने हाथ मे लिया है। अकादमी मलिक मुहम्मद जायसी की शोध मे प्राप्त कृ न 'चित्ररेखा' का प्रकाशन करना चाहती है। डा० राम निरन्जन पाडेय उसकी भूमिका लिख रहे है। अकादमी ने दक्षिण की पाच प्रमुख भाषाये- तेलुगु तामिल, मराठी, कन्नड, और मलयालम की दो-दो चुना हुई कहानिया लेकर "श्रेष्ठ कहानिया" सग्रह प्रकाशित किया है। लेखको के आर्थिक सहयोग से अकादमी "साझके स्वर" और 'साहित्यक चिन्तन ' प्रकाशित कर सकी है। "दम्पति वाक्य विलास" अकादमी का चौथा प्रकाशन है।

'दपति वाक्य विलास का प्रकाशन अकादमी के इतिहास का एक गौरवपूर्ण अध्याय है। डा० चन्द्रभान रावत हिन्दी विभागाध्यक्ष, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान और डा० रामकुमार खडेलवाल, रीडर हिन्दी विभाग, उस्मानियां विश्वविद्यालय, हैदराबाद के प्रति आभार प्रकट करना अकादमी अपना परम कर्त्तव्य समझती है, जिन्होने वृन्दावन निवासी राय गोपाल कवि के युग को प्रतिबिम्बित करने वाले इस ज्ञान-कोप का श्रम-पूर्वक सम्पादन कर अकादमी को इसके प्रकाशन का अवसर प्रदान किया।

अकादमी ने आन्ध्र प्रदेश के शिक्षा-मत्री माननीय श्री पी वी नरसिंह राव की सेवा में अनुदान के लिए आवेदन प्रस्तुत किया है। अनुदान प्राप्त होने पर अकादमी अपने प्रकाशन कार्य मे बहुत आगे बढ सकेगी।

'दंम्पति-वाक्य-विलास' को यथा संभव सुन्दर बनाने का प्रयास किया गया है। सुहृद्जन अकादमी के इस प्रयास को अपना कर हमारा साहस बढ़ाएँगे- ऐसी आशा निराधार नहीं है।

राजा बहादुर सर बंसी लाल बालिका विद्यालय,
बेगमबाज़ार, हैदराबाद दक्षिण (आं० प्र०)
चैत्र शु.१, २०२६ वि. १९-३-६९

मधुसूदन चतुर्वेदी
मंत्री
हिन्दी अकादमी

प्रस्तावना

१. कवि

१ *नाम– श्री प्रभुदयाल मीतल ने इस कवि का मूल नाम गोपालदास* दिया है। साथ ही उन्होंने 'गुपाल कवि' को उनका उपनाम माना है।[1] 'दपतिवाक्यविलास' में गोपालदास तो किसी स्थान पर नहीं *आया है। उसकी छाप में तीन नाम ही* प्राय मिलते है। गुपाल कवि या कवि गुपाल राय और गुपाल। गुपाल कविराय भी मिलता है। दपति वाक्यविलास की मुद्रित प्रति के ऊपर छपा है दपति वाक्य *विलास कविवर गोपालराय कृत।*[2] विज्ञापन से भी यही नाम दिया गया है। इस प्रकार कवि का नाम गोपाल राय ही प्रतीत होता है, गोपालदास नही। मुद्रित प्रति में प्रत्येक विलास के अत मे भी 'गोपाल कविराय विरचित' दिया हुआ है। पता नही, मीतल जी को 'गोपालदास' नाम कहा से मिला। 'राय' वश मे उत्पन्न होने के कारण गोपालराय नाम ही ठीक प्रतीत होता है। वश में रायान्त नामो की परम्परा भी प्रतीत होती है। इनके पिता का नाम प्रवीण-राय या परगराय था।

२. काल

श्री जी मीतलजी ने इनके काल निर्धारण के सबध में अपना मत इस प्रकार दिया है। 'उनके जन्म और देहावसान के ठीक-ठीक सवत् अज्ञात हैं। किन्तु उनके रचना काल से उनका अनुमान किया जा सकता है। उनकी एक रचना 'श्री वृन्दावन धामानुरागावली' की पूर्ति स १९०० में हुई थी। इससे उनका जन्म स १८६० के लग-भग और देहावसान स १९३० के

---

१ चैतन्य मत और ब्रज साहित्य, पृ ३१३

२ दपति वाक्य विलास, (बबई, स १९६८) मुख पृष्ठ।

लग-भग अनुमानित होता है । [3]. वृन्दावन धामानुरागावली से पूर्व ही 'दपति वाक्य विलास' की रचना हुई थी। म. १८८५ में यह ग्रंथ बना। [1]. इसके रचना काल से भी मीतल जी द्वारा निर्धारित तिथियों को मानने में बाधा नहीं पड़ती। 'दपति वाक्य विलास' की तृतीयावृति म. १९६८ में हुई। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि उस समय गोपाल कवि जीवित ही रहे हो। मुद्रित प्रति मे इस संबंध मे कोई सूचना नहीं मिलती। प्रकाशकों को इस ग्रंथ की प्रति भी कवि से प्राप्त नहीं हुई थी। अत कहा नहीं जा सकता कि म. १९६८ मे कवि जीवित था या नहीं। इन सब तिथियो के आधार पर कवि की कालगत स्थिति के संबंध में निश्चित तो कुछ नहीं कहा जा सकता, फिर भी मीतल जी का अनुमान ठीक प्रतीत होता है। कवि का संबंध रीतिकाल के अवसान-काल मे है। रीतिकालीन प्रवृत्तिया कवि की कृति मे स्पष्ट परिलक्षित होती है। साथ ही अंग्रेजी शासन भी जम गया था। उनकी व्यवस्था पर कवि ने विस्तार के साथ प्रकाश डाला है। किन्तु इस समय तक आधुनिकता का साहित्यगत उन्मेष नहीं हो पाया था।

३. स्थान

अन्तर्साक्ष्य मे इतना निश्चित होता है कि कवि का जन्म वृन्दावन में हुआ था। अपने पिता के विषय में कवि ने लिखा है कि उनका निवास वृन्दावन के मनीपारे नामक मुहल्ले में हुआ था। पर आज उस मुहल्ले में रायों के घर नहीं हैं। पूछने पर भी इनके वंशजों के संबंध में कोई विशेष सूचना नहीं मिली।

---

३. चैतन्य मत और ब्रज साहित्य, पृष्ठ ३१३

१. ठारह से पिच्यासिया पून्यो अगहन मास, दं वा वि. १ । १५

कुछ वयोवृद्धो ने इतना अवश्य बतलाया कि पहले यहा कुछ रायो के घर अवश्य थ । कवि ने मनीपारे का वर्णन बड़े गर्व के साथ किया है । गोपाल ने स्वय लिखा है कि यहा मुख्यत मिश्र लोगो के घर हैं और दोचार घर राय लोगो के भी है । "भनत गोपाल नाम चारिक हमार घर ।"[2] इस मुहल्ले मे अधिकाश ब्राह्मणो का निवास थ । इस प्रकार गोपाल कवि वृन्दावन के मनीपारे नामक मुहल्ले का निवासी थ । वही उनका जन्म भी हुआ था । कवि ने वृदावन-वास पर गर्व भी किया है —

> तीनि लोक जानी जहा वहै पटरानी एसी
> वृन्दावन जू की हम रहे राजधानी म ।

४ कविवंश

'दंपति वाक्य विलास' में कविने अपने वश का परिचय दिया है । इस परिचय म प्राप्त शृखला इस प्रकार है । मुरलीधर—घनश्याम—प्रवीणराय—गोपालराय ।[1] इस प्रकार कवि के पिता प्रवीणराय ठहरते हैं । मीतलजी ने लिखा है । "उनके पिता का नाम खड्गराय था । वे चैतन्य मतानुयायी रामवक्स भट्ट के शिष्य थे ।" "उनके प्राचीन आश्रयदाता पटियाला महाराज कर्मसिंह के छोटे भाई अजीतसिंह थे ।[2] ये सूचनायें मीतलजी ने 'दिग्विजय' भूषण के आधार पर दी है । आगे वे एक दोहे में गोपाल कवि ने अपने पिता का नाम खड्गराय भी दिया है । "परगराय परवीनसुत गोपाल यह नाम"[3]

---

१ प्रस्तुत ग्रंथ, १ । ४
२ चैतन्य मत और ब्रज साहित्य, पृ २१३
३ प्रस्तुत ग्रंथ ६ । ५

इसमें पिता के दोनों नाम-प्रवीनराय और परगराय-आये हैं। अनुमान लगाया जा सकता है कि परगराय संभवतः प्रवीणराय का विरुद होगा।

गोपाल कवि के वंश में काव्य-रचना की परम्परा रही। उनके पिता परगराय ने कई रचनाएँ की थी :—

जनमि प्रवीन ग्रथ पिंगल औ, रसजाल
एकादसी कातग-महातम को गायो है। [1]

इस प्रकार काव्य शास्त्रीय और पौराणिक काव्य-धारा कवि गोपाल के पूर्वजों के प्रातिभ संस्पर्श से गति ग्रहण करती रही। स्वयं गोपाल कवि ने इसी परम्परा का निर्वाह किया। उनकी कृतिया भी इन्ही दो वर्गो में विभाजित की जा सकती हैं। कोश ग्रथ गोपाल की तीसरी प्रवृति से संबद्ध है। 'दंपति वाक्य विलास' एक ज्ञान-कोश है। इसकी प्रेरणा भी कवि के अनुसार, उसे अपने पिता प्रवीणराय से ही प्राप्त हुई। इस ग्रंथ की योजना और इसका उद्देश्य, दोनों ही बौद्धिक हैं।

कविताकृति सुखदु-ख के कवित बनाए दोइ।
कवि प्रवीन पितु कों जबहि, जाइ सुनाए सोइ।
है प्रसन्न ताही घरी आज्ञा मोकों दीन।
दंपतिवाक्यविलास सुत की जेग्रथ प्रवीन।
जिनकी आज्ञा पाय में कीनो ग्रंथ प्रकास।
कहत-सुनत याके सदा, होइ वृद्धि परगास।

कवि के वंश मे काव्य की चार प्रवृत्तियां मिलती हैं, काव्य शास्त्रीय, भक्तिभाव संबधी, पौराणिक और ज्ञानकोशीय। इनका प्रतिनिधित्व कवि गोपाल की कृतियां करती है।

---

१. वही १। ४

५. कवि का सप्रदाय

कवि के पिता चैतन्य मतानुयायी थे। [2]. व्रज से चैतन्य मत का घनिष्ट सबध रहा है। व्रज के अनेक स्थानो पर चैतन्य मत और उसके आचार्य एव भक्तो से सबधित स्मृतिचिन्ह वर्तमान है। इस दृष्टि से राधाकुड और वृन्दावन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। [3]. गोपाल कवि का वश भी इसी सप्रदाय में दीक्षित था। इस कवि के समान अन्य अनेक कवि भी इस सप्रदाय से सबधित रहे है। बहुत से कवियो को व्रजभाषा साहित्य को समृद्ध करने का श्रेय है। किन्तु अन्य सप्रदायो के व्रजभाषा कवियो की अपेक्षा, इस सप्रदाय के कवियो की सख्या कम अवश्य है।

इस सप्रदाय के कवियो ने माधुर्य भाव से सबधित काव्य ही किया है। [4] गुपाल कवि की रचनाओ में कुछ मे इस भाव की विवृत्ति अवश्य है। समवत. मान पचीसी, रासपचाध्यायी जैसी कृतियो में माधुर्य की फुहारो की सिहरन है। अन्य रचनाओ में कवि का बौद्धिक पक्ष ही अधिक प्रकट हुआ है। सभी रचनाओं में श्री वृदावनधाम [1]. की महिमा का गायन अवश्य है। कवि 'काव्य शास्त्र के अच्छे विद्वान और व्रज-वृन्दावन के अनुपम अनुरागी थे। उन्होंने जहा काव्य के विविध अगो का विस्तृत विवेचन किया है, वहा व्रजभक्ति और

---

१ प्रस्तुत ग्रथ १ । १०--१२

२ प्रभुदयाल मीतल, चैतन्य मत और व्रज साहित्य, पृ. ३१३

३ विशेष विवरण के लिए दृष्टव्य, वही पृष्ठ १२४-१२५

४ इस प्रकार के कवियो में सूरदास मदनमोहन, गदाधर भट्ट जैसे कवियो का नाम स्मरणीय है।

१ श्रीवृन्दावन धामानुरागावली में उसका वृन्दावन प्रेम बौद्धिक विवरणों और अणुसधान के साथ फूट पडा है।

व्रजमहत्व पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला है [2]. वृन्दावन वासियों की कृपा-कटाक्ष की कामना भी कवि ने की है 'वृन्दावन वासियों की कृपा कटाक्षहि पाऊँ" । [3]. आज भी वृन्दावन वासी अनेक *चैतन्यमतानुयायी बंगालियों की ऐसी भावना मिलती है ।*

'दंपतिवाक्यविलास' के मंगलाचरण में भी कवि का वृन्दावन प्रेम छलक रहा है । मंगलाचरण में 'राधिकारमण' का *स्मरण है -'राधिकारमण के चरन की सरनि में,* । '*मातृभूमि* वंदना' में कवि ने वृन्दावन को 'स्यामा स्याम धाम सब पूरन करन काम 'कहा है । यमुना को' पटरानी 'नाम से अभिहित किया है । इस प्रकार कवि के वृन्दावन-प्रेम में चैतन्यमत के प्रभाव की छाया ढूंढी जा सकती है ।

६ आश्रयदाता

मीतलजी के अनुसार इनके पिता पटियाला राज्याश्रित कवि थे । [4]. हो सकता है गोपाल कवि भी पटियाला राज्य से *संबद्ध हों । पर, इसका स्पष्ट उल्लेख कहीं प्राप्त नहीं होता ।* मुद्रित प्रति के विज्ञापन में प्रकाशक ने लिखा है, "आजदिन महाराज श्री १०८ श्रीकृष्णगढाधिपति की कृपाकटाक्षा से दंपतिवाक्यविलास नामक ग्रंथ श्रीयुत कविगोपालराय निर्मित कवीश्वर श्री जयलाल के द्वारा मेरे हस्तगत होने से मेरी आशा पूरी हुई ।"

इससे प्रतीत होता है कि खेमराज श्रीकृष्णदास की पुस्तक की प्रति कृष्णगढ़ नरेश से प्राप्त हुई थी । ग्रंथ के अंत में कृष्णगढ के राजा पृथ्वीसिंह की प्रशस्ति में दो छंद भी हैं --

---

२ प्रभुदयाल मीतल, चैतन्य मत और व्रज साहित्य, पृ. ३१३

३. श्री वृन्दावन धामानुरागावली, का आरंभिक छन्द, मीतलजी द्वारा पृ. ३१४ पर उद्धृत ।

४. *चैतन्य मत और व्रज साहित्य*, पृ. ३१३.

> राजन के राजाधिपति, पृथ्वीसिंह सुभूप ।
> रजधानी श्रीकृष्णगढ़, राजत दुर्ग अनूप ।
> गो द्विज पालक वृत दृढ़, घालक अरिदल शाल ।
> दिनकर दिनकर-वंश के, पृथ्वीसिंह महिपाल ।[1]

यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि ये दोहे कवि गोपाल के द्वारा रचित है अथवा प्रकाशक-संपादक की रचना है। अन्य प्रतियों में ये दोहे नहीं है, अत इनका गोपालराय के द्वारा रचा जाना संदिग्ध है। यदि ये कवि के द्वारा रचे हुए है, तो कृष्णगढ़ के राजा पृथ्वीसिंह से भी कवि का संबंध स्थापित हो जाता है। किशनगढ़ में उस समय इस प्रकार के कवियों का सम्मान विशेष था। पर, यदि कवि का संबंध इस दरबार से होता तो वृन्दावनवाली प्रति में अवश्य ही इसका उल्लेख होता। इस लिए कृष्णगढ़ से कवि का संबंध न मानना ही उचित प्रतीत होता है। इतना अवश्य है कि कवि का किसी राजा के दरबार से संबंध था। यह लगता है कि गोपालराय के पूर्वज पूर्णत किसी राजा के दरबार से संबद्ध होंगे। गोपाल कवि का संबंध उस दरबार से नाममात्र का रह गया होगा। यदि किसी राजा के पूर्णत आश्रित होकर गोपाल अपनी रचनाएँ करते तो कहीं न कहीं आश्रयदाता का नाम भी आता। वंशवृत्ति का निर्वाह करते हुए भी कवि ने अपनी काव्य-साधना संभवत स्वतंत्र रहकर ही की।

२. कृतित्व

गोपाल कवि को प्रतिभा, अभ्यास और वंश-परम्परा सभी कुछ मिला। इसी विरासत ने उन्हें एक बहुज्ञ कवि बना दिया। गोपाल कवि ने दंपति वाक्य विलास के अंतिम भाग में अपनी

---

१. दंपति वाक्य विलास (मुद्रित प्रति) पृ १२८

अठारह रचनाओं की सूची दी है। दूसरी ग्रंथ सूची श्री मीतल जी ने दी है। इस सूची में मीतलजी ने सत्रह रचनाएँ गिनाई है। इन दोनों सूचियों में समान रूप से उल्लिखित केवल पाच रचनाएँ है। दंपति वाक्य विलास, मान पचीसी, रससागर, रास पचाध्यायी, और व्रजयात्रा। मीतलजी ने इनके अतिरिक्त ये रचनाएँ और गिनाई हैं। दूषण विलास, ध्वनिविलास, भावविलास भूषणविलास, व्रजयात्रा, वृन्दावन महात्म्य, श्री वृन्दावन धामानुरागिनी, वंशीलीला, वर्षोत्सव, गोपालभट्ट चरित, वृन्दावन वासिन कवित और भक्तमालटीका। इन रचनाओं में काव्य शास्त्रीय रचनाएँ अधिक हैं। कवि द्वारा दंपत्तिवाक्यविलास के अत में दी हुई सूची में ये रचनाएँ ऐसी हैं, जिनका उल्लेख मीतल जी ने नही किया है दानलीला, प्रश्नोत्तर, पट्ऋतु, नखशिख, चीर-हरण, वनभोजन, वेणुगीत, दशम कवित, अक्लनामा, गुरुकोमुदी जमुनाष्टक गंगाष्टक, और वृन्दावन विलास। इनमें अधिकाश रचनाएँ कवि के भक्तिभाव को प्रकट करने वाली रचनाएँ हैं। मीतल जी ने अपनी सूची के स्रोत के संबध में कुछ भी सूचना नहीं दी है। इससे इसकी प्रामाणिकता के सबंध में कुछ भी नही कहा जा सकता।

उक्त दोनों सूचियों को ध्यान में रखकर, गोपाल कवि के कृतित्व का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है। कवि गोपाल के काव-कर्म की तीन दिशाएँ हैं: काव्य-शास्त्रीय, भक्तिमूलक, और ज्ञानपरक। दूषणविलास, भूषणविलास जैसी रचनाएँ कवि के भक्तिभाव की परिचायिका हैं। अक्लनामा और दंपतिवाक्यविलास कवि की बहुज्ञता से संबंधित हैं। परिणाम की दृष्टि से भी कवि की उपलब्धि उल्लेखनीय है। मीतलजी ने कवि की अभिरुचि पर यह वक्तव्य दिया है: 'वे काव्यशास्त्र के अच्छे विद्वान और व्रज वृन्दावन के अनुपम

अनुरागी थे। उन्होंने जहाँ काव्य के विविध अंगों का विस्तृत निर्वचन किया है वहाँ व्रजभक्ति और व्रजमहत्व पर भी यथास्त प्रकाश डाला है। मीतलजी ने गोपाल रचित कितने ग्रंथों को देखा है, यह तो नहीं कहा जा सकता है किन्तु ग्रंथों के आधार पर उन्होंने जो निष्कर्ष निकाले हैं वे वैज्ञानिक हैं।

कवि का कृतित्व परंपरा से संबद्ध तो है ही उसका युग बोध भी पर्याप्त तीव्र और वैविध्य-पूर्ण है। प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही किनारों के बीच कवि की भावधारा प्रवाहित हुई है।

३ दंपति वाक्य विलास

१ प्रेरणा

कवि ने ग्रंथ की प्रेरणा अपने पिता से प्राप्त की। इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। गोपालराय ने एक दिन काव्य रचना में सुख-दुख पर दो कवित्त बनाकर अपने पिता को सुनाए। पिता ने प्रेरणा दी कि इसी प्रकार जीवन के प्रत्येक कार्य-व्यवसाय के दोनों पक्ष स्पष्ट किये जा सकते हैं और प्रस्तुत ग्रंथ का बीज वपन हो गया।[1] इस ग्रंथ की मुद्रित प्रति के विज्ञापन में ग्रंथ की प्रकृति का स्पष्टीकरण किया है "इस पुस्तक को प्रश्नोत्तर की रीति से उक्त कवि ने बड़ी उत्तमता से बनाया है, जिसमे पुरुष ने प्रत्येक उद्यमों का गुण दोहा और कवित्त में वर्णन किया है और स्त्री ने उन्हीं छन्दों में उसका दोष दिखाया है। ऊपर के मुखपृष्ठ पर लिखा है सम्पूर्ण उद्यम-व्यापार तथा हुनरों के गुण अवगुण परम मनोहर दोहा सोरठा कवित्त आदि छन्दों में वर्णित हैं। इस प्रकार जीवन व्यापार के विभिन्न पक्षों के गुण दोषमय रूप को अंकित

---

१ दंपतिवाक्य विलास १। १० ९९

करने की प्रेरणा कवि को मिली और उसी प्रेरणा का परिणाम विकसित होता गया।

सबसे बडी प्रेरणा कवि को युग से मिली। गोपाल कवि ने अपने पूर्व के कविकर्म पर विचार किया. उसने रस-सागर आदि अनेक क्लिष्ट रचनाएँ की थीं। उन रचनाओं का ग्राहक वर्ग अत्यन्त सीमित था। तब कवि ने जन की प्रवृत्ति के अनुकूल यह सुगम रचना की.

रससागर दै आदि वहु, किए ग्रंथ अभिराम।
कठिन अर्थ अरु श्लेषयुत, कीने तिनमें काम।
सब कोऊ समझै न जह, समझै जिनै प्रबीन।
याते लौकिक ग्रंथ यह, कीनौं सुगम नवीन।[1]

इस प्रकार कवि का लोकप्रिय रचना करने की प्रेरणा अपने अतर मे ही मिली। उसकी अबतक की रचनाएँ रीतिकालीन चमत्कारी, श्लिष्ट, और क्लिष्ट काव्य की परम्परा मे आती थीं। प्रस्तुत कृति मे कवि ने उस मार्ग को छोडा है। कवि को युग-रुचि की पहचान भी है - रीतिकालीन काव्य-रुचि का ह्रास हो गया था। तत्कालीन जन-मन को समझ कर ही कवि के इस प्रकार की रचना में प्रवृत्त होना पडा :–

समय बमूजिब देखिकै, कीयौ ग्रंथ प्रकास।
आज काल के नरन के, सुनि मन होइ हुलास।[2]

---

१. द. वा. वि. (मुद्रित प्रति) २१। १२, १३
२. ,, ,, २१। १४

कवि अंत में क्षमा-प्रार्थना भी करता है—

याते सुरति गुपाल को, देउ दोष मति कोइ ।
ना सूजिग देखी हवा ना सम बरणी होइ ।

इस प्रकार कवि ने युग-रुचि को देख कर ही इस ग्रंथ की रचना की प्रेरणा ग्रहण की । युग रुचि एक प्रकार से काव्य शास्त्रीय संस्कारों से मुक्त हो रही थी । उस समय राज्याश्रय शिथिल होने लगा था । आदर ऐसी रचनाओं का था, जिनमें युग के सजीव स्पन्दनों को वाणी मिली हो ।

विषय-वस्तु

दपति वाक्य विलास एक ज्ञानकोश है । कवि ने अपने युग की प्राय सभी शासकीय, धार्मिक एवं सामाजिक इकाइयों का परिचय दिया है । सम्भवत कोई संस्था या जाति ऐसी नहीं बची जिस पर कवि ने अपनी मौलिक दृष्टि व्यक्त न की हो । अपनी बात को निर्भय रूप से कह देना जैसे कवि का स्वभाव है । यही कारण है कि शब्दों के जंजाल और रूढ़ियों के बीच भी कवि के सत्य एवं यथार्थ कथन जगमगा उठते हैं । विषय वस्तु का जीवन इन्हीं उक्तियों में है ।

कवि का युग मुस्लिम शासन और उस युग की संस्कृति के अवसान का युग है । अंग्रेजी प्रभाव भारतीय क्षितिजों पर एकत्र होकर गहराने लगे थे । अंग्रेजी नौकरशाही के पुर्जों की वास्तविकता सामने आने लगी थी । जनता इस नवीन व्यवस्था में जकड कर कसमसाने लगी थी । प्रस्तुत कृति के विषय का *संसारों के निर्धारण में युग की इन्हीं परिस्थितियों का हाथ है ।* वस्तु के अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही पक्षों के अनिवार्य सन्निवेश के कारण उसमें पूर्णता आई है ।

परिस्थितियों की निराशापूर्ण जटिलता व्यक्ति की पराजय को मुखर बना देती है। उसका मन एक कड़वे धुए से भर जाता है। जीवन कुछ किरकिरा सा हो जाता है। ये स्वर दपनिदावध-विलास में भी प्रकट है। कवि व्यक्ति की उस विवशता को जैसे अंकित कर रहा हो जो प्रत्येक दिशा में मार्ग पूछता हो और दिशा उसे मार्ग बतलाने के स्थान पर एक व्यंगपूर्ण अट्टाहास कर उठती हो। कवि की पत्नी भौतिक जीवन के अनेक मार्गो को, कभी धार्मिक विश्वासों के आधार पर और कभी व्यावहारिक कठिनाइयों एवं बाधाओं का संकेत करके अवरुद्ध करती मिलती है। इस प्रकार की वस्तु-ध्वनि इस रचना में मिलती है।

वस्तु विकास की अन्तिम कड़ी कवि का परलोक-चिन्ता की ओर मुड़ जाना है। कभी विनय के स्वर सुनाई पड़ने लगते हैं करुणाष्टक में भक्तिमूलक पुराणाश्रित करुणा ही विगलित हो उठी है। कभी पश्चाताप की घुटन का कवि अनुभव करने लगता है - 'धोबी को सो कुत्ता भयो घर को न घाट को'। पत्नी की यथार्थवादी चोटों से तिलमिला कर कवि अपनी हार स्वीकार कर लेता है, और वह कह उठता है :—

मुनिकें तेरी बात को, उपज्यौ हिय मे ज्ञान।
भजन-भावना भक्ति बिन, वृथा गये दिन जान।

अन्त मे स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय ही श्रेयस्कर कहा गया है :—

यह 'गुपाल' तिय सीख मुनि, कीनों उद्यम जोइ।
स्वारथ ही के करन में, परमारथ जिमि होइ।

इस प्रकार का वस्तु-विकास जीवन की निराशापूर्ण, संघर्षमय परिस्थिति मे ही होता है । यह भी हो सकता है कि यह वस्तु कवि की वृद्धावस्था जन्य विवशता का ही परिणाम हो । कवि ने तुलसी की भांति कलिकाल के दोषो का भी भरपूर वर्णन किया है । ग्रथ के प्रयोजन के सबध मे कवि ने स्पष्ट कहा है कि इसकी रचना वैराग्य की ओर मन को प्रवृत्त करने के लिए की गई है ।

'राय गुपाल' विराग बडामन दपति वाक्य विलास बनायो ।[1]

इस प्रकार की रचना मे सासारिकता के दोषो का वर्णन अधिक होना ही स्वाभाविक है ।

वस्तु के सबध मे एक बात और भी दृष्टव्य है । इसमे कवि के स्वानुभव का ही अधिक समावेश है । वस्तु की दृष्टि से इसी लिए इसमे कुछ अधिक नवीनता और विलक्षणता आ गयी है । थोड़े से ही ऐसे विषय इसमे हैं, जिनके लेखन मे कवि रूढिया से मुक्त नही हो पाया है । अन्यथा कवि के निजी अनुभव ही वस्तु योजना के मूल मे हैं । इसी लिए सारी भूमिका अधिक सजीव है । रीतिकालीन जड़ता से विषय वस्तु बोझिल नही है । वस्तु की इसी नवीनता ने इस ग्रथ की लोकप्रियता मे योगदान दिया । इसकी अनेक प्रतिया तैयार की गई ।

'देखि नई रचना वचनानि की, सो मुनिके सबने लिखवायो'[2]

वस्तु के क्षेत्र मे यह एक नवीन प्रयोग ही था । उस युग मे प्राप्त मनुष्य का अस्तव्यस्त रूप इस रचना मे प्रकट हो जाता

---

१ दपति वाक्य विलास १ । १७

२ दपति वाक्य विलास १ । १७

है। कुल मिला कर यही कहा जा सकता है कि कवि वस्तु योजना में बौद्धिक और यथार्थवादी अधिक है। भावुकता करुणाष्टक जैसे आध्यात्मिक प्रसंगो मे ही अधिक आई है।

३ काव्य रूप

काव्य रूपो की दृष्टि से रीतिकालीन युग पर्याप्त वैविध्यपूर्ण रहा है। शास्त्र-ज्ञान के प्रदर्शन और प्रचार के लिए भी रचनाएँ की जाती थी।

कोषो की परम्परा संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी तीनो ही स्तरों पर चलती रही। संस्कृत का नीति साहित्य एक दीर्घ और समृद्ध परम्परा रखता है। दपतिवाक्यविलास के प्रकाशको ने प्रस्तुत रचना को प्राय: उसी परम्परा में रखा है। "यद्यपि संस्कृत में सुभाषित रत्नाकर, वृहच्छारङ्गधर आदि बहुत ग्रंथ छपे हैं परन्तु वे संस्कृतज्ञ जनो ही को आनंददायक है। हमारे भाषा के रसिक जनो को तृप्ति इनसे होना असंभव है'।[1] इस प्रकार नीति उपदेश की प्रवृत्ति से प्रेरित ज्ञानकोश की संज्ञा प्रस्तुत रचना को दी जा सकती है। सीतलजी ने इसे ज्ञानकोष की ही संज्ञा दी है।[2] इस नामकरण के पीछे यह मान्यता प्रतीत होती है कि कोष दो प्रकार के होते हैं शब्दकोष और ज्ञान कोष। दोनों की परम्परा हिन्दी में मिलती है।

शब्दकोष भी दो प्रकार के होते है। एक वे जिसमें कवि के व्यक्तित्व का सम्पर्श शून्य होता है। लेखक संदर्भ-निरपेक्ष होकर शब्द और उसके प्रचलित अर्थो का संग्रह कर देता है। इस प्रकार के कोषो की परम्परा निघण्टु से प्रारंभ होती है। यही

---

१. दं वा वि, (मुद्रित) विज्ञापन।

२. सरस्वती, खंड १, संख्या ६: 'ब्रज भाषा का एक ज्ञानकोष' लेख

प्राप्त कोषो मे सबसे प्राचीन है।[1] आगे इसकी अविच्छिन्न परम्परा चली।[2] बहुत से कोष लुप्त भी हो चुके है। अमरकोश अवश्य प्राप्त होता है। इस ग्रथ मे समानार्थक, नानार्थक प्रत्यय शब्दो के विभाग मिलते है। आगे भी नानार्थक शब्दो की नाम-मालाएँ चलती रही। प्राकृत मे भी कोषो की परम्परा अविच्छिन्न रही।[3] देशी नाम-मालाओ का नवीन सूत्र[4]. देशी तत्वो की लोकप्रियता को प्रकट करता है। अपभ्रंश ने प्राय प्राकृत शब्दकोषो की सामग्री को काम मे लिया। हिन्दी मे भी नाममाला कोषो की परम्परा चलती रही।[5] हिन्दी नाममालाएँ प्राय छन्द बद्ध है। इनका उद्देश्य शब्दकोष तैयार करना नही था। "इस उद्योग का उद्देश्य यही विदित होता है कि हिन्दी के कवियो की शब्द सपत्ति को बढाया जाए। हिन्दी कवियो को अपने काव्य मे विशिष्ट रूपेण एक शब्द के विविध पर्यायो के प्रयोगो की आवश्यकता थी। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ये नाममालाएँ लिखी जाने लगी"।[6] सस्कृत काव्य

---

१ भगवद्दत, वैदिक कोष, पृ ५८ (भूमिका)

२ इस परम्परा में ये ग्रथ आते है कात्यायन कृत नाममाला, वाचस्पति का शब्दकोष, विक्रमादित्य का शब्दार्णव, ससारावृत तथा व्याडिकृत उत्पलिनी आदि।

३ उदाहरण के लिए धनपाल (१००० ई०) कृत 'पाइअलच्छि' ग्रथ लिया जा सकता है।

४ हेमचन्द्र, (१०८८–११७२ ई०) की देशी नाममाला, अभिमान चिन्ह का 'देशी कोष' गोपाल का देशी कोष, देवराज के छन्द सबधी ग्रथ का देशी कोष आदि को इस सूत्र के अतर्गत रख सकते है।

५ सूची के लिए दृष्टव्य, सत्यवती, सहगल, नाममाला साहित्य, भारतीय साहित्य (वर्ष ३, अक ४) पृ ७७–७८

६.

वस्तुज्ञान→विवेक—
—पुरुष कथन (गुण)—
—पत्नी कथन(दोष)—
→संवाद→वैराग्य
→आध्यात्मिक तत्त्व→शान्ति की प्रेरणा
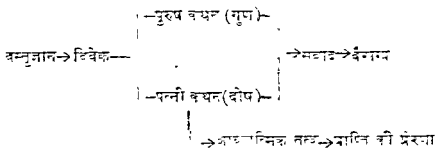
इस प्रकार समान्य वस्तुस्थिति पहले विवेक की कसौटी पर चढ़ाई जाती है। विवेक उसके पूर्व पक्ष, और उत्तर पक्ष को सामने लाकर निर्णय करना चाहता है। यह समस्त प्रक्रिया तर्काश्रयी है। परिणामतः मिथ्या के त्याग के लिए भूमिका बन जाती है। त्याग के पश्चात ग्रहण की प्रक्रिया और ग्राह्य का स्वरूप स्पष्ट हो जाते हैं। ग्रहण की प्रक्रिया में ज्ञानात्मक मार्ग भक्ति-भाव में अभिसिंचित हो उठता है और शान्ति का समावेश हो जाता है।

वस्तुज्ञान का विवेकपूर्ण संस्कार 'संवाद' शैली में उतर आता है। संवाद ही किसी वस्तु के उभय पक्षीय रूप को सामने ला सकता है। संवाद का अंत निर्णय-बिंदु पर पहुँच कर ही जाता है और कवि की वाणी अकेली रह जाती है। कवि वाणी पश्चात्ताप और युग-प्रवृत्ति का कथन करती हुई अध्यात्म की घोषणा कर देती है और ग्रंथ की समाप्ति हो जाती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि दंपतिवाक्यविलास एक 'संवादात्मक ज्ञानकोश' है।

४. प्रतियां :

४. १. खोज :

दंपतिवाक्यविलास की एक प्रति हमें रंग जी के मन्दिर (वृन्दावन) में मिली। उसका विवरण, 'भारतीय

साहित्य, में पहले छपा।[1] इस प्रति को श्री प्रभुदयालजी मीतल को भी दिखलाया गया। श्री मीतलजी को इसको देखकर बड़ा सन्तोष हुआ। इस ग्रंथ के रचयिता, गोपाल कवि का संक्षिप्त परिचय वे पहले ही अपने एक ग्रंथ में दे चुके थे।[2] इस ग्रंथ का नामोल्लेख भी उन्होंने वहाँ किया है। इसका नाम उन्होंने दम्पतिवाक्यविलास दिया है। सम्भवतः इस ग्रंथ की प्रति उन्हें उस समय नहीं मिली थी। अतः इसका विशद परिचय वे नहीं दे सके थे। जब हमारे द्वारा प्राप्त प्रति का उन्होंने देखा तो उन्होंने एक लेख लिखा। व्रजभाषा का एक ज्ञान-कोश।[3] इस लेख की प्रतिक्रिया में श्री अगरचन्द नाहटा ने भी एक लेख लिखा। उन्होंने सूचना दी कि यह ग्रंथ बहुत पहले प्रकाशित हो चुका है।[4] ज्ञात होता है कि अब से लगभग ६८-७० वर्ष पूर्व (सं० १९५० में) इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो चुका है। इसके पश्चात् हमने उसकी मुद्रित प्रति को मँगाया और अपनी प्रति से इसकी तुलना की। हमने नाहटाजी से भी कुछ पत्र व्यवहार किया। उन्होंने एक पत्र में इसकी अन्य प्रतियों की सूचना भी दी। उन्होंने एक पत्र (१०-११-६७) में लिखा "एक नवीन सूचना दे रहा हूँ कि इस ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर में भी है। इस प्रति का नंबर १००२०, पत्र ११० और सं० १९०३ की लिखी हुई है। इस प्रकार प्रतियों की संख्या बढ़ने लगी। उसके पश्चात् हैदराबाद में इस ग्रंथ की एक और

---

१ भारतीय साहित्य, वर्ष ३ अंक ४ (१९५८) पृ १७०, १७२

२ चैतन्य मत और ब्रज साहित्य, पृ ११३, ११८

३ 'सरस्वती', खंड १, संख्या ६

४ 'सरस्वती', दम्पतिवाक्यविलास का प्रकाशित संस्करण, सरस्वती खंड २ संख्या ८

प्रति मिल गई। प्रतियों की खोज का यह क्रम यहीं रुक गया। हो सकता है कि इसकी कुछ और प्रतियाँ भी छपी पड़ी हों। जितनी प्रतियाँ प्राप्त हैं, उनसे इस ग्रन्थ की लोकप्रियता तो सिद्ध होती ही है। मुद्रित प्रति में यह सूचना मिलती है कि इसके तीन संस्करण निकले। 'यह ग्रंथ प्रथम किसनलाल श्रीधर ने छापा, परन्तु लिखा की छपाई व मात्र की अशुद्धि के कारण काव्यानुरागियों को प्रिय न हुआ। अतएव हमने उनसे यथाधिकार लेकर द्वितीयावृत्ति वाजपेयी पं. शिवदुलारे द्वारा परिशोधित कराय मुद्रित किया है....और अबकी बार इसकी तृतीयावृत्ति अत्यन्त संशोधित करके छापी गई है।'[1] प्रतियों की यही खोज रही है।

४. २. अंतर .

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की प्रति तुलना के लिए उपस्थित नहीं हो सकी। इसके लिए तीन प्रतियों को आधार बनाया गया वृन्दावन की प्रति, हैदराबादवाली प्रति और मुद्रित प्रति। इनमें से वृन्दावन वाली प्रति और हैदराबादवाली प्रति संभवतः कवि ने अपने हाथ से लिखी है : वृन्दावन प्रति में यह सूचना मिलती है 'इति श्री दंपतिवाक्यविलास सम्पूर्ण समाप्त। सं. १९०० मि. ज्ये. सुदी ७, चंद्रवार लिपी स्वहस्त मनीपारें मध्य वृन्दावन में। शुभमस्तु।" इस प्रकार कवि ने स्वयं इसे लिखा। हैदराबाद वाली प्रति के अंत में यह लिखा है. "इति श्री दंपतिवाक्यविलास सम्पूर्ण समाप्त संवत् १८९० मिती वैसाख वदी ८ रविवार, लिखी गुपालराय श्री वृन्दावन मध्यस्थ मनीपारे मध्य।" मुद्रित प्रति कवि ने अपने हाथ से नहीं लिखी। उसके अंत में यह सूचना मिलती है।

वेद ब्रह्म निधि ईश्वर संवत अवधि अधार।
श्रावण शुक्ला त्रयोदशि, संपूर्न शुभ शनिवार॥

दपतिवाक्यविलास की, पोथी सब सुख राम।
लिखि वृन्दावन मध्य मे, श्री वृन्दावन दास ॥

इन सूचनाओ से य निष्कर्ष निकाले जा सकते है : तीनो प्रतियो मे आरम्भ करने की तिथि एक ही है - सवत् १८८५ वि स तीनो ही प्रतिया वृन्दावन मे लिखी गई। दो प्रतियो का लेखन स्वय कवि ने किया और मुद्रित प्रति किन्ही वृन्दावनदास जी ने लिखी। तीनो प्रतियो के अन्त मे जो अन्त का सवत दिया गया है, उसमे अतर मिलता है —

वृन्दावनवाली प्रति	अत सवत १९०० वि
हैदराबादवाली प्रति	,, *१८९० वि*
मुद्रित प्रति	,, १९१४ वि

इस प्रकार १८८५ से लेकर १९१४ तक इस ग्रथ का लेखन हुआ। हैदराबादवाली प्रति आरम्भ होने से पाँच वर्ष पीछे समाप्त हुई और वृन्दावनवाली प्रति दस वर्ष पश्चात। ग्रथ-विकास की *दृष्टि से हैदराबादवाली प्रति छोटी है इसमे पॉच वर्षो की* साधना का ही फल है। वृन्दावनवाली प्रति इन सब से बडी है। आकार का यह विस्तार कवि की १५ वर्षो की साधना का फल है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने समय-समय पर इस ग्रथ मे मूल रूपो मे छन्द जोडे है। इसमे आकार का विकास होता गया। इस समय उपलब्ध प्रतियो मे सबसे अधिक बडा आकार वृन्दावनवाली प्रति का है। यही ग्रथ विकास की अन्तिम कडी है।

ग्रथ के अध्यायो को विलास के नाम से अभिहित किया गया है। हैदराबादवाली प्रति मे केवल आठ विलास है। मुद्रित प्रति मे २१ है और वृन्दावन वाली प्रति मे सत्ताईस है। हैदराबाद

वाली प्रति ग्रंथ की आदि स्थिति की सूचना देती है। वृन्दावन वाली प्रति अंतिम कड़ी है। मुद्रित प्रति की स्थिति या तो बीच की है अथवा वृन्दावनवाली प्रति से वह संकलित है। संकलन में कुछ अध्यायों को छोड़ दिया है। तीसरी संभावना यह भी है कि मुद्रित प्रति का आधार कोई अधूरी प्रति हो सकती है। उसके अन्त में संपूर्ण समाप्त शब्द भी नहीं है। केवल यह लिखा है – "इति श्री दंपतिवाक्यविलास नाम काव्ये प्रवीणराय आत्मज गुपाल कविराय विरचिते ग्रंथफल स्तुति वर्णन नाम एकोविंशो विलास।" निष्कर्ष रूप में इतना ही कहा जा सकता है कि वृन्दावन के रंगजी के मंदिर से प्राप्त प्रति, प्राप्त प्रतियों में सबसे बड़ी है तथा स्वयं कवि द्वारा लिखी गई है, अतः प्रामाणिक है। उसी को मूलाधार मानकर इस ग्रंथ का पाठ संपादन करने की चेष्टा की गई है। यदि अन्य प्रतियों में छन्द आदि की शुद्धता की दृष्टि से अनुकूल पाठ मिला है, तो उसे ही दिया गया है और पाठान्तर पद-टिप्पणी के रूप में दिया गया है।

५. भाषा और लिपि संबंधी विशेषताएँ :–

५. १ लिपिकार सदैव ही ष–ख मान कर चला है। 'ष' का ध्वन्यात्मक मूल्य कहीं भी मूर्द्धन्य (ष) जैसा नहीं है। लिपि की दूसरी विशेषता (अ) पर विविध मात्रायें लगा कर विभिन्न स्वर ध्वनियों को प्रकट करने की है :– अे-ऎ आदि। यह प्रवृत्ति सार्वत्रिक तो नहीं है, पर एक सीमा तक मिलती अवश्य है। लिपिक (ब) और (व) के अंतर के प्रति सचेत है। सामान्यतः (व) लिपि चिन्ह (ब) की ध्वनि को ही प्रकट करता है। अर्द्ध-स्वर के रूप में उसने 'व' के नीचे एक बिन्दी लगाई है : व़–व, व–ब।

इनके अतिरिक्त लिपि की अन्य विशेषताएँ नहीं मिलतीं।

५ ७ भाषा— लेखक की मातृभाषा ही ब्रजभाषा है। पर उसने परिनिष्ठित साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग ही सामान्यत किया है। कुछ स्थानीय या आंचलिक विशेषताओं को भी लेखक छोड नहीं पाया है। साथ ही कुछ राजस्थानी और पूर्वी रूप भी मिलते हैं।

५ २ १ ध्वनि सबधी विशेषताएँ–

५ २ ११ (ण) – ब्रजी मे ण, न की प्रवृत्ति प्रमुख है। राजस्थानी मे इसके विपरीत न, ण की प्रवृत्ति मिलती है। लेखक ने दोनो प्रवृत्तियो का परिचय दिया है णारि–नारि म राजस्थानी प्रभाव स्पष्ट है।

५ २ १२ घोषीकरण–यह प्रवृत्ति ब्रजी के ध्वन्यात्मक मृदुलीकरण का ही एक भाग कही जा सकती है अघोष ध्वनियो की अपेक्षा सघोष ध्वनियाँ मृदुतर होती है परगट–(प्रकट) परगास–(प्रकाश) गातिग–(कार्तिक) जैसे उदाहरणो मे यह प्रवृत्ति स्पष्टत परिलक्षित है।

५ २ १३ अल्प प्राणीकरण–यह भी मृदुलीकरण की प्रक्रिया का ही एक भाग है। स्फुट रूप से यह प्रवृत्ति भी मिलती है। उदाहरण के लिए निषद–(निषेध) कबी–(कभी) जैसे शब्दो को लिया जा सकता है।

५ २ १४ स्वरागम–इस प्रक्रिया मे भाषा की स्वर-बहुलता मे वृद्धि होती है। दूसरी ओर सयुक्त व्यजनो की सख्या घटती है। परिणामत भाषा अधिक काव्योपयोगी हो जाती है। यह प्रवृत्ति ब्रजभाषा मे बढती ही रही। उदाहरण के लिए इन शब्दो को लिया जा सकता है – परगास–(प्रकाश) परगट–(प्रकट) परवीन–(प्रवीण), मरम–(मर्म), छिप्रिग–(क्षिप्र), बरन–(वर्ण), प्रापति–(प्राप्ति), सवाद–(स्वाद)

५. २. १५ स्वर लोप–स्वरलोप की प्रवृत्ति सामान्यतः ब्रज-भाषा में मिलती है। गोवाल कवि की भाषा में आदि स्वरलोप की प्रवृत्ति विशेष आकर्षक है। आरंभिक ध्वनि पर बलाघात होने के कारण आदि स्वर में लोप की प्रवृत्ति विरले ही कहीं देखी जाएगी। पर दंपतिवाक्य विलास में ऐसे शब्द मिलते हैं –

ठारह–(अठारह), तिहास–(इतिहास), रु–(अरु), लायची–इलायची।

५. २. १६ व्यंजन

इस प्रवृत्ति के कारण भी व्यंजन-बहुल भाषा की कर्कशता में कमी आती है। यह प्रवृत्ति मध्यकालीन आर्य भाषाओं की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति थी। इस प्रवृत्ति के द्योतक उदाहरण "दंपतिवाक्य-विलास" में भी प्रचुर हैं। जोइसी (ज्योतिषी)

५. २. १७ अन्य प्रवृत्तियां

ब्रजी की मुख्य प्रवृत्ति ल–र की है। किन्तु कुछ शब्द र–ल की प्रवृत्ति के द्योतक भी हैं : मैर–मैल। स्वर के ह्रस्वीकरण की प्रवृत्ति के परिचायक शब्द भी हैं : विसाख (बैसाख)। द्वित्वी-करण मध्यकालीन भाषा शैली में बहुत प्रचलित था। पीछे यह प्रवृत्ति ओजपूर्ण शैली का आवश्यक अंग बन गई। कहीं यह मध्यकालीन प्रवृत्ति के रूप में, कहीं शैली का अंग होकर और कहीं छन्द-पूर्ति की आवश्यकता के रूप में द्वित्वीकरण मिलता है।

५. २. २ शब्दावली :

ब्रजभाषा के साहित्यिक रूप में प्रचलित रूढ़ शब्दावली के प्रयोग की ओर तो कवि झुका हुआ है ही, आंचलिक शब्दावली के प्रयोग के द्वारा भी उसने भाषा में सजीवता लाने का प्रयत्न किया है। लोक शब्द इस प्रकार के हैं : परस–परसाउ (संपर्क) ठकर (प्रतिष्ठा, समृद्धि), मनीर (मनोरा), खपरा (खप्पर),

गाम (प्राणशक्ति), औंडो (गहरा), लाल्ही (चिंता), ज्यान (नुकसान), जुगादी (बड़ा), आदि। भाषा को सजीव बनाने में ध्वन्यात्मक शब्दावली का योगदान भी कम नहीं है रैल-फैल (अधिकता), झलाबोर (शराबोर), दहाड, झिंगारत, घनघोरत, रहसि-बहसि आदि इसी प्रकार के शब्द है। अरबी-फारसी के शब्द भी कम नहीं हैं ताफता, नाफता, जरकसी, पसमीना, जबीना, तरफ, दरफ, हरफ, ख्याल, तमासा, गरक, सुखन, दिक्क (दिक) आदि शब्द उदाहरण के रूप में लिए जा सकते हैं। अधिक शब्द शासकीय नौकरियों के नामों में आए हैं मीरमुंशी, मुंसिफ, आदि। माल (Revenue) आदि से सबंधित शब्दावली भी कम नहीं है।

६. शैली :

कवि ने पुस्तक की व्यवस्था बौद्धिक आधार पर की है। भाव-सौन्दर्य की स्थितियां प्राय नहीं आई है। करुणाष्टक में अवश्य ही करुणा का सौन्दर्य प्रकट हुआ है। अन्त में कवि ने शांत रस में काव्यधारा को समाविष्ट कर दिया है। शृंगार की झलकियां मास-वर्णन जैसे प्रसंगों में छुटपुट रूप से आई हैं। प्राय कवि को भाव सौन्दर्य प्रकट करने के अवसर नहीं मिले हैं। मर्म की बौद्धिकता से कवि अवगत भी है और कविकर्म के प्रति सावधान भी।

कविकर्म की धारा रूपगत सौन्दर्य को स्पर्श करती हुई प्राय प्रवाहित हुई है। कवि ने प्राय अर्थालंकार-योजना में रुचि नहीं दिखाई है। उसे प्रागगत सौन्दर्य प्रिय है। ध्वन्यात्मक योजना के सौन्दर्य से ही कवि को सतोष लाभ करना पड़ा है। प्राय दोनों के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

१ एक मर्म रहसै-बहसै, परसे रसरग भरी नहुधाने। (११९)

२ नरनि, तरुण, तन तनि सौं तपन तेल

तूलम तमोल सबही के मन भाए हैं। (३।२०)

इसी प्रकार के बहुत से उदाहरण खोजे जा सकते हैं। यमक भी कवि को प्रिय है। यमक की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :—

धन धन ही ते धनिधनि धन ही ते प्यारी
धन धन ही तें, सब धन धन ही ते हैं।

एक और उदाहरण इस प्रकार है। :—

दक्षण मुनि पिय कान दै, दक्पन, दक्पन जात।
लक्पन, लच्छिन लपि लापि, लक्पन ही लगि जात (२।१२)

संक्षेप मे कहा जा सकता है कि कवि को शब्दालकार-योजना मे विशेष रुचि है। ध्वनि और शब्द की आवृत्ति के द्वारा वह शैलीगत चमत्कार की सृष्टि करता है। आवृत्ति-गत सौन्दर्य इस चरण मे देखा जा सकता है।

साधिके समाधि साध-साधना न साधि याहि,
साधि के अन्ताध कैसे प्रभु को लराधि हैं। (१।२७)

अनेक कवित्तो मे सिंहावलोकन का चमत्कार भी मिलता है। ध्वनिमूलक चमत्कार के अतिरिक्त पुस्तक की बौद्धिक योजना मे कवि को और कोई मार्ग नही मिला है। अन्य ग्रंथों में उनकी भाव-योजना भी मार्मिक है। यदि शैली में कहीं आंचलिकता मिलती है, तो स्थानीय मुहाविरों और लोकोक्तियों के प्रयोग मे ही मिलता है। वैसे कवि में रूढ़ रीतिकालीन शैली का ही आधिक्य है, पर विषय की विविधता और विचित्रता के कारण रूढ़ शैली के बीच कुछ शैलीगत प्रयोग भी दृष्टिगत होते है।

चन्द्रभान रावत
राम कुमार खण्डेलवाल

प्रथम विलास

भूमिका★

श्री गणेसायनमः

अथ गुपालराय कृति दंपति वाक्यविलास ग्रंथ लिख्यते ॥

मंगलाचरण

कवित्त

सामल वरण[1] अरुनाई अवरण[2] मायें
चन्द्रका धरण[3] कालकुंडल करण[4] में।
फैलि रही तरुण[5] किरनि[6] की सी आभा ओप
आभरन बीच गरें मोती की लरन में।
वरन वरन अतरन तर अवरन[7]
राजत 'गुपालकवि' दरन दरन में।
विघन हरण सुप सपति करन ऐसे
राधिकारमन के चरन की सरनि में ॥१॥

दोहा

गणपति गिरिजापति गिरापति देउबुद्धिः विसाल।
दंपतिवाक्यविलास को वरनत सुकविगुपाल ॥२॥
बुधि विवेक गुण हीन हौ कविताकौ नहिबोध।
गुण दूपन भूपन जिते लीजो[8] तुम कवि सोधि ॥३॥

★ हस्तलिखित प्रति (बु०) में 'पूर्तिका' शब्द है।

१. वरन। २. अघरन। ३ धरन। ४. करन। ५. तरुन।
६. किरिनि। ७ अबर। ८. सोजहु।

कवि-वंश

कवित्त

परम प्रतापीकवि भए जुगराजराय,
जाके[1] मुरलीधर प्रगट नाम पायो है।
जाके[2] घनस्याम सुत वृंदावन बसे आनि[3]
करि करनीको जस जगमें बढ़ायो है।
जनमि प्रवीन गृय पिंगल औ रसजाल
एकादसी कातग[4] महातम को गायो है।
जाको[5] सुत प्रगट गुपाल कविराय तिनि
दंपतिके वाक्य के विलास को बनायो है ॥४॥

दोहा

परगराय परवीनसुत कविगुपाल यह नाम।
मध्य मनीपारे बसें श्रीवृंदावन धाम ॥५॥[6]

---

१. ताके। २. ताके। ३. वासकीनो। ४. गातिग। ५. ताको।
६. ता गुपाल कवि को सदा वृंदावन मे वास।
मध्य मनीपारे रहे ब्रजरायन को दास॥

कवि वंश वृक्ष:

जुगराजराय – मुरलीधर – घनस्याम – प्रवीणराय – गुपालराय

सम्भवत: परगराय, प्रवीणराय का विरद हो। कवि ने अपना निवास-स्थान वृन्दावन लिखा है। वृन्दावन मे मनीपारे मुहल्ले मे इस कवि के वंशज रहते थे। पर आज उस मुहल्ले मे कोई 'राय' का घर नहीं है। पूछने पर कुछ वयोवृद्धों ने बतलाया कि यहाँ पहले 'राय' लोगों के घर थे। पर आज वहाँ कोई राय नहीं है। कवि ने मनीपारे का गर्व पूर्वक उल्लेख किया है। स्वयं गुपाल कवि ने लिखा है कि मनीपारे में मिश्र लोगों का निवास है पर दो चार घर राय लोगों के भी हैं। यह मुहल्ला ब्राह्मणों का मुहल्ला ही है।

मातृभूमि-वृंदावन

कवित्त

चाहे लोकपाल भूअपाल यौ गुपालकवि
हाल ही निहाल होत जाकी रजधांनी में।
स्यांमास्यांम धाम सब पूरनकरन कांम
लेत जाको नाम पाप पिरत ज्यों घांनी मे।
कहां लग बरनवनाइ कै सुनावै कोऊ
जावे जस गाइवे की सकति न वांनी मं।
तीनि लोक जांनी जहां वहै पटरांनी ऐसो
वृंदावनजू की हम रहै रजरानी मं ॥६॥*

मनीपारौ

परम सुथांन भूमि निकट विहारीजूके
इत राधा मोहँन[1] के घेरे कौ मिलाउसौं।
जामें मिश्र परम उदार करें बास पुनि
जोंरसी[2] जबर थोकदारन मराउसौं।
भनत गुपाल तामें चारिक हमारे घर
भूमिया वनिकद्वैक परन पराउ सौं।
एक तै अधिक एक थोक सबही है, परि
मनीपारौ विप्रनसौं जटित जराउसौं ॥७॥

---

* इस कवित्त मे कविने वृन्दावन की महिमा का गायन भक्ति और श्रद्धा के स्वरो मे किया है। कवि चैतन्यसम्प्रदाय से सम्बन्ध रखता है। इसलिए राधा-कृष्ण की निकुञ्ज-लीलाभूमि का दिव्य रूप कवि की वाणी में मुखरित हो उठा है।

१. मोहन। २. जोईसी। ३. एक ते।

गृंथ हेत

जग दुष पांन जांनउ जे विराग ग्यान
आमेंगुण घणे गुणमांननि रिझवेके ।
करें जोई काम तामें दगा नहि पाई हांनि
टोटो नहि आवे, आमें हुन्नर कमेवे के ।
सबही को ग्रांन धनमांननको राजीकर्नं
धरन मरन गुणमांनन रिझवेके ॥
कुजस गवैवे के औगुजस वढेवे के
सुकेते हेत दंपतिविलास के वनैवेके ॥९॥*

गृंथ प्रियोजन

कविता[1] कृति दुषमुष.[2] के कवित बनाअेदोइ ।
कवि प्रवीन पितुकों जबहि जाइ सुनाअे सोइ[3] ॥१०॥
है प्रसन्नि[4] ताही घरी आज्ञा मोको दीन ।
दंपति वाक्यविलास सुत कीजे गृंथनवीन ॥११॥
जिनकी[5] आज्ञा[6] पायमें कीनों, गृंथप्रकास ।
कहत सुनत याके सदा होइ वुद्धि: परगास ॥१२॥
जिनि वातनते जगतमें काम परत नितआइ ।
तिनके गुण दूषन सकल कहु गुपाल कविराइ ॥१३॥[7]
पिय प्यारी मिलि परसपर, कहि गुणदोष प्रकास ।
यातेनाम धरयो सुकवि दंपति वाक्य विलास ॥१४॥

---

* यह है० प्रति में नहीं है ।

१. लेपक । २. दुष्य । ३. कवि प्रवीन कों जाय कें सबहू सुनाये सोइ ।
४. प्रसन्न । ५. तिनकी । ६. अज्ञा ।
७. तिनि हजिगारन करि जगत कुरम करत प्रतिपाल ।
तिनि हजिगारन कों अबै बरनत सुकवि गुपाल ॥
यह दोहा मुद्रित प्रति में भी है ।

संमत

ठारह से पिच्यासिया पून्यो अगहनमास।
दपति वाक्य विलास को तव कीनो परकास[१] ॥१५॥

ग्रंथ सूची

कवित्त

धन दुप सुप घर वाहर प्रदेस देस
अमल अनेक पेल सूची परकासके।
सास्त्रअुपसास्त्र वर्नाश्रमसोध मदराज
सहर प्रबध अगरेजन के पास के।
वनिज, रकानि सव जातिवे विधान अध
माधमजिहान गुण प्रकृति' तिहासके।
सुकृत प्रकास ज्ञान भवित फल तासमे
गुपालजू विलास वहे दपतिविलासके ॥१६॥*

सवैया

देपि नइरचना वचनानि की सो सुनिके सवने लिपवायो।
पडित राज समाजनि में कविराजन के मनमें अति भायो।
दपति वादहि[२] को मिसुकै सव बातनको[३] सुपदु प्प[४] दिपायों।
'रायगुपाल विराग बढामन दपतिवाक्य विलास बनायो[५] ॥१७॥
नारि निपेद कियो रजिगार वो प्रीतम जो वरनो ठहरायो।
प्यारहिप्यारमें प्यारी प्रवीननें चातुरी ते पियको विरमायो।
रेनिदिना[६] विछुरे[७]नहि नेरहू भोगविलास करे[८] मनभायो।
रायगुपालको पास ही रपिकैं थीयो भलोअपनों मन भायो ॥१८॥

---

१ परगास। २ बान्हो। ३ रजगारनको। ४ दुप्प। ५ रायप्रवीन के नद गुपाल ने दपति वाक्य विलास बनायो। ६ रैनिदिन। ७ विछुरे। ८ करें।
* यह कवित्त है० प्रति म नही है पर मुद्रित प्रति मे है।

ओकसमें रहसें वहसें वरसें रसरंग भरी[१] चहू घातें।
सुंदरि वैठी मुगंधिन सेजपें सोभामिगानकी[२] सरसातें।
प्रीतम आइके वैठे तहां गलवांही दियेंदियेंअंगप्रभातें।
ऐसे समे रूजिगारनकी[३] कही वालसों लालगुपाल नें वातें ॥१९॥

जग विवस्था पुरसवाच ईस्त्रीप्रति

कवित्त

कुटम के पालिवे कों वोलें झूंठमांव दिन
रेंनि यह प्यारी वूड़े वेललो वह्यो करें[४]।
जिकिरि फिकिरि वीच व्याकुल रहतऊ
घरको मरम नहि[५] काहूसों कह्यो करें[६]।
सुकविगुपाल धन पाएही निहाल होत
विन रूजिगार[७] देहदुपसो दलो[८] करें[९]।
वस्ती वीच प्रभुही करत परवस्ती यह
हस्ती कोसो परच गृहस्तीके रह्यो करें[१०] ॥२०॥

दोहा

याते कोऊ रुजिगारको कीजें कछूउपाइ।
धन कमायकें लाइये जाते[११] सब दुप जाइ ॥२१॥

इस्त्रीवाच[१२]

जग हितार्थ काजे भली प्रश्न करयों तें अंन।
ज्यों मननें वुधि तियातें प्रश्नकरयों सुप दैंनि ॥२२॥*

---

१. भरी। २ सिंगारन। ३. कही। ५. नहीं (४) (६) (९) (१०) करें।
७. रुजगाल। ८. दहूरो। ११. ताते। १२. इस्त्रीवाच पुरुष प्रति।

*है० प्रति में नहीं है।

सो मन, बुधि संवाद अब बरनि सुनांऊ तोहि ।
जाके कहत[1] रसुनत में द्रढ़ विराग उर होहि ॥२३॥*
दंपति के संवाद मिस जग दुपसुपकी बात
सोगुपाल तोसो अबै करत सबै विष्यात ॥२४॥*

धन सुप-दुप वर्णन

कवित्त[1]

रीतें सबहीतें नित गाम गुनी गीतें दिन
आनंदमें वीतें काज[2] होइ[3] चित चीतें है।
रापै बडी सीतें डरें काहूकी न भीते हीते
अुपजैं गुपालकवि नित नई नीतें है।
अरिकें अरीतें जे अनीतेहे अजीते लै करीते
पालिकीते जे वलीतेजग[4] जीते हैं।
धन धनहीतें, धनि धनि धनहीते प्यारी
धन धनहीतें सब धनध नही तेंहैं ॥२५॥

इस्त्रीवाच

काया कू डर नाहिना मायाकूं डर होत।
याते याके दुप सुनो जो जग होत अुदोत ॥२६॥

कवित्त

कांम क्रोध लोभ मांझ डारे बांधि बाधि नित
जोरतमे जाके[5] अपराधनते दाधिहै ।

---

१. इससे पूर्व ह० प्रति में यह दोहा है :
"धन पायें सुप हो जो हमसौं कहो गुपाल।
ताके सबै उपाय कौ तुमें भंजि हैं हाल॥"
२. काम। ३. होत। ४. जग। ५. ज्याके।
* ये दोहे ह० प्रति मे नही हैं।

आधि रहै मनमें, नराधिपति बांधिवेकै
पोदिके¹ अगाध धरधरें होति व्याधि है।
साधिके समाधि साध साधनां न साधि याहि
साधिकै असाध कैसे प्रभु को अराधिहै
सुकविगुपाल क्यों कहावत धनादिपति²
नित धनमाझ अैसी रहति उपाधि है ॥२७॥

पुनि

निर्धन गरीबनकी बूझतु न कोउ बात
जातिपांति नातहू के होत हित हांति है।
होतौं देपि घरमें पुसामदि करत सत्र
जिकिरि वसाइ आइ निक्ट बसाते हैं।
उकर बढ़ावें धन ही में धनआवें सदा
या के घर आसेहीते वनें सब बातें हैं।
मिलि बहुधांते करें कारज मुहाते याते
सुकवि गुपाल सब दौलतिके नाते हैं ॥२८॥*

इस्त्रीवाच

सवैया

पालहु जो तिहु लोकनको छिन अेकहि मांझ करें सुनिहाल है।
हालहि होत कृपाल दयाल कृपा करि जाकों जगावतु भाल है।
भालहै सूरजकोसो सदा [illegible] जनकोकरे बुद्धि विसाल है।
सालहै सो तिहु लोकनको सोई लाजको रापनहार गुपाल है ॥२९॥*

दोहा

संपतिकी पति रापिहै श्रीपति पति पति आप।
मिलिके दंपति मेंटर्य रतिपति कौसंताप ॥३०॥

---

१. पेदिकें, २. पिय।
* यह है० प्रति में नहीं है।

तन ते उद्यम होतु है उद्यम ते धन होत।
धन ते सुष जस पाइयै याते[1] नाम उदोत ॥३१॥

याते उद्यम करत में कबहु रोकियै नाहि।
धन को प्रापति पाइयै प्यारी याके माहि ॥३२॥

बिनां गये पर देस के धन प्रापति नहि[2] होइ।
धन प्रापति बिन जगत में क्यों सुख पावै कोइ ॥३३॥

इस्तीवाच

कवि गुपाल हमसौं अबै कहो सुष्प परदेस।
जब[3] जैयो परदेस को धन कमान सुविसेस[4] ॥३४॥

इति श्री दंपति-वाक्य-विलास नाम काव्ये प्रवीनराय आत्मज गुपाल‡

तिथि

---

१. ह० ताते २. ह० क्यों ३. ह० तब ४. ह० कमान के हेत।
‡ ह० प्रति में नहीं है।

द्वितीय विलास

प्रदेस सुष

पुरुसवाच

दोहा

देस छोड़ि परदेस में इतनें सुष सरसात ।
प्यारी सो सुनि लीजियें तिनकी मो सौं बात ॥१॥†

कवित्त

देसन की सैल धनहू की रेलफैल आवें
चातुरी की गैल मन लगत कमैंवे में ।
दारिद की हांनि धान[1] मांनन के मांन गुण[2]
मांनन[3] सौं जांनि होति पहचानि छैंवे में ॥
फिकिरि[4] न एक गुन आवत अनेक यौं
गुप.लजू विसेप[5] वस्तु आवति मुलेवे में ॥
पैंवे अरु दैंवे जस लैंवेकौं सवाद प्यारी ।
एते सुप होत परदेसन के जैंवे में ॥२॥

---

† हे० में नहीं है ।

१ हे० धन; २ हे० गुन; ३ हे० मानन; ४ फिरि; ५ हे० विशेक ।

प्रदेस दुख

दोहा

देस रहै सुख नाहि बिना गये परदेस के।
कहतु कहा करि पाइ उद्यम कृत कीए बिना ॥३॥†

इस्तीवाच

कवित्त

ठौर ठौर बास मन रहत उदास बास
बासकौं प्रवीन[1] पिय परघर जाइवौ[2]।
अपनी खबरि पहुचाइवौ कठिन पुनि
घरकी पबरि बड़े जतनन पाइवौ ॥
समझै न बानी लगै देसन कौं पानी ठगु
चोरत नहानी मिलै समै पै न पाइवौ[3]।
हाय बिमलाइ मरि जाइवौ सहज परि
जाइकै कठिन[4] परदेसकौ कमाइवौ ॥४॥

---

†हि॰ प्रति में इसके स्थान पर यह सोरठा है।
"जेते कहे न जात तेते दुप परदेस के।
निस दिन साहस प्रात घरकी लौं लागी रहैं।
प्रसंग से अनुमान होता है कि यह सोरठा स्त्री द्वारा कहा गया होगा।

१. गुपाल [हो सकता है कि कवि ने अपने पिता 'प्रवीन' के रचित कुछ छंद ग्रंथ में समाविष्ट किये हों! इस छंद में आया 'प्रवीन' नाम इस बात की ओर संकेत करता है। हि॰ में इसके स्थान पर 'गुपाल' कर दिया गया है।]

२. जायबो ३. पायबो ४. कठिन

पुरुषवाच

पूरब

दोहा

रूप विसेस विसेस न भूमि सुहामन देस।
जाय करें याते अबे पूरब को परदेस ॥५॥†

कवित्त

ताफता ख्वाफना मुम्मज्जर श्रीमाफ
मषमल खमु केसी पट नांनां सुषदाइयें।
सरस कृपान तरकस रुकमान वाण
जरकसी चीरा हीरा जहाँ जाइ लाइयें।
सुकवि गुपाल फुलवारी धांम धांम अव
श्रीफल कदलि पौंडा पांनन को पाइयें।
बड़े बड़े केस होइ नंदुन असेस प्यारी
पूरबके देसमें विसेस सुष पाइयें ॥६॥†

दोहा

जीवन जीवन हरहि जग प्रान हरें जग प्राण।
पूरबमें जमदूतिका सबको देति पिरान ॥७॥†

इस्तीवाच

सोरठा

लगें चोर ठग वाय पेट चलें पांनी लगें
कोजें कबहु न जाइ पूरब परदेस कों ॥८॥†

---

† है० में नहीं है।

कवित्त

पानीं लगि जात बहु फूलि जात गात पुनि
पेट चालि जात कछु पाय जात कबहूँ ॥
जादू करि करि के सभोग गुपकाज पसु
पछी करि राखें नारि नरन कौं अबहूँ ॥
ब्राह्मन बनिक मीन मास मधु खात तेल
हरद लगाइ न्हात नारी नर सबहूँ ॥
फांसी दैके हाल मारि डारै ठग जाल याते
जैये न गुपाल दिसि पूरबकी कबहू ॥९॥†

दक्षनदिसा

पुरुषवाच

दोहा

दयामान धनमान पुनि लोग बडे गुनमान।
याते पछिम देसको कीजे सदा पयान ॥१०॥†

कवित्त

चीरा चीर सालू सेला समला बहाल दार
जरकसी काम जामें होत नाना भांति हैं ॥
सुकविगुपाल लाल रतन प्रवाल मनि
मानिक बिसाल मोती महगी सुजाति है ॥
मेवा औ मिठाई फल फूल मूल धूल गूल
तरुनी अनूपन्हि सुलक्षत गात है ॥
देखे बने बात सब सोभा सरसात प्यारी
दक्षन दिसा के सुष कहे नहिं जात हैं ॥११॥ †

---

†हि० में नहीं है

इस्तीवाच

दोहा

दक्षण मुनिपिय कांनदे दक्षन दक्षन जात ।
लक्षण लछिन लपि लषन लक्षन ही लगि जांत ॥१२॥†

कवित्त

धोटूलो उघारी निरलज्ज रहै नारी मांस
मदिरा अहारी द्विज होत अनाचारी हैं ॥
सुकवि गुपाल प्याज लहसन षात सब
लूटें ठग चोर प्रजा रहै न सुधारी हैं ॥
लोगनि रहन भानजे को व्याहि बेटी देत
रीति बिपरीति जहाँ देषत ही न्यारी है ॥
वढत अगारी होति बडबडी प्वारी दिस
दक्षन मझारी जात होत दुष भारी है ॥१३॥†

पछिमदिस

पुरसवाच

दोहा

रापें दक्षन तें अबें जो दिस पछिम जात ।
ताके अब सुनि लीजियें प्यारी गुण अवदात ॥२४॥†

कवित्त

लोग दयामांन तिय सुघर सुजांन मीठी
बोलनि निदांन नीर लगें ना जहाँ कहूँ ।
वृषभ विसाल ऊँट ऊँचे पुलकार वस्त्र
विविध प्रकार ऊन सूत के वहाँ कहूँ ॥

---

†हि० में नहीं है

सुकवि गुपाल ताते तरल तुरग मिलै
मधुर मतीर भूप लगति जहां कहूं ।।
पार नहि लहूं हिय सोचत ही रहूं प्यारी
पछिम दिसा के सुप बरनि कहा कहूं ।।१५।।†

इस्तीवाच

दोहा

मरत रयनि दिन वारि बिन भटकि भटकि नर नारि ।
करियै नही पयान पिय पछिम ओर निहारि ।।१६।।

कवित्त

धूरिन के थल आवै ढोलकै ढमकै जल
तरु बिन थल तामै सोभा नाहि पामै हैं ।।
चामर रु गेंहू रस गोरस ना फलफूल
मोठ बाजरी कौं पाय दिवस बितामै हैं ।।
रहत मलीन धर्म कर्म दूरि हीन सदा
पहरत पीन पट ऊनन के जामे है ।।
सुकवि गुपाल जेते कहत न आमै सदा
तेते दुप होत जात पछिम दिसा मे है ।।१७।।†

उत्तरपंड

पुरुषवाच

हर.दुवार हेकै परसि बद्रीनाथ किदार ।
होत कृतारत जीव यह उत्तरषड मझार ।।१८।।†

---

†दि० में नहीं है ।

कवित्त

लाइचो लवंग दाप दाड़िम वदांम सेव
सालिम अंगूर पिस्ता पेंयें उठि भोर कों।
कस्तूरीह केसरि जविन्नि जाइफल दाल
चीनी देवदारकी सुगधि चहु ओर कों।
साल औ दुसाला दुसा नांनां पसमीनां ओढ़ि
देपत रहत आछो तियन की मोर कों।
सुकवि गुपाल प्यारी सुनियें तिहोर मोर्य
कह्यो नहि जात सुप उत्तरको ओर कों ॥१९॥‡

इस्तीवाच

सदां सीत भयभीत नर व्याघ्र सिंघ ग्रप घोर
करियें नही पयान पिय उत्तर दिस की ओर ॥२०॥‡

कवित्त

विकट पहार झार घने सिंघ स्यार निरवाहू
नहि होत रथ बहल को जामें है।
गिलटीह गिल्लर अनेक रोग होत जहां
चारिहु वरन जीवहिंसक हरामै हैं।
सुकवि गुपाल सदा सीत भयभीत नर
बरफ के मारे दुरे रहत गुफा मे हैं।
राह में नगामें छोके उतरत तामें जात
बहु दुप पामे लोग उत्तर दिसामें हैं ॥२१॥‡

इतिश्री दंपति-वाक्य-विलास नाम काव्ये प्रदेससुखदुख वर्नन नाम द्वितीयविलास।

---

‡है० में नही है

तृतीय विलास

मास प्रबंध "चैत्रमास"

पुरुसवाच

दोहा

चंत प्रवासहि को भलो सस महिनन में होइ।
सीत गरम जामें न बहु दुप व्यापत नहि कोइ ॥१॥‡

कवित्त

होत पतिझार झार फूलै फुलवारि कीप
उलहत डारनपे भ्रमर भुमायँ हैं।
बोलत बिहग सर सरिता उमंग अंग
अंग जे अनंग की तरग कदि छाए हैं।
सुकवि गुपाल जामैं सीत न गरम सम
रजनी दिवस मानौं तोलि कैं बनाए हैं।
सुप सरसाऐं होत दपति के माझे बडे
भागिन ते आए दिन चैत के सुहाए हैं ॥२॥‡

इस्त्रीवाच

कवित्त

सीतल समीर उर तीर सो करेगी पीर
लहरि उठैगी पाँचबानजू के वादिनी।
कोकिला की कूक हूक करेगी करेजे सुप
सेज न सुहेवै पर्न दूप ह्वै है ता दिनी।

‡दै० प्रति में नहीं है।

केसू कचनारिन के फूलेफूले हार वन
बागन में लगेंगे अंगार सम ता दिनी।
मेरी कही यादि जब आवैगी गुपाल तब
करैगी बिहाल हाल चैतहि की चांदिनी ॥३॥‡

बैसाखमास

भमर विदेसी नर गंध.होते अंध होत
त्रिविधि पवन दिसविदिसन छाइयें।
सुकबि गुपालजू पराग बरसत अति
अवनि अकासमें सुगंधि सरसाइयें।
सरसरितांनमें कमलकुल फूले बहु
अंबन में कोकिल सबद सुपदाइयें।
ह्याही बिरमाइये अनत नहि जाइयें
बिसाप की वहार बड़े भागिनसौं पाइयें ॥४॥‡
कफ कीयो राज वाय पित के अकाज उठे
गरम बढ़ति जाके प्रथमहि पापतें।
जानकी जनम अषतीज नरसिंघव्रत
करि सब नरनारी रह तउ साषतें।
देषत गुपाल फूल बँगला कुसुम केलि
जल बाग बिपिन बिहार अभिलाषतें।
मांनि मेरी भाप प्यारे प्रेमरस चापि आछो
देयो बयसाप बयसाप बयसाषतें ॥५॥‡

बैसाखमास के उत्सव : जानकी जन्म, अखतीज, नृसिंह व्रत और फूल बंगला आदि विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाएँ।

‡ है० प्रति में नहीं है।

जेष्ठ मास

पासें पसपाने तहपाने सुपसाने होद
अतर गुलावन के ठाने तहठा रहैं।
छूटत गुपालजू तिवारन फुहारे न्यारे
जहां जलजतुन¹ की परत फुहार हैं।
चदन विचार द्वार द्वारन पे टाटी
दीह चलत बयारि फूलि रही फुलवारि हैं।
फूलन के हार घर सीतल अहार सोये
सेजन समरि लेत जेठकी बहार हे ॥६॥‡
पंथ थँवि जाति लघु होति अति राति सूर
तपत प्रभात ही से चड कर कीना मैं।
सुकवि गुपाल जे प्रबल जल थल जीव
विकल कल न पल परत जवीना मे।
मोर अहि मृग सिंघ सोवत अवनि अबु
अनिल अकास ए अनल समचीना मैं।
बल होत हीना अग भीजत पसीना यातें
जाइयै कहीना पिय जेठके महीना मे ॥७॥‡

आसाढ

चक्र देकें चचल प्रचड चलै पौन चारयौ
ओर ते घमडि घन गरजे धुका ढके।
सुकवि गुपालजू सन्यासी साध सत द्विज
नारी नर पक्षी पशु बैठे गहि आड के।
देपि झला वोर नभ ओर जोरसोर के
पपैया मोर दुर चकोर चितचाढ के।
दामिनि दहाड देपि काम धरी वाढ़ जब
दपति कों आड परी आवत असाढ के ॥८॥‡

---

१. जल-जत्र, जलयत्र=फुहारे
‡ है० प्रति में नहीं हैं।

कीच औ मचक टपका की है ससरु पर
तियसों असक लगि जात कांम जागे ते।
मंदिर चुचात पपरा को लियें हाथ सौंज
सब सहलाति है सरद सब जागे ते।
काटें डंस माछर गुपाल तन आठों जाम
दादुर पपैया फोरें डारें कांन रागे ते।
मेह झर लागे धरनी ते चठें आगे एते
होत दुप आगे ते आसाढ़ मांस लागे ते ॥९॥‡

सामन

सुनि घनघोर कों झिगारत है मोर देषि
दामिनी की ओर सुप हरित मही के हैं।
सुकवि गुपाल द्रुम लपटी ललित लता
केतुकी कदंब गंध कुंद की कली के हैं।
भूपन बनाइ के मलारन को गाइ गाइ
मचक[१] बढ़ाय संग झूलत अली के हैं।
प्यारी पिया पीके मनभाए होत जीके स्वाद
सेज पें अमी के होत सांमन में नीके हैं ॥१०॥‡
घनन की घोर पिक मोरन की सोर सुनि
परति न कल सुपसेज परें तजनी।
झींगुर झिगार औ बहार फुलवारिन की
देषत अपार दुप होत हिय हजनी।
सुकवि गुपाल मौंन भूषन वसन पांन
पांन परिधांनन सुहाति सैंन सजनी।
प्यारे मनभांमन की आमन की औधि टरें
डग होति वांमन की सांमन की रजनी ॥११॥‡

---

१ पेंग
‡ दै० प्रति में नहीं हैं।

भार्दों

गाज[1] सुनि बाधत हैं गाज ब्रजराज तामें
जनमे गुपाल जदुनाथ कुल जादौं के ।
करि बनजात्रा करबटनी करत लोग
लेत सुध राधा अष्टिमी में दधिकादौं[2] के ।
रहि रिषि पंचिमी सतोहैं[3] न्हाइ देवछटि
बामन दुआदसी अनत पूजि आदौ के ।
साझी को यरादो पित्र पक्ष लगें यादौं याते
पाइयत दिन भूरि भागिन ते भार्दों के ॥१२॥‡

झिल्ली झनकार ससा पवन झकोर घन
धार धरधार अधियार अधि कादौ में ।
सुकबि गुपाल घनघोरत घमडि घने
जान्यौ न परत दिनरैनि व दिवा दौ मैं ।
संमरसता वत सरीर कौं सरस सो सुमन
सर साधि साधि व्याप्यौं सत सादौ मैं ।
देषी दधिरादौ जन्म लीयौ हरि जादौ पूरो
काम कौ यरादौ करौ रहि घर भादौ में ॥११॥‡

क्वाँरमास

निर्मल नभ नद नदिन के नीर नीके
सीत न गरम लागें मोहन बहार के ।

---

१. गाज बांधना ब्रज का एक त्यौहार है। गाज कुछ धागा का समूह होता है। उसके बांधने और खोलने दोनों के अनुष्ठान प्रचलित हैं।

२. कृष्ण और राधा के जन्मोत्सव पर दधि में हल्दी मिला कर परस्पर छिड़कना इस उत्सव की प्रमुख क्रिया है।

३. बल्देव छट या देव छट बल्देवजी की जन्मतिथि है। ब्रज में देव छट के स्थान ये हैं दाउजी (बल्देव, सतोहा, बरहद, बेममा। कवि ने यहाँ सतोहे की देव छट का उल्लेख किया है।

‡ है० प्रति में नहीं है।

पूजत पितर नवदुरगा दसैंरा लोग
सरद सुपद सुप सेज में विहार के।
फूले कांस सेतुही कमोदिनी कमलकुल
सांझी रास रंग के विलासन निहारिकें।
सुकविगुपाल चंदचांदनी अपार जोति
सब ते सरस ए सुहाए दिन क्वांर के ॥१४॥‡

आतप अधिक तम बढ़त अनेक रोग
भोग घरहीं में सुप रहैं तनहीं कौं नां।
पितर भ्रमत औ मियामने[१] लगत दिन
भूपन-वसन तन धारियें मिहीं कौं नां।
सुकवि गुपाल रितु पानी बदलत अति
रति में लगत मनत मान नहीं कौं ना।
सुप लै मही कौं चैन दीजै हमहीं कौं मेरी
मांनियें कही कौं जैयें क्वांर में कहीं कौं ना ॥१५॥‡

कातिक मास

प्रात समें उठि नीकें न्हाति नर नारि राई
दामोदर[२] पूजति बजाय सुर बीना के।
करति चरित्र धारि चित्रनी विचित्र घर
घरन चरित्र चित्र चित्रन के मीना के।
सुकवि गुपालजू अकास जल थल दीप
दीपति दिपति दांन देत द्विज छीना के।
काम के अधीनां होत दंपति प्रवीना सुप
देषियें कही ना जैसे कातक महीना के ॥१६॥

---

१. भयावने, भयानक

२. कार्तिक-स्नान एक पुरानी प्रथा है। स्नानोपरान्त ब्रज में राधा-दामोदर की पूजा होती है। 'राई' शब्द यदि आभीर-साहित्य की 'राही' की ओर भी संकेत करे तो, अनुपयुक्त नहीं।

‡ हैं० प्रति में नहीं है।

राधाकुंड न्हान दीपदान गिरराज बडी
लहुरी दिवारी जुआ पैले निसि कुहू कौं।
अन्नकूट गोरधन जमद्वनिया[1] सनान
मैयाद्वैज गोकल प्रदक्षना दैउ हूँ कौं।
गउ गोपआठैं अपंनोमी को परिकमा
दैलीजं हरिलीलनि कौ सुप छाडि महू कौ।
देवन जगाय पचभीषम आन्हाइ नहिं
जाइयं गुपाल कत कातिग[2] मे कहूँ कौं ॥१७॥

अगहन मास

षट रस विजन के भावत हैं भोग काम
केलि कै अधिक मन लागत सबन कौं।
सर सरितान फूल फूलत सुगध गुरु
कहुक कल्ति कल हसन के गन कौं।
सुकवि गुपाल हरि अस है प्रसस यही
स्वारथ में देत परमारथ जतन कौ।
सुप होत तन कौं बढत मोद मन कौं
सुमोहे महा मन कौं महीना अगहन कौं ॥१८॥‡
द्वार लग डग पग मग में धरयौ न जात
अतन अधीन तन भए दुह जन के।
छेदत हृदयं पौंन गौंन भौन भीतरहू
ठाढे होत रोम रच छुएँ जलकन के।
सुकवि गुपाल हरिसह प्रसत यही
स्वारथ में देत परमारथ जनन कौं।
सुप होत तन कौं बढत मोद मन कौं
सुमोहै महा मन कौं महीना अगहन को ॥१९॥‡

---

१. यमद्वितीया पर मथुरा में बडा भारी स्नान-पर्व प्रतिवर्ष होता है।
२. क, ग कातिग कानिग
‡ ह० प्रति में नहीं है।

पूसमास

तरुणि तरुण तन तात सों तपन तेल
तूलरु तमोल सबही के मन भाए हैं।
जल थल अंबर अवनि घर बाहर हू
असन वसन सब सीतलता छाए हैं।
सुकवि गुपाल रजनी में घंडे अंग होत
दिवस में कहूँ दिन जात न जनाए हैं।
सुप सरसाए रसरंग बरसाए बड़े
भागिन ते आए दिन पूस के सुहाए हैं ।।२०।‡

कटति न राति नहीं दिन जान्यौं जात सोंज
सीरी न सुहाति बात जाति सु कही ना में।
ठिरि फटि जात गात कारे परि जात न्हात
बाजें दांत हाथ चीज रहति गही ना में।
चाहिये गुपाल घने असन वसन दोन
पति के उधार दिन दुपद दही ना में।
मोम जी रहीनां ठंड जाति सु सही ना कल
परति महीना कहु पूस के महीनां में ।।२१।‡

माह मास

मृगमद मलय कपूर घूरि घूसरत
पैलत बसंत संत दसहू दिसान में।
कोकिला कपोत कीर कोइला कहुक करे
भौरन की भीर भ्रम्यो करति लतान में।
तालदै गुपाल गुनी गावत पियाल वीन
सारंगी मृदंगहि मिलावत हैं तान में।
व्यापै काम आनि भले लागै पांन पान सुप
सबते निदांन होत माहके दिनांन में ।।२२।‡

---

‡ है० प्रति में नहीं है।

जमति बरफ चार्‌यो तरफ दरफ सीत
सिरफ दुपहि एक हरफ न चैन चाह।
सुकवि गुपाल भौन भीतरहू बैठे चलि
सीतल पवन करै डारतिहै नरगाह।
नैंक हलै चलै बलै गलै जात सीत पलै
कलै न परति पग धरयो नहि जात राह।
हियै होत काह जब जब उठै कामदाह
कोऊ रहै न उमाह उतसाह बिन नाह माह ॥२३॥‡

फागुन मास

छाडि कुलकानि मुप माडि छीडि छाडि पट
गहि नर नारि गाठि जोरे पट झीना में।
सुकवि गुपाल जू उडावत गुलाल लाल
डारे रगलाल पट पीतम के सींना में।
पेलत पिलावत औ हँसत हँसावत
दिवावत औ देत गारि रहत न कीना में।
प्रेम पन पीना होत काम के अधीना सुप
देपियै कहीं ना जैसे फागुन महींना में ॥२४॥‡
लोक लीक लोक लाज काजन बिसारि लोग
गारी दै बकामे बकैं मानत हैं नहिना।
सुकवि गुपाल परनारिन सों रानै गाठि
जोरि संग नाचै पारे मार्मरि दे देहिना।
छोटे बडे ऊच नीच एक सम होत बहु
रूपिया सें डोलै लाज रहति मुरुहिना।
सहिना परनि सिप तहिना न देत याते
सबमे निलज यह फागुन को महिना ॥२५॥‡

---

‡ है॰ प्रति मे नहीं है।

घुरैंडी

निलज बकत कोऊ काहूते सकत नांहि
रोके ते रुकत घूरि उड़ावत ग्वंडे की।
सुकवि गुपाल कीच मांटीमें अटत चांदि
लट्ठन पिटत राह निकरत छेंडी की।
गदहा पै चढ़ि बढ़ि भड़आ बनत लोग
लहंगा पहरि बात करत छलेंडी की।
जोरत हैं लेंडी काम करत कुपेंडी याते
ऐंडी बेंडी देवो बात फागुन में घुरेंडी की ।।२६।।

"इतिश्री दंपतिवाक्यविल-सनामकाव्ये बारेमास प्रबंध वर्णनं नाम तृतीय विलास"

चतुर्थ विलास

निजदेस प्रवन्ध : वरात सुष

पुरसवाच

सोरठा

जात बरातहि[1] जाइ[2] घर जूयौ जयौ परदेस ते ।
सुनियें कान[3] लगाइ ताके[4] सुप वरनन करूं ॥१॥

कवित्त

हिलनि मिल्नि को सरस सुप होत नाना
भातिन की रहसि वहसि वतरात मे ।
देपि नई नारिन के ख्याल औ तमासे राग
रगन में गरक रहत दिनराति मे ।
सुकवि गुपाल फूलें गात न समात जब
बैठि जाति पाति गारी पात भात पात में ।
बनें बडी बात जब दबति[5] घरात तब[6]
जीवत को लाहो लोग लेतह[7] बरात मैं ॥२॥

इस्तीयाच

दोहा

जितने जात बरात में दुख नितप्रति जहां होत ।
कवि गुपाल तितने सुनो हमसों बुदि उदोत ॥३॥

---

‡ है० प्रति में नहीं है ।
१ है० बरात तो, २ है० जाय ३ है० कान, ४ है० मारे
५ है० दबत ६ है० तहा ७ है० लेत हैं

कवित्त

राहु चलें धरती में सोमनो परत पुनि
भोजन मिलत वाइवे हीं आधी राति में।
दामनि घटेपें होत गांठिको परच जब
आवत सरम घटि चलन की बात में।
सबही सों करत रमूज मसपरी लोग
सायनि विगरि जो पें देषत घरात में।
कहत गुपाल कछू आवत न हाथ सात
दिनहीं सनीचर लगतु है बरात में ॥४॥

पुरस वाक्य

जातिसुष¹

वह एक ठौर य अनेक ठौर राजें वह
जड्य चित न्यहाल चंगा करें नंगा को।
उहु उहि लोक उच्च पदवी कों देति इह
देति इहि लोक ही लागत नेंक रंगा को।
सुकवि गुपाल उह पातिकीन तारें आप
सम करि डारें यह पोलि सब दंगा को।
मन की उमंगा करि करो सतसंगा याते
गंगा ते सरस है दरस जाति गंगा को ॥५॥
सादी औ बधाई सब याही ते सुहाई लगें
याहीते मिलन भलो होत गोत नात ते।
याही तें परत काम जीवत मरत पुनि
यही तिमतारी करें पातक की बात तें।

---

१ यहाँ से "ब्याह सुष" तक के प्रसग है• प्रति में नही हैं।

और को तनक छिद्र मेंह सो करन्त निज
मेरु ते सरस छिद्र करै तुरा गात तैं ।
जीतो नहि जाति तासों कछु न बसाति याते
भूलिकें न पालौं कबी पारै राम जाति तैं ॥६॥

इस्त्री वाच

हालही सुलंपी कौं कलंकी करि देत औ
सुलंपी को कलंकी कै मिलावै गोत नांत तै ।
कबहूं गुपाल पातो पीवतो न देपि सकैं
ऐवन उघारि कैं दिपावे नीचो बात तै ।
और को तनक छिद्र मेंरसो करत निज
मेंरते सरस छिद्र करै तुरप[1] बात तैं ।
जीती नहीं जात तासों कछु न बसात याते
भूलिकैं न पालो कबी पारै राम जाति तें ॥७॥

पुरस वाच

मिजमानी पाइवे के सुप

मिजमांनीं कौं जो कबहैं वहुत दिनन में जाइ ।
तब गुपाल मिजमांन कौं इतने सुप सरसाय ॥८॥

कवित्त

बातन कौं मारिके निवाले रोट मारथो करै
आदर अधिक होत हुक्का अरु पानी कौं ।
सुकवि गुपाल देषते ही हरे होत औं
कुसल षेम पूछि मीठी बोलत हैं बांनी कौं ।

[1] तुच्छ

नेह में मघत अपनायसि सघति मिल
मेटत मै भारी मुप होत जिदगांनी कौं।
करि महरगांनी प्रीति बढत पुरानो बडी
होति मिजमांनी जब जात मिजमांनी को ॥९॥

इस्त्री वाच

दोहा

आगे पाछै औरकें, सेषी मारत जाय।
याते काहू के न मिज-मांनी पेंये आइ ॥१०॥

कवित्त

पराई पछीति बैठि बानी परे आपनौं
जिमावत में जाको सूज्यो रहै मौं लुगैया को।
सुकवि गुपाल सदा दबनो परत घर
आअे भाटवांनी परें भोजन बिछैया कौं।
दैनी परें जाइकें मिठाई सहुगाति औ
हलंदा है कटावें बदनाम बाप मैया कौं।
करत चबैया हितू यार जाति भैया सदां
एते दुष होत मिजमानी कें पवैया कौं ॥११॥

मिजमानी पवाइबे कौं सुख

दोहा

कुल घर होत पवित्र पुनि, जग जस होत विष्यात।
बड़ी बात जाकी सदा, जाकें जेंमत जाति ॥१२॥

कवित्त

थोरेई करे तें दस देसन में नांम होत
औडो[1] घडे धन लगै थुकत कमाए ते।

सं० १ औडों=गहरा

मिलत गुपाल बडौ पंचन में मांत ठौर
ठौर होत आदर अधिक आए जाए ते।
नर देही पाय लेत जीवत कौ फल सब
हो में सेर रहे नहिं दबत दवाए ते।
रहें लोग छाए नाम लेत हुहुताए जस
जग में सवाए होत जाति के जिवाए ते ॥१३॥
पनपै न कवी जाकों ऊपर न बजै लाली
रहै दिनेरैनि आए गएन कौ मरकौं।
पीसत पचत घर वारी दिवय रहें लोग
पाइ औ विगूचें जिनें आवें नहिं दरकौं।
जाइ न सकत मुष दूषत बकत औ अनेक
ज्यान होत यह कांम बडी जर कौ।
सुकवि गुपाल चिरिया कौ पेत पायौ याते
होतुह सवायौ घर पाहुने के घर कौं ॥१४॥

पुरुष वाच

प्रेठा ब्याह

दोहा

या विधि सादी होइ जो, तो बरात तो जाइ।
बनत ब्याह जिन बात ते, सुनियें[1] श्रवन[2] लगाइ ॥१५॥

कवित्त

बढिकै न भार्पे[3] औ दलेल मन रापें बात
पंच की न नार्पे[4] वैन[5] सुनें नाहि यादी के।

१ है० सुनियें २ है० कान ३ है० भाये ४ है० नरै ५ है० बैन

नवै राड रंकै दाम[1] खरचै निसंकै नहिं
मांगे यक अबें मन राखें ओप जादी के[2]।
बूझे सब काहू आप रहै मुख चाहू मुखत्यार
करे साहू कवि गावत जुगादी के।
लावै नांहि मांदी मूलै जसकी न यादी ए
गुपाल कवि लक्षन सुधारिवेके सादी के ॥१६॥

इस्ली वात्र

दोहा

बेटा वारे की तरफ, जिनते[3] बिगरत[4] ब्याह।
ते बातें सुनि लीजियै[5] कवि वुधि बल[6] अवगाहि। १७॥

सवैया

मांगत दाम न देत छदाम जे दानि के लैवे कौं[7] हाथ पसारें।
मारे[8] रहै[9] मन सूमता[10] धारि कें[11] मंगितें दूरि ते देषि विडारें।
काहू सलाही की मानें न बात जे गाल कौं[12] मारिकें[13] पेत में हारें।
राय गुपाल बदाबदी कें[14] जे बडाई बिदा करि ब्याह बिगारें ॥१८॥

कवित्त

जाचिक को देखत में हुलस्यो न मन देत
कौडी एक मागें सोई जम महा लगें।
नेगिन के नेग काज पकरत ठोढी दांति
पांतिहि के लैवे काज पात है हहा लगें।
सुकवि गुपाल जामें परच न होइ बनो
ऐसो आप आइ सुख वावत सहालगे।

---

१ है० दाम २ है० जादी ३ है० इनते ४ है० बिगरे ५ है० लीजियें
६ है० हमसों मोत ७ है० कू ८ है० मारें ९ है० रहें १० है० सूंमता
११ है० कें १२ है० मालकू १३ है० मारिकें १४ है० कें

करिके कुजस ब्याह अपनो बिगारे कहौ
और को बिगारत में तिन को कहा लगे ॥१९॥†

ब्याह बेटी कौ

दोहा

जिनि बातन ते बनतु है बेटी कौ भल ब्याह ।
ते बातें बरनन करत सुनहु सकल कवि नाह ।२०।

कवित्त

लैके कुस कन्या मुप दाति की न कहूं जोरें
हाय सबही कौं बानी बोलें यमिरत हैं।
सुकवि गुपालजू बरात तें पुस रापें घटि
चलन हूं देषि हुलपाउन करतु हैं।
रोटी कौं बनावें दाने घास पें चलावें न
करावें पर्च घनो मन सब को हरत है।
बडो रापें जोव ढूढे आप ते गरीब यन
बातन ते बेटी को बिवाह सम्हरतु है ॥२१॥

इस्त्री वाच

दोहा

जो बेटी के ब्याह में चलति बात जे आइ ।
तौ बेटी के ब्याह कौं ढील लगति है नाइ ॥२२॥

कवित्त

होत रहैं जहां कुचपाउ बात वातन में
जैमत के समै में निकारें जाति हेटी कौं ।

† यहाँ से 'ससुरारिके' तक का अंश ह० प्रति में नहीं है ।

देकैं दाति पांच की पचास की बतावैं आप
पंरच करावे घनौ दौलति इकैठी कौं।
सुकवि गुपाल नेंक काहूं सौ न नवें औ दवाइ
लेइ सबे देत बलत घन मेंटी कौं।
सुजस के हेती कोऊ करौ क्यों न केती येती
बात के करे ते बिगरत ब्याह बेटी को ॥२३॥
चहल पहल रथ बहल भए तौ कहा
महल म घास आंयें सरम सन्यो नहीं।
बडन सौं रीति प्रीति नृप सौं करी तौ कहा
दौलति धरी तौ बिन धरम घनौं नहीं।
भनत गुपाल बडे मन में भए तौ कहा
सादी गमी मांह जाति बंधन गन्यौ नहीं।
जगत में आइ कें कमाइ कहा कीयो घर
आयें जो बिरादरि को आदर बन्यों नहीं ॥२४॥

सुसरारिके[1]

दोहा

समध्याने ते[2] जो रहे, तौ जैहै[3] सुसरारि।
तहाँ[4] होत सुष नित नयो, सासु सुसर के प्यार ॥२५॥

कवित्त

नित नई प्रीति रस रीति नई नारिन सौं
आदर अधिक देषि भूलै घरबार कौं।
पौढिवे कौ पलिंग पै गेंदुआ[5] गिलम धौरि
पांड पक्वान मिलै भोजन बहार कौ।

---

[1] 'समध्याने' के पश्चात है।
[3] है [4] है० जहाँ [5] है० गैंदुआ

नितप्रति होत देखि हिय में हुलास सारी
सारे सरिहज सासु सुसर[1] के ब्यार कौं।
कहत गुपाल फूलें अंग न समात मोपं
कह्यो नहिं जात कछु[2] सुप सुसरारि कौं ॥२६॥

सोरठा

इतने सुप नहिं होत, बहुत रहे सुसरारि में।
जाय रहै हरि पोत‡ तौ ऐसी दरि होइगी ॥२७॥

कवित्त

चाहत न सारो औ ससुर जर्यो बर्यो जात
सासु साह्मी परि जहां ठानति लराइ है*।
सारी सरहज कह्यो करति रसोई बीच
पय पय हारी पात सेरुक अढाई हैं।
सुकवि गुपाल[4] घर घेरे ही रहत इह[5]
यानें यहां[6] आय रहटानि भली पाई है।
जाइ लेकैं संग कुल कीरति गमाई ऐसी
जाय सुसरारि घरबार[7] वा जमाइ है ॥२८॥

इरलीवाच

समध्यानैं

सोरठा

छोडो* व्याह बरात समध्यानें तौ आइयें।
जहां जे सुप सरसात सो[8] प्यारी सुनियें[9] मुपदं ॥२८॥

---

१ है० गुजर २ है० कछू ‡ हर बार * धिरकार ३ हैं० कौं (पर यह आगे की तुरो की दृष्टि मे लेखक की ही भूल है।) ४ है० कहत गुपाल ५ है० यह ६ है० इहां ७ है० छाड़यौ ८ है० वे ९ है० सुनियें

कवित्त

अलन चलन देपि करी न बड़ाई कावी[1]
करतब जाके नहि एक मन आयो हैं।
नित मन मस्त पड़ी रह्यो[2] पछितायो जाको
कब ही[3] न रहसि बहसि बतरायो है।
सुकवि गुपाल समबिनि समधी ने नाऊ
नेगिन सौं दुंद छेता धरत[4] मचायो है।
दौलति परचि पछिताय बेटे[5] व्याहि हाइ
ऐसे समध्याने जाइ[6] कानें सुप पायो है ॥३०॥*

पुरुष वाक्य

दोहा

जाकी समधी होति है, सोई[7] समधी होति[8]।
जो ऐसो समधी मिले, जहाँ सबै[9] सुप होइ ॥३१॥

कवित्त

होत नित नयो जहाँ देपत ही मांन पावै
दान[10] सनमांन जब करत पयाने कौं।
संग जात जाके ताके अंग में उमंग होत
बैठें जब तिया आइ[11] गारिन के गाने कौं।

---

१ है० कवू २ है० रही मन मांस तिन रह्यो ३ है० हूं
४ है० दंद जहां मदाही मचायो है। ५ है० बेटे ६ है० जायि
* इस कवित्त से पूर्व है० प्रति में वह दोहा है जो मूल प्रति में इससे आगे के कवित्त से पूर्व है। (जाकी——सुपहोइ) इस कवित्त के पूर्व का दोहा (छोटो——सुपद) आगे वाले कवित्त से पूर्व है० प्रति में है।
७ है० जोइ ८ है० होइ ९ है० तहाँ नहीं सुप कोइ १० है० दांन
११ है० आय

बहसि बहसि होइ[1] रहसि अनेक भांति
भांति भांति भोजन मिलत जहां पाने[2] को।
सुकवि गुपाल[3] कोऊ[4] कहा[5] लौं वपानें[6] मोपें
कह्यो नहिं जात कछु सुष समझ्याने को ॥३२॥

पुरुष वाच

तीरथ जात्रा

रापें घर ही माझ[7] तो तीरथ जात्रा करे।
जहां जे सुष सरसात सो प्यारी मुनियें सुपद[8] ॥३३॥

कवित्त

सुरग में वास सब व्याधि को विनास परगास
भक्ति परम पवित्रताई गात में।
हरि अनुराग होत धन्य धन्य भागि जाके
सुम गति धामें सब पितर अन्हात में।
सुकवि गुपालजू कृतारत कुटम होत
जगमें सुजस बडो नाम होइ जात[9] में।
माला रहै हाथ औ जजार छूटि जात एते
सुष सरसात सदा तीरथ के जात में ॥३४॥

स्त्रीवाच

दोहा

जो साचौ मनहोइ तो तीरथ मन ही मांहि[10]
कपट कतरनी पेट में, कहा होतु है नाहि[11] ॥३५॥

---

१ है० हौंति २ है० पाने ३ कहन गुपाल ४ है० कोई ५ है० कहां
६ है० वपानें ७ है० मांहि ८ जहां जे सुरसरमाहि, ते सुनियें निज
श्रवन दै। ९ जाति १० मांहि ११ न्हाइ

कवित्त

तीरथ गयो तौ न गयौ तौ भयौ कहा जाके[१]
दया दांन सुचि हिय तीरथ अभंगा है।
हरि पद पाइवे कों सुष सरसाइबे[२] कों
पाप के जराइ[३] बे कौ अगिनि पतिंगा है[४]।
सुकवि गुपाल भाव भगति हिये में धारि
सांचे[६] श्रीगुपालजू के रंग में जो रंगा है।
करि सतसंगा नबो[५] परे न कुसंगा सदा
जाको मन चंगा तौ कठौती ही में गंगा है ॥३६॥

पुरुस वाच

दरसन जात्रा[७]

दोहा

मन परसन ह्वेकै जबै हरि दरसन कों जात।
साह्मी हरि सन होत अघ बरसन के कटि जात ॥३७॥

कवित्त

सांझ अरु प्रात हरि मंदिर में जात जब
पाप कटि जात जेते करे बरसन ते।
सुकविगुपाल बहु नेननि कौ सुष होत
ममता अधिक घटि जाति परसन तें।
रूपमाधुरी में जैसौ आवत सवाद तैसौ
आवे न सवाद कबौ भूलि छरसन तें।
करि अरचन साह्मी होत हरि सन मन
परसन होतरु करत दरसन ते ॥३८॥

---

१ है० जाकें २ है० है० नरसाय ३ है० जराय ४ है० हैं ५ है० कबू
६ है० सांची ७ यह प्रसंग हैदराबाद की प्रति में नहीं है।

राष्ट्रीय मराठी ग्रन्थ संग्रह

रती वाच

दोहा
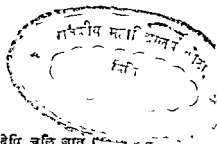
चित जोरी में रहत मन, तियन देवि चलि जात।
ऐसे दरसन करत में, कछू न आवै हाथ ॥३९॥

कवित्त

साचौ करि भाव मन द्रढ करि बैठि घर
मंदिरन जाइ-जाइ काहे सिर पटके।
प्यारे श्रीगुपाल को दरस हाल ह्वैहै जोपै
हिये से करैगो दूरि कपट के पटकै।
यह अटकरि हटकरि कै कहति मति
सटकै कहू को त्यागि जगत के पटकै।
जाको नांम रटि सोधि देवि निज घट तेरा
रांम तेरे तट में अनत जिनि भटके ॥४०।

पुरुष वाच

कथा-कीरतन[१]

दोहा

हुलसत हिय पुलकत सुतन गद्गद सुर ह्वै जात।
कथा कीरतन सुने ते, होति बुद्धि: अवदात ॥४२॥

---

१ यह प्रसग हैदराबाद की प्रति मे नहीं है।

कवित्त

होइ हरि रति कवी पावै न लगति प्रभु
चरित मै रति गति पावै मति दीये ते।
सुकविगुपाल सतसंगति वढति मेरैं
मिलत मुकति औ सुव्रत होति जीयें ते।
मिटत अपान सदां उपजैं विराग ग्यान
काम क्रोध लोभ मद मोह मिटैं छीए ते।
पाप जात कोयें मिटैं त्रियतापी भीयें होत
एते सुष होए कृष्ण कथामृत पीयें ते ॥४२॥

स्त्री वाच

दोहा

कथा कीरतन मनन करि करत न जो मन सोध।
उपजत नहीं विराग मन व्रथा जांत परमोध ॥४३॥

कवित्त

विन मन सुद्धा होत हित मै न ग्यांन जैसें
उपजैं न कर्यौ बीज ऊसर के लूने ते।
मोह मद मांन ते कुसंगिन के संग झूठौ
साधत जे जोग देषादेषो इन उनी ते।
सुकवि गुपाल जाइ श्रद्धा सतसंग विन
सोइ कैं अग्यांन नीदं व्रथा सिर धुने तें।
विन हिय गुनें जे निकारयो करैं कुनै ऐसै
होइ नहि कछु कथा कीरतन सुने तें ॥४४॥

पुरुष वाच

मेला-तमासो

दोहा

सुहृद मित्र सँग साथ में मेला[1] को जब जात।
जीवन[2] को लाहो मिलै[3] हिय अरु नयन सिरात।४५।

कवित्त

आलम हजारण की जामें मुद जात्रा नई
नारिन को देषि षुस रहै मन रेला में।
जाति औ बिरादरि मिलाधिन के सग मिलि[4]
देष्यौ करै सैल यार-वासन के मेला में।
सुकवि गुपाल मजा पाइवे[5] षवाइवे[6] को
देषिवे दिषाइवे को होतु है[7] झमेला मैं
जाइ के सवेला औ झुकाइ पाग सेला सदा
एते सुष छैला बनि लेत मेला-ठेला में ॥४६॥

स्त्री वाच

दोहा

सब बातन को होइ सुष तब कछु दीसे सैल।
नातर मेला[8] में फिरै ज्यो तेली को बैल ॥४७॥

---

१ है० मेले बू २ है० जीवन ३ है० रहै ४ है० नित
५ है० खायवे ६ है० सवायवे ७ है० है ८ है० मेले

कवित्त

चलैमांन होत मन सुंदर सरूप देषि
　　भरयौं करैं मांन मजा आवै ना अकेला में।
सुकवि गुवाल सांनि सौप गांठि दांम भलो
　　पांन पान चाहै[१] यारवासन के मेला में।
हारें पग मार[२] में वह डोलतु है ता में[३] हाल
　　पुदि पिचि जातु है[४] हजारन के रेला में।
आवत अवेला[५] हाथ परे न अघेला सदां[६]
　　एते दुष होत नित जात मेला—ठेला में।४८॥

पुरुष वाच

घोरे की सवारी

दोहा

सौष सांनि[७] आछो वनति[८] चलत सवारी माहिं।
राह चलत हारत नहीं देषत रिपि‡ दवि जाहिं[९]॥४९॥

कवित्त

हारत न मग, मग मारत मजलि हाल
　　सारत सकल कांम आगे निकरत में[१०]।
सुकवि गुपाल सौष सायनि बनति भली[११]
　　होत नहि कष्ट बहु वातन गढत में।

---

१ है० चंचै　२ है० जामे　३ है० असवारी विन तामे　४ है० हैं
५ है० अवेली　६ है० यातें　७ है० सांनि सौप　८ है० वनत
‡ रिपु＝शत्रु　९ है० जरि जाहिं　१० है० मैं　११ है० भलै

मुष होत गात जानि मानें बडी बात औ
सटीप दबि जात जात बरात वहलमें।
भरम वढत जम जग में मढत सेज
तनमें घढतु हैं मुरग के चढत में ॥५०॥

स्त्री वाक्य

दोहा

असवारी के राप ते इतने दुप नित होत।
नवि गुपाल तिनमे सुनो हमसों बुद्धि[१] उदोत ॥५१॥

कवित्त

ढोर की फिकिरि दाने घास की फिकिरि, चोर
ढोरकी फिकिरि, मन रहै बडी प्वारी में।
राति होइ जब तब छाती पै चढत हाथ
पाय टूटि जात[२] गिरि परै जो अंध्यारी मे।
सुकवि गुपाल हिलि-मिलि न सकत औ
निचित हूं कै बैठि न सकत हितू यारी में।
रग छिले न्यारी[३] देह अक्डत भारी[४] सदा
ऐसे दुप जारी होत घोरे की सवारी में ॥५२॥*

इतिश्री दाति वाक्य विलास नाम काव्ये निज देस प्रबन्ध वर्णनं नाम चतुर्थ विलास।

---

१ है० बुद्ध २ है० जाय ३ है० भारी ४ है० न्यारी
* है० प्रति मे इसके पश्चात यह दोहा है

"तीरथ, जात, बरात, की तब सुक दीसै सैल।
अरु पार भाटि रिं चत्र नुसारी गेत्र।"

पंचम विलास

अमल प्रबन्ध : भाँग

पुरुष वाच

दोहा

होइ रंक ते राज मन, उमग होइ बहु गात।
पीवत भंगहि पै मुरग नेक दूरि रहि जात॥

कवित्त

भोजन में स्वाद और स्वाद[1] आवै वातन में
बादि के विवादिन मों जीतें जरि[2] जंग में।
उठति गुपाल राग रंग की तरग[3] यार
बासन के संग फुरसति रहै अंग में।
जात औ, वरात मेला[4] तमासे की दीसें सैल
काम[5] की तरंग उठै तरुनी के संग में।
छूट्यो करै जुंग दिल रह्यो करै दंग दीस्यो
करें कैळ रंग सदा भंग की तरंग में।

इस्तीवाच

दोहा

घर छप्पर घूम्यो करत फाटि जात मुष नैन।
होइ[6] बावरो भंग तें हँसत कहत मुष वैन॥

---

१ है० मवाद २ है० जुरि ३ है० उमग ४ है० मेले ५ है० अनंग
६ है० होन

कवित्त

ऐस को सवाद पाइबे कौ चढ़ौ[१] चाहै स्वाद
हाँसी बकबाद बाप तोरे बकवैया की।
उड्यो[२] रहै मन, बहु घूम्यो करै तन, राति–
दिन मैं लगी रहति लगी के उठैया की।
सुकवि 'गुपाल' यह चाहति[३] है जब, तब
लाज न रहति यामै बाप अरु मैया की।
परच की लगी, लोग कहैं भगी जगी, याते
मति होति भगी बहु[४] भग के पियैया की।

अफीम

पुरुस वाच

दोहा

गरमाई तन मैं रहै, ऐस स्वाद सरसात।
आवै कबहुँ न गाफिली, नित अफीम के पात॥

कवित्त

गाफिल रहै न, असमजस कहै न बैन,
रहैं चित चैन मैं, न यमन कदीम कौं।
सुकवि गुपालजू पवावत पुराक पासी,
पात[५] उमराव[६], बस करन[७] गनीम कौं।
कफ को घटावै[८], घनी भूप को मिटावै[९], बाय
ढिग नहि आवै, औ नसावै दुप नीम कौं।
मिरिबे[१०] कौं भीम, रोग आवत न सीम, याते,
सब मैं मुनीम, यह अमल अफीम को।

---

१ है० पनो २ है० उड्यो ३ है० चढ़ति ४ है० नित ५ है० पाय
६ है० उमराय ७ है० ऐस करत ८ है० नसावै ९ है० घटावै
१० है० भोजन

इस्त्री वाच

दोहा

सब में अमल अफीम को याते पोटो होइ ।
पाए पीछे फिरि कबहुँ छूटि सकें[1] नहि सोइ ।।

कवित्त

झुके रहै पलक, नींद परत न पलक,
परति न कल, धनै दाम चहैं[2] हाथ में ।
चाहत पुराक, मुख निकरै न बाक, पेट—
रहत पचज, झूमें आवत औ'जात में ।
सुकवि 'गुपाल' फेरि छूटि न सकति नेक
लहम न लागै बिन मिलै मरि जात में ।
सूपे रहैं गात, मुहु[3] कडओ रहात एते
सुप सरसातहैं, अफीमहि[4] के पात[5] में ।

पोस्ती

पुरुस वाच

रुक्यो रहै दस्त, बड़ी होत परवस्त, तन
रहत दुरस्त, अलमस्त होत जीव तें ।
सुकवि गुपालजू अमल माँझ झुम्यो करै
फिकिरि अनेक जाको जाति रहै हीव तें ।
बोलनो परै न, धनौं डोलनौ परै न, पान—
पान भलो मिलै घर बैठे ही नसीब तें ।
सांति होत जोवनहि, चाहियै तबीब, एते
सुप होत जीव, सदा पोसत कै पीव तें ।

---

१ है० सकतु २ है० चैयें ३ है० मुख ४ है० अफीम ५ है० सुपान

स्त्री वाच

दोहा

मियाँ पोस्ती कहत सब देत रहत तिय दोस ।
पोसत बारे कौं कबहु रहै न हिय को होस ॥

कवित्त

भागिनो सती कौं, परि जाति ओसती को, तो को
मलिन सुभाव जैसे रहै ग्रसती को हैं ।
सुकवि 'गुपाल' मियाँ पोसती कहत, बल—
के सती को घटै, देह होत बोसती को हैं ।
छोड़ि दे सती कौ, तो को, नीको न लगत रोस,
दोस देत तो को दिन जात कोसनी को है ।
जात जोसती को, नहि रहै होस तोको, सबही
मे सोसती को, ये अमल पोसती को हं ।

आसव के गुण

पुरुस वाच

नित मध्यान हि पीजियै, चिक्कने भोजन साथ ।
प्रात समैं असनान करि सेन समै मे राति ।
प्रात समैं छै टाक भरि, चारि टाक मध्यान ।
आठ टाक भरि रजनि में आसव पी सुप दानि ॥

कवित्त

चौगुनो बढावै काम, मन में प्रसन्न रापै,
पराक्रम तेज बुधि बल बढै होए ते ।
हरष समूल, बहु भूष को बढावै, स्वाद—
भोजन में आवै सुष होत निय छाए ते ।

सुकवि 'गुपाल' करें अमृत को गुण, रोग—
आमन न देइ टिंग, तीन्यों काल पीए ते।
विधि पूरवक चोपो, कड़यो नसा लीयें तोयें
एते गुन होत सदा आसव के पीयें तें।

स्त्री वाच

कहूँ क्रोध करि, अरु भोजन बिना करें ही
निरंतर दिनें रेनि याकौं नहि पीजियें।
भय में, औ' अधिक पियास में न पीजें, पेद—
युत मल मूत्रहि के वेग में न लीजियें।
सुकवि 'गुपाल' निरमल नए बिनां कोई
तरे को गरम में न बिना विधि छीजियें।
तुरसाई साथ बहु रोग उपजावें, याते
भूलि मदरा को पाण कबहूँ न कीजियें।

रती वाच

जात सुमिरन, बहु बकिबे लगत, बावरे—
को गति होति, बांनी चेष्टा के छीव तें।
आलस ही रहै, अनकहिवे को कहै बात
काठ सो रहत, तन, संज्ञा जाति जीव तें।
देपिकें 'गुपाल' जो बड़ेन कौं न मानें, जो
अगम्यां गम्य ठानें, भष्या-भक्ष हि के लीव तें
रोग उपजावें औ सरीरहि गमावें सदा
एते दुप पावें नर आसव के पीव तें।

मदरा गुण

पुरुष वाच

दोहा

होइ तेज बल पून, पुनि ऐस स्वाद उतपत्ति ।
कवि 'गुपाल' मद के पियत रहत सदा उनमत्त ॥

कवित्त

बल होत दून, बढ़ि जात बहु पून, ऐस
बड़बड़ी दीसै[1] तन तरुनि को छीए ते[2] ।
सुकवि 'गुपाल' नैन होत लाल-लाल, तेज
बढ़त विसाल एक प्यालौ भरि पीए ते ।
साहमी चल्यौ जाइ हो लरेन को चाइ रण
मरन को ताय भय जात रहैं हीए ते[3] ।
मद माँझ भीयें रहै, बोतल को लीयें, होत
एते गुण हीयें मदरा को पान कीए ते ।

स्त्री वाच

दोहा

समझें बाद बिबाद नहिं मन[4] सताप अति[5] होत ।
हत सदा मद पियें ते[6] दोष सहस्र उदोत ॥

---

१ है० बडी होति   २ है० तरुनी सग छीएते

३ है० "बहुत गोपाल कवि लरत मैं इन बीच
मरिबे को डर जातो जात रहे हीएते ॥"

४ है० चिन   ५ है० सिन   ६ पियत मे

कवित्त

टूटि जात पाय, छिद्रि आवति हैं साय, भूप
लगत न जाइ, बुरी आवति नियति में।
सुकवि 'गुपाल' दोष सहस उदोत होत,
सील ते कुसील होत, मरत जियत में।[1]
लाज औ धरम धन विद्या सोच भूलि जात
सील ते कुसील होत मरत जियत में।
जात बुधि बुधि गिरि परें लद पद वड़े[2]
होत उणमद सदा मदके पियत में॥

तमापूं पाँनी

पुरुष वाच

दोहा

याको महि महिमां अधिक, कलजुग की सहुगाति।
राजा रंक फकीर सब कोऊ तमापू खात॥

कवित्त

रहै गरमाई, नित मुष अठनाई, सुष-
दाई लगें भोजन, पै पांन के पवैया[3] कौं।
सुकवि 'गुपाल', याते कंठ रहै साफ भलो
सिप्टाचारो होत हितू यार जाति भैया कौ।

---

१ है० प्रति में यह पक्ति इस प्रकार है:—
"सुकवि गुपालजू सहन दोस होत बड़ो
लागत है पाप जाके हाथन दियत में।"
२ है० बड़े   ३ है० पवैया

कहै कैयो काम, घने चाहिऐ न दाम, कबू
कष्ट को न काम, है आराम के लिवैया को।
कहै मैया माया¹, इय रापत नवैया याते
येते सुष होतहि² तमापू के पवैया कौं।

स्त्री वाच

दोहा

थूकत होत हिरान नित, आवति है अति धाँस।
बहुत तमापू पात मैं, नैंननि को होइ नास॥

कवित्त

नैन जोति जाति, कही जाति नहिं बात, औ
घिनात हारो जात गात, थूकै थल-थल मैं।
जीभ फटि जात, पीक लीलैं लगि जात, मागि
के³ हूँ चलि जात मन दूसरे सू पल मै।
सुकवि गुपाल जुरैं दाँत परि जात, हाय
मुष रहै करुवो न आवै स्वाद जल मैं।
परति न कल, रहयो जान नहिं पल, जरि
जातु है कमल या तमापू के अमल मैं॥

हुलासके

पुरुष वाच

दोहा

बढति जोति नैंननि सदा, चलत स्वाफ सब स्वास।
यतने⁵ सुष नित होत हैं, सूँघत जबै हुलास॥

---

१ है० होत २ है० भैया ३ है० है ४ है० के ५ है० इतने

कवित्त

स्वाफ रहै मगज, नरेदमां न आवै पास
जोति बढ़ि जाइ नैन होइ परगास के।
सुकवि 'गुपाल' कबौं[1] सीत न सतावै आइ,
जाको लेत देत लोग राजी रहै पास के।
अमल न आवै वंई[2] रोगन घटावै वास
छिन नहि[3] आवै दांम पोरे लगे तास के।
रुकत न स्वास, जात रहै कफ पास, एते
होत हैं[4] हुलास सदां सूंघत हुलास के॥

इस्त्री वाच

दोहा

सनन सनन करिबो करै[5], सुनमुनाति जब नाक।
सूंघत बहुत हुलास के बहन लगति है आंषि॥

कवित्त

बह्यो करै नाक, ठौर रहति न पाक, देषि
आवति उसाक, थूक थाकत मवास के।
बैठि न सकत सुभ कारज के बीच सदां
सनन सनन कीयौ करै लेत नांस रे[6]।
कहत 'गुपाल' कवि बेर बर छीकत मैं,
ठौर ठौर मारो लोग देत रहै पास के।
छाई रहै बास, बहु लायौ करै बास, एते
दुप परगास होत सूंघत हुलास के[7]॥

---

१ है० कबू २ है० वैंऊ ३ है० बहु कष्ट न करावै। ४ है० है
५ है० करत ६ है० सन सन कियो करै सिनकत नाक के।
७ है० प्रति में तीसरी और चौथी पंक्ति में विपर्यय है।

हुक्का[१]

पुरुस वाच्य

मिलि के जात बरात में, जब भरि हुक्का लेत।
पच पँचायति बीच में, बडी ठसक तब देत ॥

कवित्त

जाति रहै बाय, लोग बैठे बहु आय, औ स-
रीप दयि जाय जाके[२] सुमिके तडक्का ते।
दीसै बडी बात जानी जाय जाति पाति, बहु
आवति है बात याके लेतहि सडक्का ते।
सुकवि 'गुपाल' याकी महिमा[३] अधिक होत[४]
सभा कौ सिंगार दिपि उठै इक्का-दुक्का ते।
सचत असक, बढ़ै हिय की नसक, बनी
रहति ठसक बडो पीवत ही हुक्का ते ॥

इस्ती वाच्य

दोहा

हाथ जरै, मढ़ुडो बरै, जरै करेजा जोइ[५]।
जारत हियो[६] कुटब को, पियत तमापू सोइ[७] ॥

कवित्त

भुरसत हाथ औ' कमल जरिजात पानी[८]
भरि भरि जात मूप लेतहि सरक्का ते[९]।
रहत 'गुपाल' बीच कूरो करकट बहु,
आवति[१०] है बास मुप[११] धूँअन के चुक्का ते।

---

१ है० पीमने तमपू को सुप दुप २ है० तारे ३ है० महमा
४ है० होति ५ है० सोद ६ है० हयो ७ है० जोइ ८ है० पान
९ है० सडक्काते १० है० मुप आवो करै बास ११ है० बहु

होइ सरभंगी, बैठि सकतु न संगी, जाति
पाति में दुरंगी, चलि जाइ इक्का दुक्काते।
घर होइ पुप्पा, नित होइ धुक धुक्का, औ-
कहावतु हैं लुक्का वहु[1] पीवत ही हुक्का ते ॥

चरस के गुन

दोहा

करि सुलफा तैयार जब, चिलम लेत है हाथ।
चरस पिवैया नित नए, लागे डोलत साथ ॥

कवित्त

रहत निसोग[1], संग लगे रहे लोग, जाय
रहत[2] न डर कहूँ[3] काहू के तरस को।
सुकविगुपाल' आवै सरदी न पास, पाव
देतही रकेव आवै अमल अरस को।
मिलि दस पाँचन में चिलमहिं लेत हाथ
पेचत ही[4] दम स्वाद आवत छ रस को
इमृत बरस होत, हिय में हरस, याते
सब में सरस यह अमल चरस को

स्त्री वाक्य

दोहा

मद्दु भभूर्यो सी नित रहत, सहुबति रहति कुटाँट।
चरस पिवैयन को सदा घर होइ बारह बाट ॥

---

१ है० लोग २ है० चाहत न भोग ३ है० कहूँ ४ है० मे

कवित्त

हाथ रहैं दाग, औ' करेजें जाय[1] लागि, ढूंढै
आगि जाग जाग, परि जाइ[2] बस जिस के।
सुकवि 'गुपाल' छाय जाय बदु बास, लोग–
बैठि न सकत पास, अरस परस के।
पाग घटि जात[3], पुनि आंखि कटि[4] जात, हाल
होत लोट पोट, दम पेंचन ही इस के[5]।
सूपि जात नस, कलु आवत न रस, एतै
होतहैं[6] कुजस सदा पीवत चरस के॥

इतिश्री दम्पति वाक्य विलास नाम काव्ये अमल प्रबंध वर्णन
नाम पंचमो विलास

---

१ है० जात २ है० जात ३ है० जाति ४ है० चढ़ि ५ है० पमरे
६ है० हैं।

षष्ठ विलास

अथ पेल प्रबंध

पुरुस वाच

सिकार पेल

दोहा

वन, बेहड़, गिरि, सरित, सर, सब की लेत बहार।
ह्वै सवार हय पै जबै, पेलत जाय सिकार॥

कवित्त

लीयौं करैं स्वाद, सदां आमिष अनेकन को
बाहैं तरवारि सिंघ सूकर की धारि में।
सुकवि 'गुपाल' ह्वैकैं हय पै सवार देख्यौ–
करत बहार गिरि, झरना, पहार में।
पहरत वर्म, करि छत्रिन के धर्म, जात
मारि बांधि लामैं पसु पंछिन हजार मे।
होत हैं हुस्यार, सूरताइ के मझार, एते
रहैं सुप त्यार, सो सिकारिन सिकार में॥

इस्त्री वाच

दोहा

सूकर सिंघहु स्यार विन यामें डारत मारि।
याते बन बेहड विष पेल न पेल सिकार॥

कवित्त

सहनो परत भूप, प्यास, सीत, घाम, औ–
अकेलो गाहनौं परैं गहन बन झारी कौं।
सुकवि 'गुपाल' बहु गात थकि जात, छूटि
गए ते सिकार भावैं भोजन न थारी कौ।
मन रहै त्रास होत जिय कौ बिनास औ'–
चलावत हथ्यार, काम बडोई हुस्यारी कौ।
मास को अहारी, होति हथ्या हाय भारी बहु
पाप होत जारी, या सिकार में सिकारी कौं॥

पटेबाज खेल

पुरुस वाच्य

बने रहै नित बोकडे पटो हाथ लै मेल।
राजन की राजी करत पटेबाज को पेल॥

कवित्त

जिकिरि सरीर बडो, अक्कड सो रहै बनी
घुटना पहरि सग कर न सेवा जो का।
सुकवि गुपाल जू पट कौ हाथ लै कै सो —
हजारन पै बार करि सारे परकाजों का।
अहैच न आनै देत अग आपने पै, और
अस्त्रन बचामैं लैके नाम उसताजो का
मडन समाजौं का, रिझावनो हैं राजौं का, य–
सब मे मिजाजौं का है य म पटेबाजौं का।[1]

---

१. इस कवित्त में अन्त्यानुप्रास के रूप म कहीं का और कहीं को मिलता है। वास्तव मे इसमे पूर्व के पदो की प्रवृत्ति (पद+बहुवचन निपर प्रत्यय–औं) को देखते हुए यही बोली का का ही अधिक उपयुक्त लगता है।

स्त्री वाच्य

दोहा

पट्टेबाजी संग ते गठ्ठेबाजी होत ।
पट्टबाज़ी करत होइ ठठ्ठेबाजी होत ।।

कवित्त

रापनी परति, चारयो ओर कौं निगाह
नेंक गाफिल भए मैं वार होत मर्द[1] गाजी कौं।
सुकवि गुपालजू तमासगीर लोगन कौं,
करनौं बचाउ परें जुरत ममाजी कौं।
देह थकि जावै, कछू हाथहू न आवै, हाथ
पाँउ उड़ि जावै, पैबो चहैं माल ताजी कौं।
नेंक इटैं बाजी, लोग करैं ठठेबाजी, याते
बड़े बटबाजी को सु काम पटेबाजी कौं ।।

पतंग

पुरुस वाच्य

दंग रहैं दिल संग मैं, रहे मित्र को मेल।
पेलन माँझ पतिंग को है उमराई पेल ।।

कवित्त

देख्यो करैं सैल, फैल करत अनेक भांति,
एक ते सरस एक रहत मिजाजी मैं।
सुकवि 'गुपाल' बड़े होत दंग-बाज दंग
रह्यो करैं सदा यारबास के समाजी मैं।

---

१. है० में मर्द मिलता है।

माझे को मुलाय असमान में चढ़ाय ढील
दैके काटि देत पेच पारत जिहाजी में।
दबे रहैं पाजी, आप होत इस्क बाजी, या ते
राजी दिल रह्यौ करैं या पतिंगबाजी में ॥

स्त्री वाच

दोहा

घन अरगरु, उमँग बल मित्र अंग के संग।
जीते जुरि जुलमीन सौं, जर पतंग की जंग॥

कवित्त

टूटें, कटें, पाछें मुप जूती की सौ पिट्यौ होत
रौंद परैं दौंग बहु चहियत जंग कौं।
फाटी फाटी कहि लोग तारी देत रहें हाथ
रप्पनतें उडे गिरे, करें प्राण भंग कौं।
सुकवि 'गुपाल' असमान ही कौं रहैं मुप
फाटि जात आंधि होस रहत न अंग कौं।
बुरो रहैं रंग औ' उपाधिन कौ संग। याते
पलियें न पेल कबौं भूमि के पतिंग कौं॥

कबूतरन कौ पेल

पुरुष वाच

दोहा

है हरीफ सब में रहै, करि उमदाई साज।
ऊपर आवत है अमित, भये कबूतर बाज॥

कवित्त

मारयौं करैं मजा नितप्रति महबूबन को,
नई नई नसलि निकारि सब वेले में।
सुकवि 'गुपाल' जू उड़ान कौं लगाइ बाजी
देषि दिल राजी रहैं यारन के मेले में॥
लोटन की लोट देषि, लोट पोट होत, आवै
घोरे की परष, मन रहत अलेले में।
सांझ लौ सवेर, सदा रहत अलेल, लेत
सुषन के ढेर या कबूतर के खेले में॥

स्त्री वाच

दोहा

रहत उड़ान उड़ान दिल, परच परो नित होत।
कबूतरन के पेल में, पछ्छिमदारी होत॥

कवित्त

देत रहैं सीठि, बुरी बीठि की रहत त्रास,
दीठि बिगरति असमांन के निहारे तें।
सुकवि 'गुपाल' सदां सोबरि रहति चित-
चोरिबे को करैं, नई नसलि निकारे तें।
हो हो कहि कहि भारी तारी पटकायौ करैं,
गुंडन के संग रहि सांझ लौं सबारे तें।
फटि जात तारे, हाथ हड्या होति हारें, ऐब
आवत हैं सारे या कबूतर के पारे तें।

चौपरिपेल

पुरुस वाच

मित्र मिलापिन को[1] सदा, बन्यो रहै नित मेल।
याते[2] पेलन मे भलो यह चौपरि को पल।

कवित्त

राजी रहै मीत दिन सुप में बितीत होत
जीवत में लागें मन साझ लो सवेले में।
बाजी लेत अडी के, बहुल रहै बडी ओ
हँसत मन रहै यारबासन के मेले मे।
सुकवि 'गुपाल'[3] कछू जाचिक न मांगि सके,
उठि न सकन मजा मार्‌यो करै रेले में।
होत अलबेले पास झुके रहै मेले सदा
एते[4] सुप होत नित चौपरि के पले में॥

स्त्री वाच

दोहा

पासों परै न जीत को हारत बाजी सोइ।[5]
चौपरि के बिलवार को परी परावी होइ॥[6]

कवित्त

मारिबे-मरायबे की यामै रहै बात नित,
पासे के अधीन हार जीत रहै बेले मै।
हाडन बजावै, सदा रूमटि मे जावै दिन
हाथ घिसि आवै भेंटा होइ न अधेले तें।

१ है० मिल मिलापी यार की २ है० सवदी ३ है० आयवे गुपाल
४ है० याते ५ है० येते ६ है० जोइ ७ जब उदासी होइ

सुकवि 'गुपाल' सनमान दिन पावै मिलि—
वे कौ पास आवै सो उदास जाय डेले तें ।
परे रहैं हेले जाकौ सांझहू सवेरे, यातें
एते दुख मेरे होत चोरनि के पेले में ॥

सतरंज

पुरुष वाच

मिल रंजिकै गंजिरिन[1] चातुरीन को पुंज ।
हिय में होत हुलास पुनि[2] पेलत जब सतरज ॥

कवित्त

पेलैं यह जूवा आवै[3] पेते मनमूदा ताते[4] ।
सर करै सूवा राउ राजन के रंज तें ।
'सुकवि' गुपाल उमरावन[5] कौ ख्याल जाको
लगैन सवार नेक हरिन की गंज तें ।
दगा नहि पाय, कौन जीति सकै ताय, वहु
आमैं दाय, घाय ताय करत या वंज तें । +
लागै मन मंजु, मिटि जात ससपंज,[7] आमें
चातुरी के पुंज वहु,[6] पेलैं सतरंज तें ॥

स्त्री वाच

दोहा

बड़ो परत मन मारनो और न कछू[8] सुहात ।
पेलत जब[9] सतरंज की बाजी आवै हाथ ॥

---

८ है० बजाय ९ है० जाय   १० है० कूं   ११ औ'

१ है० आमही २ है० वहु ३ है० आवै ४ है० ताने ५ है० उमराउन
* पेलै यह दार न लागति जाकौ रिपुन के गंज तें । ६ है० नित
+ दगा नहीं पाय कोऊ जीति न सकतु जाय, आमैं दाय घाय ताय करत ही वज तें ।   ७ है० सनाच ८ है० कछू न ९ है० तब

कवित्त

हारत है[1] हाल, ताकी चूकत ही चाल, बड़ो
लगत झमाल, चाल चलन के पुंज तें ।
सुकवि 'गुपाल' देर बाजी में लगत,[2] लोग
राजी न रहत[3] सो उदासी होति अंजि तें ।
बैन नहि कहें, औ' मन्यों सो मन रहें, लगें
किस्ति ते सिकिस्ति हारें गोटन के गंज तें ।
पचत न नंज, और आवत न वज, बड़ी
देह होति लुज, बहु पेलें सतरंज तें ।।

गंजफा

पुरुस वाक्य

दोहा

जाइ पेलि हू गंजफा, छोडि अबै सतरंज ।
तुम सो बरनन करतु हों, अब ताके सुप पुंज ।।[4]

कवित्त

चातुरी को कॉम,[5] बड़ो रहे छूंम-छाम, कबो[6]
परत न कांम यामें,[7] बद[8] औ' बदा को हैं ।
सुकवि 'गुपाल' कबो[9] रूमटि न होति याको
जीतत में[10] बाजी हाल[11] होत ही अदा[12] कों है ।

---

१ हैं० घरि जात हाल २ है० लगति ३ है० रहति
४ है० में यह दोहा सोरठा के रूप में इस प्रकार है:
"छोड़ि अबै सतरज, जाय पेलिहूँ गजफा।
जाके जे गुन पुञ्ज, ते तुमसों बरनन करूँ ।।"
५ है० धाम ६ है० कबू ७ है० बहु ८ है० बड़ो
९ है० सब १० है० ही ११ है० जादी १२ है० अदा

मीरगड़ो फरद मुने की मिलें जो पै कहूँ
तोपै न बिलैया कोऊ जीति सकै वाको है।[1]
बहुत नफा कौं यामें काम न पया कौ, यामें[2]
सबमें नफा को बाँको पेल गंजफा को है॥

रती वाच

दोहा

नफा नहीं यामें कछू, बड़ौ लगत[3] टरसेल।
सुनि कै पया न हूजियै बुरो गंजफा पेल।

कवित्त

रापनो परति[4] फरदन की सुमार, जीत
हार के बिचार काम परत अकेले तें।[5]
सुकवि 'गुपाल' गुड़ोमीर बिन पायें[6] औ,
मुने की पर्द जायें मेंटा होइ न अबेले तें।
राति दिनां सदां मन याही में रहत नित
बाजी बिन पायें दठि सकत न डेले तें।
रहैं टरसले, सब दिन[7] रहैं लेले, येते
दुप रहैं मेले गंजफा को पेल पेले तें॥

इति श्री दंपतिवाक्यविलास नाम काव्ये पेल प्रबन्ध षष्टमो अध्याय

१ "दोंदत में फरद मुने को मिलें जोपै तोपै
मीरगड़ो आवै जीत सबत को तावौं है।"
२ है० याते ३ है० होइ ४. है० राखनो परत; ५. है० पुनि जीतें हारें बाजी काम परतु अकेले ते। ६. है० आवें ७. है० दिन राति

सप्तम विलास

निवास प्रबंध

ग्रामवास

दोहा

कुटम बढत भारी जहाँ हाल बौहरे होत।
गई गाम के बास बसि घोरेई जस बौत ॥

कवित्त

ठौरन को जहाँ मुकतायसि रहति, कैई
चीज मिलें यौंही, जे न आवें हाथ दाम में।
घर-घर प्रति दूध-दहिन के सुघ, अप—
–नायसि मुलामजे सरस आठौ जाम में।
आपनी पराई बेटी बहिन सुमानि मिलें,
आदर अधिक आए गए कौं सुधाम में।
सुकवि 'गुपाल' जहाँ निकरत नाँम एते
पावत अराम सो बसे ते गई-गाम में ॥

दोहा

ऐस स्वाद घटि चलन लघु, करनी करत बहोत।
गई-गाम के बास बसि, बहु दुष होत उदोत ॥

कवित्त

नेंक-नेंक चीजन कौं मारनौ परत मन,
रहनौ परन फूटे-टूटे से अधाम में।

होतु है 'गुवालजूं' गमार में गमार भोग—
भोगि न सकत भूत लोगन के वास में।
आवै न अकलि, जादू सूरति सिकिलि, मिस्सी
कुस्सी पानी परै मन रहत उदास में।
घर्म होत नास सहरवासी करें हास, एती
होति हदवासि, गई-गाँम के निवास में॥

सहर के सुख

पुरुष वाच

दोहा

करनी, करतब नांम, जस, धन, आचारो होत।
सहर बसें नित-नित नए अदब कायदा होत॥

कवित्त

सूरति-सिकिलि, बोल-चाल भलो होति, पान—
पान, मिलै आछो, सुष रहत विलासी कौं।
सुकवि 'गुवाल' चीज चाहियै सो मिलै, होई
देव के सरुप लोग करत पवासी कौं।
मिलैं नित नए नर-नारि, रुजिगार, सुष—
संपति अपार भर्म बढ़त मवासी कौं।
गुन को करासी, काज करनी को रासी ऐ (सी)
लहरि मिलै पासी, सदां सहर के बासी कौं॥

इस्त्री वाच

दोहा

जहां रहत सब चीज को, दहर-दहर उठ दांम।
तबें सहर के बसत में पावत नेंक अराम॥

कवित्त

ठौर की सकोच, मौर जगल की सोच, औ'—
मुलायजो न मानें, चीज मिलै न मुफति में।
गली औ' गिरारन में आयो करें बास, आए—
गए को न आदर बनतु है वपत में।
झूंठ बहु बकें, पर बैठी बहू तकें, कोऊ
काहू ते न सकें, लोग चलें निज मत में।
सुकवि 'गुपाल' मतलबी होत अति, दुप—
होत हैं बहुत, या सहर के बसत में

व्रजवास

पुरुस वाच

दोहा

रास-बिलास हुलास नित, सब सुषको परगास।
बड़े भागि ते पाइयै, ब्रज के मांझ निवास॥

कवित्त

कथा कीरतन-रास-भजन-समाज साध-
संत-सतसगनि दै सुरग बिलासी कौं।
देषत गुपाल बरषोत्सव के सुष नित,
प्रभु के समान न बिहार भूमि-रासी कौं।
सुकवि 'गुपाल' जाके भागि कौ सराहै ताके
आगे तुच्छ लागतु है फल प्राप-कामी कौं।
मिटत चुरासी, जाय होत अविनासी, मिलें-
सुषन की रासी, ब्रज मांझ ब्रजबासी कौं॥

इस्त्री वाच

दोहा

पिय प्यारी की कृपा करि पूरण पुन्य प्रकास ।
तव पावै निरविघ्न या, वन के मांझ निवास ।।

कवित्त

बंदर औ' चोर, डोम, कंटक, कलित, मुनि,
सकल कठोर व्रजवासी है पिजैया कों ।
सुकवि 'गुपाल' जहां होत बड़ो पाप लै-
लगावत कलंक तहां नेंक मुसिकैया कों ।
बोलन में गारी, लोग कपटी, सुमारी, प्यारी-
करत भिषारी, दाट-वाट के भूमैया कों ।
करिकै चबैया तहां, सवहि हँसैया एते-
होत दुष दैदा, व्रजवास के बसैया कों ।।

वनवास

पुरुष वाच

दोहा

(संसारिक) दुष व्यापत न, काटै ब्रहम मफास ।
रहत सदां सब भांति सुष, वन महँ किये निवास ।।

कवित्त

नित प्रति रहै सिद्ध-साधन को सतसंग,
व्यापत न दुष अहं ममता की फांसी को ।
रहति 'गुपाल' जहां एक न उराधी, तित-
निस-दिन ध्यान रहो करै अविनासी को ।

पाइ कंद-मूल-फल-फूलन के भोजनन,
करत पहुत बन श्रोधिन बिलासी को ।
परम प्रकासी, रहै रिवि मुनि पासी, मिले-
सुपन की रासी, बन मांझ बनबासी कौं ।।

स्त्री वाच

दोह

करै सुकृत हरि को भजै, काटै अहम मफास ।
मन को हाथ हिरापिबो, यह ही बनको वास ।।

कवित्त

सीव्यन पवन, जल, सीत, घाम सहै सदा,
रहनो परतु है अकेलो निरजन मैं
सूकर, व्रपभ, व्राघ्र, सिघ, पाइ जात, भय-
रहै भूत-प्रेत निसचरन को मन मैं ।
सुकवि 'गुवालजू' उदास चित रहैं तहाँ,
कहूँ दिनरेनि सुप पावत न मन मैं ।
रहै निरमन, फलफूल को भपन, दुप-
होत अनगण, बनबास के बसन मैं ।।

स्वरग सुप

पुरुप वाच

दोहा

नाँनाँ भोग विलास करि सदाँ रहत निरसोग ।
जेते कहे न जात सुप, तेते हैं सुरलोक ।।

कवित्त

अमृत को पान सदा बैठक विमानन पै,
भाँति भाँति भोगे सुख, रंभादि बिलास के।
धारिकैं 'गुपाल' संख-चक्र-गदा पदमान
चतुर्भुज रूप होत तन परगास के।
ऐसैं कृतकृत्य रहैं, मन मैं प्रसन्न चित,
करि दरसन नित रमा के निवास के।
छूटे जम पास, होत शुकृत प्रकास, कहे-
जात न हुलास, कछु सुरग निवास के॥

स्त्री वाच

दोहा

सज्जन जन सतसंग करि, करि जग श्रुकृत प्रकास।
सुजसी नर नरलोक ही, करत सुरग में वास॥

कवित्त

श्रुकृत'रु बड़े कष्ट कल्पना ते पावै, पुनि-
पुन्य छीन भये भुव-पात होत तीको हैं।
सुकवि 'गुपाल' जहाँ टकटका पुरो कबी
सुख नहि पावै बोल चालिवे कौं जी को हैं।
कुटम-सहति इहिलोक में न मिलें, दूजो-
देह धरि पावै, दै कैं दुख सबही कौं है।
मिलिवो न पीको पूर्व जन्म को न ठीको, सदा-
याते यह सुरग को वास नहि नीको है॥

घर वास

पुरुष वाच

सोरठा

देस रहै सुष नाहिं, विना गए परदेस के।
कहो कहा करि पाइ, उद्यम अत कीए बिना ।।

सवैया

राम को नाम न लेत बनैं, रुजिगार कौं मोर ते साम लो जीकैं।
कामन के सबुसेते 'गुपालजू' आठहूँ जाम में भामन जी कैं।
दारिद धाम ते ठामहु में सुष, साज-समाज, सबै दिन फीकैं।
दाम बिना निज गाम में भाम अराम न आवत धाम में नीकैं ।।

स्त्री वाच

जेते-सुख घर में सदा, ते न भलोको माँहि।
या ते गमन बिदेस को, भूलि कीजिए नाँहि।
मित्र मिलापौ मिलेई रहैं, रहै आठहु जाँम कुटंब कहे में।
धर्म सधै, बढै मर्म सदा, रहै राव 'गुपालजू' धाम बए में।
बस बढै, जग होत प्रसंसित, लै बट अस रहै सो छए में।
गाम में नाँम, सटै सब काम, सो एते अराम, है धाम रहे मैं ।।

दूतिश्री दंपति वाक्य विलास नाम काव्य, निवास प्रबंध वर्णन नाम सप्तमो बिलास

यह छंद है० प्रति में ही है। यह दोहा और सवैया पूर्व के दोहा और सवैया के पहले हैं। वास्तव में ग्रंथ के क्रम के अनुसार यही उपयुक्त है।

अष्टम विलास

(विद्या प्रबंध)

पुरुष वाच

दोहा

राजपाट, धन, धांन्य, धर धरम सुजस उददोत।
करमहि ते जग नरन कौं, सब सुष होत उदोत ॥

कवित्त

रथ, सुषपाल, दुवार झूमत मतिंग मांते,
पायगा विहारी तोरें तुरग गरम की।
भोजन बिबिधि भोग बनिता बिलास ऊंचे-
मंदिर-महल, सुष सयन नरम को।
होतु है 'गुपाल' जस जाहर-जहूर जग
ताकी फहराति ध्वजा धरा में धरम की।
नैंनन सरम बढ़ै, धनरु, धरम याते
सब में परम यह बात है करम की ॥

स्त्री वाच

दोहा

करम धरयोई रहत जब, करै कृपा भगवान।
मिलैं नरन कौं सहज ही, सब सुष संपति आंनि ॥

कवित्त

फूल्यौ फिरैं नर भूल्यौ कहा महि मोहित माया के फंद अलेषै।
दीसैं नहीं कोऊ दूजौ 'गुपाल' सौ दीनन के दयादान के लेषै।
रंक ते राज करैं छिन में सो कृपा की कटाक्ष किये ही निमेषै।
देषै नहीं तिहि कौं मति मूढ़ जो कर्म की रेष पै मारत मेषै।

'दालिद्र के'

पुरुष वाच (१)

बिना मिलैं भोजन सुव्रत सतन सौं होइ हेत।
हरि किरपा जापै करे ताकौ धन हरि लेत॥

स्त्री वाच

कवित्त

निसदिन रहत प्रभू कौ सुमिरण होइ,
थोरे में बहुत नांम करि करनीन कौं।
व्यापत न मायक बिकार कोऊ कहूं, दीसै—
आपनौं-परायौ बैठे करि कै अधीन कौं।
निरद्वंद हूकैं सोवै पाइन पसारि, होइ—
जाहर-जहूर धन गृह है (न) अलीन कौ।
काहू कौ रिणो न रहै ऊफति धनीन. याते—
बहु सुष होत है धनी ते निधनीन कौं॥

पुरुष वाच (२)

सुमति प्रकासे, भ्रिम आदि मद नासे, छेड़—
अकड़ा, छिताई नहिं रहै अभिमान तें।
समदर्सी साधन को सहजहि संग होत
सुद्ध। तजि तपंहि साहो तिनहिं पान तें।

बिना मिलै सहजहि होत परतप दुन्द
संग मिटि जात हिंसा होति नहि पान तें।
कहत 'गुपाल' या संसारहि के बीच नित
निर्धन को होत सुप एते धनमांन तें।

स्त्री वाच (२)

दोहा

करै न प्रीति प्रतीति कोऊ, होतहू मीत अमीत।
मीत मांनि निधनीन सों कोऊ न राषत रीति॥

कवित्त

जहां जाइ तहां ताको आदर न होइ, तापै
काहू को बनेंन सपलूपा, हाय षाली में।
सुकवि'गुपाल' जासों सब डरपत, रुजि-
गार न लगत दिन जायो करें ठाली में।
दुरबल देषि कै कलंक लगे हाल लोग
निंदा करयो करें भटकत दुवार दुवारी में।
रहत बिहाली, सब दीयो करें गाली, कोऊ
करें न संभाली, सो कँगाल को कंगाली में॥

'करमगति'

पुरुष वाच

मिरतु हैं पोरि पंड भोजन मिठाई मेवा
ताकों कबी समाऊ ते पेट न भरतु है।
बैठत हैं रथ-सुषपाल-पालिकीन में जे
उराहनें बिपन बिन पन्हीं फिरत हैं।
जिनको मिलापी मित्र बैरी श्रौ दरस करें,
तिनहू सों प्रीति रीति बैरी हू करत हैं।

कहत गुपाल हानि-टोटी नफा-हानि मह
करम की गति कहो टारी न टरति हैं।

स्त्री वाच

सरवसु लैकैं बलि राजा कौं पताल दीनौं
फंजा लै गुपाल ते उबारयो गज गाहू कौं।
चंदन लगै कै कुबरी को रतिदीन सिबरी
के फल षैकै ही सुरग दियो बाहू कौं।
चामर चबै कै पाछें संपति सुदामैं, साक
द्रोपती को पैकै त्रास मेट्यो रिषि नाहू को।
कैसे कलि काल में करे को कहो, काम बिन
लीयें करतार हू कर्यो न काम काहू को ॥

प्रभुपीलि

पुरुष वाच

दाता निरधन, औ' अदाता धनमान, गुन-
-मान पराधीन नित रहै दुष भारी में।
कुलटा कौं चैन, औ' सतीन कौं अचैन, दुज-
चलै पाँय प्यादे चढ़ें सूद्र असवारी में।
साधन कौं ताची, औ' असलन को न आँचो, ऐ-
'गुपालजू' तिहारी रीति उलटी निहारी में।
ऐसो तो अन्याय कहूँ देख्यो न सुन्यो है प्रभु
जैसो तो अन्याय होत साहिबो तिहारी में ॥

सवैया

एकन कौं गजबाज दये, अरु अेकन के पनहीं नहिं पाअूं।
अेकन कौं सुपदाई सबै पग, अेकन कौं नहिं मात पिताअू।

अेकन को घृत पीरि के भोजन, अेकन कों नहिं कोदौ समाजू ।
'रायगुपाल' बिचारि कहै प्रभु की गति जानि परै नहिं काजू ।

स्त्री वाच

दोहा

याते सब कों छोडि कैं कीजै मन संतोष ।
या सम धन कोऊ न जग पावत जाते मोष ॥

सवैया

क्यौं फिरौ देस विदेसन मैं जो लिलाट लिष्यो सो घटै न वढै हैं ।
काहे कू हाऊ ही हाऊ करौ अपत्यार करो घर वैठ ही पैहै ।
धाम धरा, सुष संपति, साज-समाज, 'गुपाल' कृपा करि अैहै ।
जीव जिते जगके जिनकों जीनै जोव दियो सो न जीवका दै है ।

पुरुष वाच

सवैया

आज लौं अैसी कहूं न सुनी कि कमाइयै हाथ पै हाथ धरैं ही ।
आपनों सौ तौ कर्‌यो चहियै रहियै कहु को लग वैठि घरैं ही ।
उद्यम के सिर लक्षमी है जैसें पंषा मैं पौन न आवै परेंही ।
प्यारी 'गुपाल' सदा सुष संपति देत प्रभू रुजिगार करैंही ।

दोहा

जेते हैं रुजिगार ते गुण महनति ते होत ।
बिन गुण पाये जगत मैं नहिं धन होत उदोत ॥

इस्त्री वाच

सोरठा

गुण के गुण कहु कंत, कवि 'गुपाल' हमसौं अवैं ।
तव गुण जाय अनंत, कहूं जाइ कहूं सीषियो ॥

गुण के सुप

पुरुष वाच

देस, बिदेस, नरेस, हित, सब कोऊ रावत मान ।
पूरब सुकरम के करें, जीव होत गुणमान ।।

कवित्त

कबहूं कहूं न काहू बात की कमी न रहै,
काम करयो[1] करें सदा सब पै यसान[2] के ।
सुकवि 'गुपाल' पूजा होइ ठौर ठौर, लोग
आइ आइ[3] बूझ्यौं दसहू दिसान के ।
देस, परदेसन, नरेसन में नाम होत[4]
जीतत गुनीन निज गुणते जिहांन के ।
देकै दांन मांन भलें लेकें पांन पांन ठाडे
रहैं धन मांन सदां द्वार गुणमान के ।

स्त्री वाच

दोहा

गुनी गुनी सब कोऊ कहै, गुनी होऊ मति कोइ ।
धन कारन धामें सदां, पर बधन नित होइ ।।

कवित्त

घिरयो रहै द्वारो, छुटकारो न रहत[5], बडो–
कष्ट होत भारो, ताके[6] सोवत कहत में ।
नबनों परत, पचं करनों परत, मूड–
मारनो परत, दूजे गुनी के[7] गहत में ।

---

१. है० पर्‌यो २ है० इमान ३ है० आय आय ४. है० होइ
५ है० मिलत ६. है० तारौं ७ है० सो अरत मैं

सुकवि 'गुपाल' कबी आवत न अंत, यहै
घर को न पावरि प्रदेस के बहत में।
पावत महत पद[1] बंधन सहत, अंते
औगुण रहत, सदाँ गुन के लहत में ॥

संसकृति (संस्कृत)

पुरुष वाच

पढ़े जास के होनि है सब सास्त्रन मे सक्ति।
याही ते यह संसकृति करति मनहू आसक्ति ॥

कवित्त

कहै बेद बानी भगवंतनें बपानी, मुष-
कहत प्रमांनी, सदाँ दानी जो सुकृत की।
सुनत ही जाके देई देव बस होत, जामें
पाइयति बात, सास्त्र, सृति, औ' सुमृत की।
कहत 'गुपाल' जार्यो सकल अनादि-आदि
यग में अगाध बहै धारा ज्यों अमृत की।
गुनमें प्रवृति करै, और ही प्रकृति, याते
सब में सुकृति कृति सिरैं संसकृत की।

स्त्री वाच

दोहा

सभा सदन कों बरष बिन स्वाद न आवत कोइ।
याही ते नहि संसकृति सब सुष दाइक होइ ॥

---

१. है० पर

कवित्त

सबते निवृत्ति भयें, पावत प्रवृति, होत
मृतक के प्राय, याके करत रिवत कौं।
सुकवि 'गुपाल' समझावे समझत लोग
भाषा के प्रयोग, अर्थ निकरै समृत को।
कहत में सकल सभा कौं न सुहाय थोरे
रहैं सब जाय यह धाम बड़े धुत कौं।
कठिन प्रकृति याको जानत सकृत सब
होत है चकृत कन लखि ससकृति कौं॥

'भाषा'

पुरुष वाच

सोरठा

समझत हैं सब कोइ, सकल सभासद सुनत ही।
मन में सुष बहु होइ, भाषा पढ़त समाज मे॥

कवित्त

पंडित हू सुनत, चकृत रहि जात, जाकों—
ससकृति हू में जाकी रहै अभिलापा[१] है।
सुकवि 'गुपाल' जाकों समुजत[२] सब जग,
याकों पढ़्यो जानें, तानें सब रस चापा है।
अमृत को पान, सौर्य सुगम निदान, हाल—
होत गुन मान रोपै सुजस पताका है।
अर्थन की छापा, जामें देसन की माषा, सब
सास्त्रन में भाषा, सरवोपर सुभाषा है।

---

१. अभिलाषा २ समुझत

स्ती वाच

दोहा

पंडित जन कोऊ नहीं मानत जास प्रमांन।
याते भाषा ग्रंथ नर कलपित कहत अज्ञांन ॥

कवित्त

कहत कहानी, कोऊ कहै नहि ग्यांनी, झूंठ–
चोरी की निसानी, मति भ्रमां मनि लाषा की।
सुकवि 'गुपाल' संसकृति की है छाया नर
कल्पित माया कणि आपस मै भाषा की।
विगरि प्रमान, जाकौं मांनै न प्रमांन, बड़ी
विकट है राह, ताके कठिनइ लाषा की।
देसन की भाषा, समुझै न अर्थ राषा याते
करैं अभिलाषा[1] कोऊ पंडित न भाषा की ॥

पारसी

हैसि पारसी, करत है दारसीन के काम।
पढ़ि पारसी समारिसी रहत राजसी धांम ॥

कवित्त

जानत जिहांन करै साफ मूजुबान बड़े,
होत अलि मांन कांम करै कारसी को है।
मोलबी कहावै, जादै आमदि बढ़ावै, बड़ो–
दरजा सु पावै, रापै सोप सांनिसी को है।
जानत 'गुपाल' पातसाही, अलकाफ हाल
लगै रुजिगार मत आवै अरबी को है।
गहत कलम, जात बैठत गिलम, याते–
सब मैं जुलम को यलम पारसी को है।

1. अभिलाषा

स्त्री वाच

दोहा

बिना लगे हुजिगार सो, सकल छार सो होति ।
पात वारसी, पारसी पढत आरसी होति ॥

कवित्त

बहुत प्रमान नहिं, पलटै जबान बिन,
राखै सौंप सानि यामें सूबा होत हो सकों ।
समुझे न ताकों, कोई हिन्दुस्तानी लोग,
कहैं मुसलमानी, है यलम इह ईस को ।
सुकवि 'गुवाल' बारे बरस में आवै जब
बहुत झिकावै तब धुन्यों करे सीस कों ।
करियै नरीस, मेरी बात मानि बीस, याते–
भूलि कैं न कीजै काम पारसी-नवीस को ॥

दोहा

यमें आदि दैके बहुत है गुन के हुजिगार ।
सब को जो बरनन करूँ ग्रंथ होइ विस्तार ॥
सब के करिबे जोगि जो करत सकल ससार ।
कछुक तिन में ते यथं, तेरे कहूँ अगार ॥

नवम विलास

(ग्रंथ सूची)

कवित्त

धन-हित जाइ-जाय देस परदेस पूर्व
दच्छन पछिम उतरादि फिर्‌यो चहियै।
बेटा बेटी ब्याह समध्याने सुसरारि, व्रत
जाति पाँति पाइ कें ववाइ परो चहियै।
तीरथ-दरस-कथा-कीरतन-मेला-पेल
पेलि नानां भांति असवारो फिर्‌यो चहियै।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिबे कों
जीवका के काज रुजिगार कर्‌यो चहियै॥
भाँग औ' अफीम, पोस्त, मदरा, हुलास, हुक्का,
पाइ कैं तमापू, गाँजो, चर्स मर्‌यो चहियै।
चौपरि औ' सतरंज गंजफा सिकार, पटे-
-बाजो, कबूतर, पतिग लर्‌यो चहियै।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिवे कों
जीवका के काज रुजिगार कर्‌यो चहियै।
गेई-गाम, कसबा, सहर, व्रज, वन, स्वर्ग
करिकैं निवास, घर मांत अर्‌यो चहियैं।
मंत्र, सांख्य, न्याय वैयाकरण, विदांत नीति
पातंजलि, मीमांसा, कोक, पढ़्यो चहियै।
जोतिसी, मिसर, वैद्य, पंडित, कुकवि, कवि
काव्य, भीष रोजी न लिपाई अर्‌यो चहियै।

गद्दू, नावा, प्रोहित, कै चौबे, घटमगा, रासधारी
कि गवैया पुसामदि फिर्यौ चहियै ।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम कै पालिब कौं
जीवका के काज रुजिगार कर्यौ चहियै ॥
ससकृति भाषा पुनि पारसीहु गुण ढाल–
ह्रहि कै दुवारु सतोष धर्यौ चहियै ।
करम करम गति प्रभुहि कौ पौलि गोस्वामी,
अधिकारी, मट्टु, पडा परो चहियै ।
फौजदार, सिरवार, भडारी, पुजारि, कुन–
-वालरु, रसोइया, ह्वै दुख भर्यौ चहियै ।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम कै पालिबे कौं
जीवका के काज रुजिगार कर्यौ चहियै ॥

गुरु, चेली चेला, मस्तानी कि, महत, मौडा,
मुखिया, सजोगी, कै फकीरौ फिर्यौ चहियै ।
जोगी जनौ, विरकत, तपसी, बिदेही, नागा
सिद्द, पर्महस, सरभग गढ्यौ चहियै ।
बामनहू द्वारे चारि सप्रदा कौं सिष्य ह्वैकै
कोऊ वर्ण श्रम साध सग रह्यौ चहियै ।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिबे कौं
जीवका के काज रुजिगार कर्यौ चहियै ॥
पच, सिरदार थोकदार, जुमेदार, औ'
मुहुल्लेदार, मुषत्यार ह्वै कै ढर्यौ चहियै ।
जाति-, गाम-, चौधर, चबूतरा कौ चौधर, किसानि
गुवारिया ह्वै, जामिनी मे फिर्यौ चहियै ।
दीवान मुसद्दी कामदार पोतेदार ह्वै
खजांनी सिलहदार धन धर्यौ चहियै ।

सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिवे कौ
जीवका के काज रुजिगार करयो चहियै ।।

पातसाही रजई नवाबी कि वजीरी औ'
अमीर, उमराई, ठकुराई, फिरयो चहियै ।
फौजदार, बकसी, रसालदार, कुमेंदान
सूरिमां, सिपाही, मल्लई में लरयो चहियै ।
मुल्ला, पिलमांन, गडमांन, सरमान, मोदी, काजी.
कलामत, है के गुमांन रहयो चहियै ।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिवे कौं
जीवका के काज रुजिगार करयो चहियै ।।

अंगरेज, नाजरु, नाइब, सी रिस्तेदार,
थानेदार, जमादार, चौकीदार, चहियै ।
फौजदारी, दीमांनी, कलक्टरी, गवाई, कै
अपील चपरासी, जेलपाने, सुरयो चहियै ।
पपतांन, तिलगा, हवालदार, सूबेदार
परमट, मीरबहरी, ढरयो में चहियै ।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिवे कौं
जीवका के काज रुजिगार करयो चहियै ।।

करनेंट, लपटैन, कपतांन, लिपकप-
तान, रैइट पुनि मेजर बखानियै ।
करनेल, जरनेल, लाट, अजीटन जंगी
कोट मासतर, जुज्ज छोटो बड़ो मांनियै ।
डिपटि रु, सिनसिनजस, औ' सपरडंड
हाकमर, कल्टुर, डिपटी, गुपाल में प्रमानियै ।
बड़ो, कल्टुर, सिकटुर, रजस्टु, एजंट
आदि औदा अंगरेजन के जांनियै ।

दोहा

कै सराफ कि बजाज बनि, परचूनी, पसरट्ट।
हलवाई कसरट्ट करि छैरभान की हट्ट॥

कवित्त

दरजी, सुनार, रँगरेज, छीपी, दस्ताबाज,
चित्रकार सरनतगामी ढर्‌यो चहियै।
बढई, लुहार, माली, मालिन, कहार जाट
कूँजरे भट्यारे ह्वै कमाई कर्‌यो चहियै।
कोरिया, कडेरे, नाई, बारी औ' कुम्हार धोबी
सबका मरमूँजा तेलिया ह्वै फिर्‌यो चहियै।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिबे कौ
जीबका के काज रुजिगार कर्‌यो चहियै॥
चुगल कि चोर ठग, दोरा, फिर फोरा ह्वै कै—
—घर बूरचा' हर्म-जद्दी ढर्‌यो चहियै।
नगा कि हरामी मेघो पोरा बमरम, डिम्ब—
—धारी, ममकरा गुवालई में लर्‌यो चहियै।
जूवारी, बिभचारी, कि सगाई को बिचौ'िया,
रसायनी, सयानो बनि देस फिर्‌यो चहियै।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिब कौं
जीवका के काज रुजिगार कर्‌यो चहियै॥
गँडिया कि, भँडुवा, कि कसबी, भमँया कै
बाज, रंडी-बाज रसिया ह्वै ढर्‌यो चहियै।
कुटनी, घरूका और छिनरा छिनारी इसके
गिरही, जनाने घरविच ढर्‌यो चहियै।
बाजीगर, नट भांड हीजराड़, बूडा, भील
कांजर स्वाच ह्वै गमार लर्‌यो चहियै।

सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिबे कौं
जीवका के काज रुजिगार करयो चहियै ॥

बाल, तरुनाई, वृद्धताई, वय पाइ, सुत
सुता की सतानिन के सुख ढरयो चहियै ।
दाता दांन दै कैं है सपूत कै कपूत रांड
रंडुआ सुहागिल के दिन भरयो चहियै ।
सत्य, झूठ, मानी, है मचून मतलबी सूम
जती कुजती हैं हुगमति दरयो चहियै ।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिबे कौं
जीवका के काज रुजिगार करयो चहियै ॥

परमारथ

करि परमारथ, श्रुकत भक्ति नवधा कौं
निर्गुन सगुन ब्रह्म ध्यान धरयो चहियै ।
सुनि यतिहास ब्रह्म, नारद सवाद नांम
मंत्र ब्रह्म फल के विचार अरयो चहियै ।
चतुर सलोकी, समझाइ सांत, सरुप
परम अनंद कलहा ते जग दरयो चहियै ।
सुकवि 'गुपाल' कछु कुटम के पालिबे कौं
जीवका के काज रुजिगार करयो चहियै ॥

स्त्री वाच

रुजगार सुख

रुजिगारन के करत में कह्यो कहा सुख होत ।
प्यारे सुकवि 'गुपाल' सो हम सों कहहु उदोत ॥

कवित्त

मानि करें आदर, निरादरें न वेरी, सब
कहत बहादुर औ' जाति जग न्यारी है।

औनि[1] मानें कुटम, सुकानि[2] माने भाई बंध
जानि मानें सुघर, सयानप न धारी है।

करत 'गुपाल' काज करनी करतबीलो
याही से नरन मांझ होत जसधारी है।

प्राणन ते प्यारी उठि कीजियै सवारी सब[3]
जियन को धारी यह जीवका बिचारी है।

दोहा

नाहीं उद्यम करन की मौनी[4] नहिं बतरात ।
तब पछिताय गुपाल सों कही नारि यह बात ।।

स्त्रीवाच

कवित्त

जीवका के काज नर कुटम कबीलो त्यागें
जीवका के काज सूर करें सूरताई हैं।

जीवका के काज नर चाकरी पराई करें
जीवका के काज परदेस रहैं छाई हैं।

कहत 'गुपाल' कवि जीवका अधीन जीवौ
जीवका बिगरि होति फिरिरि सथाई है।

पाय जिंदगानी सब जगत में जीवन पौं
जीव हू ते प्यारी यह जीवका बनाई हैं।।

---

१ दे० कानि २ दे० सौ आनि ३ दे० जग ४ दे० रकी

वैदेक, जोतिष, पंडित, काव्य लिपाई, कि गाई कें मोष भरोगे ।
प्रोहित कें गहुनाई फकीरी धुमामदी है गुरुदुःप्य हरोगे ।
स्यांनप के सिरदारी मुक्द्दम चोधरी है[१] कै[२] यजारें[३] लरोगे ।‡
मन[४] में ते कहो जो 'गुपाल' रिया तुम कौन सो जो रुजिगार करोगे ।।†
सुष जाको सर्व हम सों कहियें सु कहा[५] कहां देस बिदेस फिरोगे ।
जाइ कहूं धन लाइ कमाइ कें लाइकें मेरेई आगें धरोगे ।
दया करिकें द्विज दीनन दांन दै दारिद को दुष दूरि करोगे ।
जस कीरति काजे 'गुपाल' रिया तुम कौन सो जा रुजिगार करोगे ।

इतिश्री दंपति वाक्य बिलास नाम काव्ये गुपाल कवि राय विरंचिता यागृंथ सूचीवर्णनाम नवमो अध्याय: "९"

---

१. है० चोधर २ है० लैंकै ३. है० इजारे ४. है० इन ५. है० कहो

‡ यह है० प्रति में दूसरी पंक्ति है ।

† है० प्रति में एक और कवित्त यह है -

पैनी किधौं परवारगी चाकरी लादि लदैनो प्रदेस फिरोगे ।
बनिजें बिवहार दलाली दुकांन तमोली है पंधी सुगंध भरोगे ।
परचूनी सराफी बजाजी पसारी कमेरट कै हुन्नदाय धरोगे ।
मन में ते कहो जो 'गुपाल' रिया तुम कौन सो जो रुजगार करोगे ।।

दशम विलास

(शास्त्र प्रबंध)

पुरुष वाच

दोहा

ब्रह्म सच्चिदानद घन ताको अनुभव होत ।
पढ़े सदा वेदात के मिले जोति में जोति ॥

कवित्त

आतमा को ग्यांन, परमातमा को ध्यांन, जात
रहतु अग्यांन, उर ज्ञान होत नित नें ।
ततपर होत निरगुण की उपासना में,
ब्रहममय दोसे जीव जगत में जितने ।
सुकवि'गुपाल' जड़ चेतनि की छूटे गांठि,
मायक विकार हुटि जात सब तितनें ।
छुटे भवकूप, पावै ब्रह्म को सरूप,
सुख होतु है बिदातिन, बिदाव पढ़े इतने ॥

सोरठा

साधन कठिन विवेक, समुझत बहुत सुकठिन बहु ।
होइ मुनाधार एक, पुनि कलेस यामें घनो ॥

कवित्त

कोरे ज्ञान ही की बात ठानत रहत अर-
ठांन मानेंत न मत दूसरे करैया कौं ।

सुकवि'गुपाल' मांयो भारत रहत बड़े
कष्ट के करे ते ज्ञान होतुहै बड़ैया को।
सरगुन ब्रह्म को सरूप सुध जानत न
भांत भव भार कष्ट बाढ़ते बढ़ैया को।
देत लोग लांति, पारें भगति में भ्रांति, मन
होत नहि सांति, या बिदांत के पढ़ैया को॥

व्याकरन

पुरुष वाच

दोहा

पांडित्यहि को आभरन सब सब सास्त्रन को मूल।
ग्रंथ व्याकरन जगत में याते है अति थूल॥

कवित्त

वेद औ पुरान सब सास्त्रन को मूल यही
याही के पढ़ेतें होत मति को बढ़न है।
बानी सुधरत सुघरत उर ज्ञान जान
मानत प्रमान पद अर्थ निकरनि है।
सुकवि'गुपाल' बड़ो चरचा को जाल हाल
पंडितन बीच पांडिताई को भरन है।
पढ़त कठन पन चाहिये करन बड़ो
बुद्धि के करन को करन व्याकरन है॥

स्त्री वाच

दोहा

थोरे आखें ते कबहुं, काज सरत कछु नांहि।
याही ते यह व्याकरन व्याधि-करन जग मांहि॥

कवित्त

कटुक बरन लागैं, नीरस नरन जाको,
कठिन चरननि करनि अधरनि है।
अन्वय, अरथ क्रिया, करता, समास पद,
जाको रूप साधे हाल आबे उतरन है।
सुकवि'गुपाल' कबौ आवत न स्वाद रहै
भारी बकबाद होइ नाहक लरन है।
मूढ़ कौं मरण जीभ जोउ की जरन बहु
ब्याधि के करन कौं करन ब्याकरन है॥

नैयायिक

पुरुष वाच

दोहा

कष्ट करै सब ब्रह्म को, तरकन में मति होइ।
याते नैयायकन को, जीति सकै नहिं कोइ॥

कवित्त

जानैं अनुमान, सब लक्षन प्रमान, सप्त
पदारथ ज्ञान परमान मत वाय तें।
सुकवि'गुपाल' बहु तर्कन में गति होति,
होति अति मति, मत जानैं सब काहू पै।
ब्यासजू के मत को, सुधारि रिषि गौतम नें
कीनौं वेद विरुद्ध मिटामन कौं चाहकै।
मिटत अन्याय सुद्द कविता बनाइ कैंई
आवत हैं न्याय नैयायकन कौं न्याय तें॥

न्त्री वाच

दोहा

वादी बकवादी रहैं परनिंदा में गर्क ।
न्याय सास्त्र के पढ़ें बहु करनी परति कुतर्क ॥

कवित्त

होइ बकवादी, सबही को अपराधी, बड़ो
रहति उपाधी, मत पंडै सब काय के ।
याही ते'गुपाल' श्रुति थापित है सास्त्र, बड़ो
लागतु है पाप, श्रुति सुनत में याइ के ।
कुजम विख्यात ज्ञान भक्ति को न बात मति
मिष्ट होइ जाति समझाये जाय ताय के ।
निंदक कहाइ, मरें स्यारजोनि जाय, ऐते
होतहैं अन्याय. नैयायकन कों न्याय कें ॥

सांख्य सास्त्र

पुरुस वाच

सब दुख हानि, तत्व निरनें को ज्ञान, आनि
प्रकृति पुरस को बिवेक होत होए ते ।
अकर्तता, अभोक्ता, असंग. आतमा को जानें
ज्ञानरु विराग बढ़ि जात, जाके भोए ते ।
आवत गुपाल नित्यानित्य कों बिचार सब
तत्वन कों जानें सार यामें मन दोए ते ।
पूर्न हिय आँखि, पूरे होत अविलाष, कोऊ
रहत न कांक्ष सांख्य सास्त्र पढ़ि लोए ते ॥

स्त्री वाच्य

धर्म कर्म क्रिया त्याग ईश्वर न मानें कबो,
बेदक कहा में द्रढ रहें नही मन में।
जड जो प्रधान जग कारन कहत तासों
कैसे बनें सिप्ट यह आवति न मन मे।
सुकवि 'गुपाल' भाव भवित कों न जानें, वकवाद
ही करें ठानें, बडो कप्ट रापें तन में।
झूंठी बात वारे नहि हरि रसवारे यातें
साख्य-मतवारे, मतवारे हैं सवन में ॥

पातंजल

पुरुष वाच्य

दोहा

रिधि सिधि निधि हाजरि रहें, योग अग में दंग।
पातजलि के पढे ते प्राण होन नहि भग ॥

कवित्त

हाजरि हजूर सिद्धि ठाडी रहें आगे प्राण
चढेते कपाट, आवें काहू के न हाथ हैं।
जानत 'गुपाल' निध्धियासन, नयम, ध्यान,
धारना, समाधि, यम, प्राणयाम, गाय है।
मन के मनोरथ, सरल सिद्धि होत, औ'
कहाय जोगी राज होत जगत विख्यात है
जिय को न घात, दुष होत नहि गात, याते
सबही में प्रबल, प्रतिजल को बात है ॥

स्त्री वाक्य

दोहा

सब सुष त्यागिय कंत रहि मन कौं राषैं हाय ।
बड़ी कठिनता ते सधै. पातंजलि की बात ॥

कवित्त

लोक परलोकन के सुष कों न जानें, लौं
सरीर कष्ट टारे जब प्रान जात चढ़ि कैं ।
श्रवन, मनन, ज्ञान, साधन न बनें, चूकें
बावरौ सौ होत, नारी छूटै रोग बढ़ि कैं ।
सुकवि'गुपाल' भक्ति मुक्ति न मिलति सिद्धि
प्रापति भए पै अभिमान होत झड़िकै ।
मन जात भरियक, अंत बैठे घर, याते
दीजै जल अंजुलि पतिजल कौं पढ़िकै ॥

मीमांसा

पुरुष वाक्य

बेदोच्चारन मंत्र-पढ़ि देवन बस करि लेत ।
सास्त्र मिमांसा पढ़ि करै, जाप दीक्षत हेत ॥

कवित्त

राजन में मांन होत, जस धन मांन, नांना-
जग्य के बिधांन, ज्ञान होत, याके जाने ते ।
धरम बड़ाई, जग्य दीक्षत कहावै, कर्मकांड
मन लावै, राज मिलै बीचवाने ते ।
सुकवि'गुपाल' होत जग में बिख्यात जांनि
जे मुन की बात मोग मोगै सुर्यावै ते ।

बेद मत मानै, दीयो करै दिन दानै, ऐती
होति पूरो आनै, या मिमास मत जानै ते ॥

स्त्री वाच

दोहा

कष्ट अमित करनै परत बिघन करत सब देव ।
मीमांसा मत साधनै, परत भगति कौ भेव ॥

कवित्त

मुकति बिराग ज्ञान ईश्वरै न जानै, देव–
बिग्रह न मानै साध-सतैं न अराधे तैं ।
कर्म नष्ट भए पाछै भोगत चतुरासी, जाय
नरक परत, बहु जीवन कै बाधे तैं ।
सुकवि'गुपाल' लगै चूकत मैं पाप देव
करत बिघन पूरो पर तन नाधे तैं ।
सधै न समाधै, कष्ट करत अगाधै, दहै
दुपम ते दाधे, या मिमास मत साधे तैं ॥

राजनीति

पुरुष वाच

रिपु कौ जीति अजीत है, न्याय करै नृप नीत ।
राजनीति कै पढ़े तैं रहत सदा निरभीत ॥

कवित्त

सील-सुप-संपति सकल सिद्धि होति, सधै
धरम करम सारैं काज निज मीत के ।

सुकवि'गुपाल' बड़े होत ज्याबसाली, पावें
समान में आदर, सहत हित प्रीति के।
राजा, पातसाह, उमरावन को रापि, होइ
वड़ेन को, बड़ो न्याव करत अजीत के।
रहे निरभीत, कोऊ सकै नहि जीति, सब
छुटत अनीति, नीति पढ़ें राजनीति के ॥

रती वाच

सवैया

दिनराति सुजात बिचारहि में चलनौ सु परें नृपनीतिहि के ।
सुनते मे सुहाइ नहीं नृपकों सब बैन लगे बिपरीतिहि के ।
सु'गुपाल' कवी छुटकारो मिलै न प्रबंधहि बाँधत नीतिहि के ।
कबहूं नहि होइ अभीत रहै यते होत पढ़ें दुप नीतिहि के ॥

कोक ,सास्त्र

पुरुप वाच

रति-आसन, गुन दोप वय, जानें जंत्ररु मंत्र ।
कोकसास्त्र के पढ़ें ते, तिय सुप होत अनंत ॥

कवित्त

मोहनी के मंत्र बहु जानें जंत्र तंत्रन,
लुफाजन लगाइ बस करें तिय जाता कों।
सुकवि'गुपाल' वाजीकरण अनेक आमें
ओपधि औ' आसन समुद्रक की गाथा कों।
कांमं कें सथांनन ते काम कों जगाइ, रितुकाल
पहचानें, सुप मांनें, रति दाता कों।
जान्यों करें नायकरु नायक की याता सदां
होइ सुप साता कोकसास्त्रन के ज्ञाता कों।

इस्त्री वाच

भगति भाव सुभ करम नहिं, नहीं राम को नांम ।
कोककारिका बहन कौ, है कामिन को काम ।।

कवित्त

मार्‌यो जात हाल, मन्त्रजन्त्र न जपत, पर–
पतिनीन चाहै घन यामें घनो चहियें ।
सुकवि'गुपाल' मातु भगिनी के भले बुरे–
लक्षन पिछानें तब पापन सौं बहियें ।
बढ़त अघमं सुभ कर्म मे न लगै मति
रोग बढ़ि जाय निश्चै नरकहिं लहियें ।
वेश्यन की गांमी, होइ जातु है हरामा, याते
हूँ कै कहुँ कामी, कोककारिका न कहियें ।।

पिंगल के

पुरुष वाच

जाने छंद-प्रबध, होइ पदरचना को ज्ञान ।
पिंगल सास्त्र पढ़ें, करें काव्य कवी परमांन ।।

कवित्त

पद को प्रमांन, छद-मगन को ज्ञान, लघु
दीरघ सुजानि, बहु गणति दुढ़ैया कौं ।
अलट रु' सूचे आमें षोडस करम, दग्ध–
अक्षर पिछानि गणगणहु कढ़ैया कौं ।
छंद औ' प्रबधन के लक्षननिजानें, नई
काव्य करिवे कौ बुधि हियमें बढ़ैया कौं ।
सुकवि'गुपाल' होत गुपन पठैया बड़ो
होत हरवैया सास्त्र पिंगल पढ़ैया कौ ।।

स्त्री वाच

दोहा

लिपत पढ़त षोड़स करम, कछू न आवें हाथ ।
पिंगल के पढ़ते सदा, सासन ही जिय जात ॥

कवित्त

आछी लगें न सुनावत में बड़ो देर लगें तहूँ रूप मढ़े तें ।
राय'गुवाल' गंभीर बड़ो मत आवतु है बड़ मूंड चढ़े तें ।
नैकहू भूलि जो जाइ कहू, तो परःश्रम जात वृथा सु कढ़े तें ।
काव्य के भेद अनेक जित, कछु आवे न पिंगल छंद पढ़े तें ॥

मंत्रसास्त्र

पुरुष वाच

तेज जोम बल सों सदा, सबही को ठगि पाइ ।
मंत्रसास्त्री कों सदा, सब कोउ पूजत आइ ॥

कवित्त

देई, देव, थिर, चर, नर, बस रहे, काम–
कटत्त त्रलोकी के पदारथन जाने ते ।
सुकवि'गुपाल' जासों डरप्यो करत सब
पूजा ठौर ठौर वैठे होइ निज थाने ते ।
बढ़े तन तेज, नेम बरची करें लाल, चाहे
सोई करि सकें, सदा रहे वीर बाने ते ।
परम पुराने लोग ईस्वर ही जानें, राजा
राउ सनमानें मंत्र सास्त्रन के जाने तें ॥

स्त्री वाच

दोहा

हिय अंतर डरप्यो करत जपै जाय येकत्र ।
मंत्र सास्त्र के पढ़ें जब सिद्धि होत है मंत्र ।।

कवित्त

मन दृढ़ राखि, कष्ट करमों परत घनों,
अथा धमजात जो विघन नैक कढ़िये ।
सुकवि "गुपाल" मंत्र जप्रन जपतर में
अजायें जात जानि जो प्रियोग नेक पढ़िये
भलो बुरो करत में निंदत है लोग, हथुमा
होति रहैं हायन, कुजस जग मढ़िये ।
छोड़ि तिय मढ़िये, बिदेसन में हड़िये, पै
भूलिकैं कबौ न मत्रसास्त्र कहूँ पढ़िये ।।

जोतिस सास्त्र

पुरुप वाच

जोतिस कों रुजिगार अबै करिहौं प्रिया प्रवीन ।
जाको सुप बरनन करूँ,[३] जो जग होत नवीन ।।

कवित्त

देव ओ नरन बसीकरन करन, याते
गूढ़ की गसो को गाँठी काटत फँसी की है ।
जनम मरन दुप सुप की पबरि, यामें
दीस्यो करे जैसे जैसे मूर्ति आरसी की है ।

---

१. है० के २. है० वो ३. है० मरता

सुकवि "गुपाल" तीनि जन्म, तीनि लोक, तीनि
काल्न की कहूँ बात बिना दरसी की है।
पढ़े जोतिसी को, जोई जानें जोतिसी को, जैसी
जगें जोतिसी को, जग माँझ जोतिसी की हैं॥

स्त्री वाच

सोरठा

जोतिस जानें जोइ,[1] जग जान्यो तिनगें न कछु।
पढ़त बड़ो दुप होइ, कहत कठिन[2] याको मरम॥

कवित्त

गिनति समुहार, गृह लगन निरधार, सुभ-
असुभ विचारत, जजार होत जीको हैं।
त्यागें घर नारि, औ' बढ़ावें नप-बार, जीत
हार में "गुपाल" मिश्र करेन[3] हँसी को है।
टारि के अरिष्ट, लेत याते है निकिष्ट काम,
सिष्टि बीच इष्ट सुभ दृष्टि बिन फीको है।
ज्ञान भान नीको, ही को सी को होत ठीको नीको
याते बड़ो भीको यह[4] काम जोतिसी को है।

मिसुराई

पुरुस वाच

सदां काम सब को परत, जनम गमी अरु व्याह।
मिसुराई के करत में नित नव रहत उछाह॥‡

१. है० जोय २. है० कठन ३. है० करत ४. है० रुजगार

‡है० में इन दोहे के स्थान पर निम्नलिखित सोरठा है:

"जनमत सादी मांह, सदां कांम सबको परै।
नित नव रहत उमाह, मिसुराई के करत में।"

कवित्त

आपने पराअे भले बुरे दिन जान्यो करे.
सडसों मिटायो[1] करे सबही के डर कों ।
गृहन लगाइ कें बनाइकें बरस फल[2]
ज्योतन को पाय माल मारे नारी-नर कों ।
सुकवि "गुपाल" नव गृहन के लेके दान
सादी औ बधाइन में राजी राखें पुर कों ।
गाम होत[3] सर, बडो होत हैं अुकर, याते
सब में सुघर यह काम है[4] मिसुरकों ॥

स्त्री वाच्य

दोहा

मिसुराई के करत में, नित दिन होत हिरान ।
भले बुरे दिन[5] देय ते, पचिमचि[6] जात पिरान ॥

कवित्त

सोघत में साहो, एह लगन लगावत
बतावत हैं[7] झूंठा जो न रांम होत जाई कों ।
होंम के करावत में धूपत रहत नित
मेरा[8] बडो रह्यो करे ब्याह औ बधाई को ।।
सुकवि "गुपाल" भले बुरे दिन पूछि सेति–
मेंति में हिरान करवायो करे ताई को ।
गृह की चढाई, पतिगृह की कमाई,
याते बडो दुखदाई यह काम[9] मिसुराई को ।।

---

१. है० मिठाय देत २. है० नित ३ है० रहे ४. है० रुजगार है
५. है० यह ६. है० पूछत ७. है० हूं ८ है० घेरो ९. है० रुजगार

पाँडेके

पूजा भयो करैं व्याप्त पुन्यो चौक चांदनी कौं,
सीघे ल्यौते दाम आमें पाटिन के माड़े कौं।
गुरुजी कहाय, बैठ अंम कीयो करें, घर
चहुल को रापें भरि सौंजन ते भांड़े कौं।
सुकवि'गुपाल' विद्या हस्तमल[1] रहैं, कांम
हुकम में होइ सेवा करें देपि चांड़े कौं।
सीघे होत बांडे हाथ जोरें लोग ठाडे, रहैं
याते रुजिगार भलो चट्टन के पाँडे कौ ॥

स्त्री वाच

होजिवौ करत सो सिपावन अज्ञानिन कौं
फूटिवौ करत कांन बहुत पहाड़े कौ।
पाइ होत बांड पात हानिन सौं गांडे
वरसार बिगरति यामें अेक दिन छांड़े कै।
सुकवि'गुपालजू' पकाय पाको करे गुण
कोअू नहिं मांनै गुरमार विद्या भांड़े कौ।
मारत मेंडांडे, चट्ट रातिदिन भाड़े, याते
पांड की सो धार रुजिगार यह पाँडे कौ ॥

रसायन

पुरुस वाच

जाके सम कोअू साह नहिं, कभी कहूँ नहिं जाइ।
होति रसायनि दाहिनी, रहत लच्छिमी ताहि ॥

---

१. छन्द की आवश्यकता के अनुसार हस्तामलक के स्थान पर इस रूप का प्रयोग है।

कवित्त

टहल में जाकें लोग लगेई रहत सदा,
कहूं करामाती मारी बाढतु है मरमें ।
सुकवि'गुपाल' नित जेतो पर्च करें, तेतो
आवे अनायास, कमी रहै नहि घर में ।
भलो भयो करत, हजारन गरीबन को,
धन दै निहाल करै काहू ते न सरमें ।
घरमें बढ़त जाको धरमें अपार हाथ
रहति रसाइनी रसायनी के कर में ॥

स्त्री वाच

दोहा

बूटी ढूंढत ही सदा, निसदिन जाको जाइ ।
रसायनिन को अेक ठाँ पाँव नहीं ठहराय ॥

कवित्त

जानीं जाइ जोपै तोरे घेरें रहें लोग घने,
घेरा परि जाय राजु राजन के धाँम है ।
परच न करै क्वो, अग जो लगावें फिरि
कबहीं न होति व्रयां जात श्रम याम हैं ।
करे ते टहल, बड़ी सिद्ध: की कृपा ते मिलै,
जाको चैये बूंटा घनो महनति दाँम है ।
फिरैं आठो जाँम, ठहरै न एक गाँन, यह
याही ते निकाँम सो रसायनी को काँम है ॥

वैधके [१]

पुरुष वाच

तजि जोतिष को काम, वर्नो [१] वेद [३] वैदक करों ।
होइ देस में नाम, अे सुप सरस सदा रहें ॥

कवित्त

सायन बनाइ के रसायन कमामें [४] नाम,
यामें [५] गाम-गाम काम परें जने जने को ।
रहें रुष्ट पुष्ट देह, नेह निरवाहें सब,
जीव दाँन देकें जस लेत नव घनें को ।
होइ [६] अुपकार, जुर्यो रहे दरबार द्वार,
औषधि के सारते सँमारें काज अनेकों ।
कहत 'गुपाल' होत हाल ही निहाल [७] याते
सब ही में भलो रुजिगार वैदपने को ॥

स्त्री वाच

दोहा

बड़ी बड़ाई वैद की, बरनि बताई बाल ।
बालम बहुरि सुनौं बहुत बुरवाई विप्यात ॥

कवित्त

मरेन कों मारें बुरी सबको विचारें पर-
नारी हाथ डारें, नित रहे यामें मंद को ।
सुप सों न सोवें, पर दुष्यन कों रोवें, इक
पलहो में पोवें दिन, करें काम कंद को ।

---

१. है० वैदक को   २. है० बनूं   ३. है० वैद   ४. है० कमावै
५. है० पावै   ६. है० होत   ७. है० यामे

हत्या पर हेत धरै,[1] करे रेत-पेन पाछे
औषधि कौं देत बिद[2] लेत पैलै[3] सेद कौं।
कहत "गुपाल" कवि मेरे जान में तौ याते
सबही ते बुरौ रुजिगार यह वैद कौ॥

पंडित

पुरुष वाच

वैदक[4] पंडित करि बनौ, पंडित बाचि पुरान।
मंडित करौं समान कौं, जग कहाय गुण मान॥

कवित्त

रहै महि मंडित, अखंडित प्रताप काम,
क्रोध मद खंडित कै, मेटै दुचिताई कौ।
ज्ञान कौं दृढावै, औ' प्रतिष्ठित[5] कहावै, सिर
सब कौं नवावै, चहै हरि चरचाई कौ।
सुकवि "गुपाल" व्यास गादि पर बैठि भलौ
आपनौं परायौ करै करिके कमाई कौ।
गुरमें दृढाई जाते सभा दबि जाई याते
बडौ सुखदाई इह काम[6] पंडिताई कौ॥

स्त्री वाच

दोहा

पहलै पढत पुरान के पचिपचि जात पिरान।
पंडित कै दुख सुनत में अकति होत हैरान॥

---

१. है० करे धरै २ है० वदि ३ है० पैलै ४ है० जातिस
५ है० पतिपुत ६ है० रुजगार

कवित्त

सुलप अहार, होत वार पर द्वार, होत
छार घरवार, होत देसन कमाई कौं।
त्यागनी परति तिय, मांगनी परति भीष,
मूरिष[1] कौं सीष देत पावै कछु याई कौं।
कहत "गुपाल" बड़ो सोपत कठिन काम
राजन के धाम दान जीते मिलै जाई कौं।
पढ़त सदाई, जाके जनम बिहाई, याते–
बड़ो दुषदाई यह[2] काम पंडिताई को॥

बंदी भाट

पुरुष वाच

[3]सदा राव पदवी मिलत, दबत राव उमराय।
चारि वरन आश्रम सकल,[4] नवत सकल जग जाय॥

कवित्त

पोल्यो करैं बंस, वाक वांनी मुष पोल्यो करैं,
पोषो[5] करैं सदा राव राजन के रोग कौं।
'सभा जस'[6] लहै, जाइ होइ ताइ तैसो कहै,
टेरी के कहामैं पुत्र, भोगयो करैं भोग कौं।
[7]सुकवि "गुपाल" चारयो षूंट मैं बिरति, और[8]
अंड ब्रहम मंड मैं प्रचंडन[9][10] के सोग कौं।
[11]कविता प्रयोग करै जोगि कौं अजोग याते
सबही मैं भलो यह काम भाट लोग को॥

---

१. है० मूरप २. है० रुजगार ३. है० नही है ४. मु० सदा
५. है० तोल्यो ६ है० मे तीसरी है ७. है० काहूँ ते न डरैं जैसो
८ है० मे यह दूसरी पंक्ति है ९. है० जाकी १०. मु० अवंडन
११ है० में : "साप्यो करै जोग करै जोग को अजोग याते
सबही मे भलो रुजगार भाट लोग को।"

इस्ती वाच

दोहा

बरकति होइ न नैंकहू, देइ सु थोरी होइ ।
याही ते भट लोग कौं, थोटो उद्यम जोइ ।।[1]

कवित्त

[2]बार न लगति भली बुरी के कहत जाइ
सरम न आवै माँगो पहरत पाट कौं ।
सुकवि'गुपाल' न्यारी सबही ते चाल चलै,
डर्यो न रहत कछु काम याके बाट कौं ।
रिस भजे अत, प्रान हूत न लगत बार,
बोलत अनंत झूंठ काहू की न डाट कौ ।
पाय नही काट, डूंढ़ै[3] लैवे ही की बाट, याते
सब में निराट रुजिगार बुरौ भाट कौ ।।

मागध जगा

पुरुष वाच

सेकरम आदि की मिलाय देन विधि जाके
लिखी रहै सब चली जाति वृत्ति जगा कौ ।
वंस कौं बखानें जिनें मांगद ही जानें,
आपनोई करि मानें कबौं पावत न दगा कौं ।
सुकवि'गुपाल' भल भले मिलै माल मिज-
मानी होति भलै जैसी मिलति न सगा कौं ।
दै कै जगा-पगा आय पूजें सब पगा मान
होत जगा-जगा, जिजमानन मैं जगा कौ ।।

---

१. है० में यह दोहा नहीं है । २ है० अधिक है । ३ है० टूटै

इस्त्री वाच

पोथ्या गाँठि बाँधि पोथ्रा सात्यां की मिलामें विधि;
तब कछु पामें बहि तोरे नित पगा कों ।
गाँम-नाँम-ठाँम न सँभारें रहें ताठो जाँम
मानें कोई जब तब लिप्यो मिलै लगा को ।
सुकवि'गुपाल' घर बैठे पात दगा कवी,
सगा कौन काँम यह काँम पिछलगा कौं ।
जाय सब जगा, फिरयो करें जगा-जगा, तब
मिलै किहू जगा जिजमानहि के जगा सौं ।।

चारन

पुरुष वाच

कोसन लिवामैंन कौं राजु राना जात,
पालिकीन में चढामें तिनें राना सिरपाँव दे ।
पढि गीत कवित, करोरन की लेत मौज,
माँमले करत बडे, रापत पराय दे ।
झूमें हय बारन, सुद्वारन हजारन ही,
मीर संग रापें चाहें ताकी बात दाय दे ।
ताजी-मनि पाइ, देत मूँछन कौं ताय, रन-
बारन सिवाय रहे चारन के कायदे ।।

स्त्री वाच

गीतन कों पढत, हडत रहें देसन में,
छुरे बोलि लेत प्राण देत नैंक बात में ।
रागडे से ह्वैके, बडे पहरि जे करायो, करें
जंग कौं हत्यार, गहि गहि निज हाथ में ।

सम। मे गुपाल काहू देवें न सिहात सबही
सो अकड़ात जे कमात धनी धात में।
मंद मास खात किया बनें नही गात ऐसी
रहै कुलपात सदा नारन की जाति मे

कविताई के

पुरुष वाच

कविता के रुजिगार कौं हम करि हैं चित लाय।
†ताको सुष बरनन करत, कवि'गुवाल' सुष पाय॥

कवित्त

जोरे नृप कर डरपति[1] रहै जाति सब
सकैं नाहि कहूँ तर्क औरन पराई कौ।
कविता[2] करत न भरत डाँड राजन कौं
पंडित समाजन में पावत बड़ाई कौं।
डूबे रहै रस बस, करे सब ही कौं चित,
जग में अकुर करि करत कमाई कौं।
फैलति लबाई यौं गुपाल की सबाई याते
बडो सुपदाई[3] यह काम कविताई कौ

स्त्री वाच

दोहा

कविता के रुजिगार कौं, कबहुँ न कीजे पीय।
यतनें ओगुण बसत हैं, समझि लीजिये जीय॥

---

† 'ताको सुष सुनि लीजियें प्यारी श्रवन लगाय॥' भी पाठभेद मिलता है।
१. है० डरपत २. है० येतीन ३. है० सबहीं ते भलो रुजगार

कवित्त

नर जस गैवो, परदेसन को छैवो,
अभिमानिन छ्वै जैवो, पौरि परन पराई कौं।
रस सुरसैवो, गप गप ते डरैवो, बहु
कवित बनैवो, यह घर है सुटाई को।
बुद्धि: को बढ़ैवो, परें अच्छर[1] चुरैवो. राज—
सभा जस लैवो, तब पैवो कछु याई को।
कहत 'गुपाल कवि' रायन रिझैवो, याते
सबही में कठिन कमैबो कविताई को ॥

कुकवि

पुरुष वाच

कविता में समझै नहीं रोरै सब सौं बाद ।
है कैं कुकवि सु सुकवि बनि, लेत सभा में स्वाद ॥

कवित्त

पाठ सो न जानि, अच्छरार्थ को न ज्ञान, कविता
सौं पहचानि न, घमंड मैं सबै फिरैं।
पिंगल प्रमानें, छंद भंग न पिछानैं, जानें—
और को कवित्त तोरि जोरि कें मनै फिरैं।
भनत "गुपाल" गुन दूषन बषानैं कौन,
अैसे दौरि-डौरि पोरि-पोरि में घनै फिरैं।
और को न मानें, आप झूंठी बात ठानैं, अब
अैसे कलिकाल में कवीन्दर बने फिरैं ॥

---

१. एक है कैं मन दैबो

स्त्री वाच

दोहा

कठिन कल्पनां करत नित, जपत कष्ट को नाम
याते कठिन 'गुपाल कवि' कविताई को काम ।।

कवित्त

कहा भयो कंठ करि लीने जो कवित्त, चित्त
अर्थ में न दीयो, जिनि पाई कहा धूरि है।
कहा भयो साँठे, कसी गाँठ तुक गाँठि लीनो,
साँठो सो लगाइ करि आयरन पूरि है।
कहा भयो ग्रंथ बिन समझें अनेक बांचे
पायो नाहि भत कबिरायन को भूरि है।
सुगम न जानो तुम सांची करि मांनो यह
कहत 'गुपाल' कविता को घर दूरि है।।

नई काव्य

पुरुस वाच

जग में नांम चलाइहो, निज कुल करि कछु काव्य।
कवि कोबिद राजी करहु, धरि नवीन कछु भाव।।

कवित्त

नई नई जगति जुगति, अनुप्रास बहु-
बरण मिलाप में रसीली रस ताको हैं।
नांनां धुनि, व्यंगि अर्थ, आदर अनूप जाके,
सुनत ही होइ कबिरायन कैं जाको है।
दूषन रहत, नद भूषन सहति, सब-
ही को मन गहत, कहत जब जाको है।

सुघर सभा को, चरचा को, मत जाको, कवि
कहत 'गुपाल' कविताई नांम याको है ।।

स्त्री वाच

दोहा

जो प्रबंध आदर्यो नहि, सुघर सभा के बीच ।
कविता करि ता कविहि नें वृथा कर्यो श्रम हीचि ।।[1]

कवित्त

कवि को न नेंम, प्रेम जामें नर नारि को न
कोऊ कग-मार एक गुण को गहा भयो ।
पंडित समाज आदरी न कविराज महा–
राजन में जाइकें न जस को लहा भयो ।
हरि कौं न नांम, आई काहू के न काम, व्रथां
चकि गांम गांम ते कुनामहि महा भयो ।
कहत 'गुपाल' पढ़ि भारत जे गाल कवि
ऐसी कविताई के बनाए ते कहा भयो ।।

पुरुस वाच

काव्यगुन

भगति मुकति पावै बड़ो, नांम जगत में होइ ।
कविराजन में मांन होइ, काव्य पढ़ै जो कोइ ।।

---

१. इसमें तुलसी की समीक्षा-दृष्टि की प्रतिध्वनि है—
जे प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं ।
सो श्रम बादि बाल कवि करहीं ।।

कवित्त

गणागण छंद गुण भूपन औ' दूपन के
जानै रस भेद-धुनि ब्यंगि लक्षनाई के।
नायक'रु नायक सुरति सुतात[1] हावभाव
चेष्टा कर्म दूती सपो औ' सखाई के।
समझै 'गुपाल' रितु, काल, दरसन-मत
मांन, मांन-मोचन औ' विरह दसाई के।
बूझं सब आई, परै दस में अवाई, बुधि
बढ़ति सवाई, सदां पढै कविताई के॥

धन कीरति औ' अति आनँद देति, दुरत्यय दु:ख्य दलावति है।
कवि पंडित राज समाजन में नृप ओगहि जो गुण चावति है।
तिय ज्यौं उपदेस कँ सत्यहि के औ कवीश्वर भू में कहावति है।
रसिकँ करिकँ 'श्रीगुपालजू' को कविता हरि ओर लगावति है॥[2]

स्त्री वाच

कवित्त

करने परत ग्रंथ संग्रह अनेक कठ,
रापने परत हैं कवित्त सब काई के।
राज-सभा बीच बाद रचनौं परत, पूरे
करणे परत जेते प्रश्न चरचाई के।
सुकवि 'गुपाल' निज कृतकरि काव्य अर्थ
जानने परत काव्य आपनीं पराई कि।
चहूं वड़िढताई, बुद्धि बढ़त सवाई, तव
होति है कमाई, कछू पढै कविताई के॥

---

१ सम्भवतः यह सुरतात है।

२ इसमें मम्मट के काव्य प्रयोजन की झलक है– 'काव्य यशसे, अर्थकृते व्यवहार विदे कान्ता सम्मित उपदेशयुजे।' साथ ही आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर भी संकेत है।

पुरुष वाच

वादी कवि

एक वनें न कहूँ मुष सों गुनी औगुनी डोलें मजेज के मारे।
जो गुनी आय के कोई मिले तिन सों यदि वाद मचावत भारे।
सांची न मांनत झूंठियै ठांनत लंगटी ए करतार सँभारे।
ऐसेन सों तो 'गुपाल' कहै हम जीतहु हारे औ' हारेहु हारे॥

स्त्री वाच

जानें न कवित्त चरचा को रीति-भांति, सांची—
बात के कहत ही में ह्वाल पीजियतु है।
देषत ही जरे जात गुनिन के गुण, सुनि—
तिन के बचन ही सों हियो हीजियतु है।
आप कहि जानें, नही और की कौं मांने, नहीं
चोज कों पिछांनें नहीं हियो भीजियतु है
वैठि कें सभा के बीच, सुकवि 'गुपाल' कवो
मूलिकें न अंसन सों वाद कीजियतु है॥

पुरुष वाच

लिखई [1]

पुरुष वाच

कविता के रुजिगार तें, चरज्यो तेनें मोहि।
करहुँ लिपाई तास मुष वरनि सुनाऊँ तोहि॥

---

[1] ६० लिपाई को

कवित्त

हरि गुण गान, पहचानि गुणमानन सों,
सुकन कों ग्यान बुद्धि परे अधिकाई में ।
जंत्रन में, मंत्रन में, तंत्रन में, गति होति
रहत सुतंत्र हूँ इकत्त मनभाई में ।
जानत 'गुवाल' बहु ग्रंथन को मत घर–
बैठे रुजिगार हानि जोष्यो नहिं याई में ।
स्वारथ की सिद्धि, परमारथ की रद्धि।
अनेकारथ की सिद्धि, होति लिषत लिपाई में ॥

स्त्री वाच

दोहा

लेषक के सुष तुम सुनें, दुष्प सुने नहिं कांन ।
नैन बैन कटि ग्रीव कर पुरषारथ की हांनि ॥

कवित्त

न रि रहि जाति, नहिं बात कहि जाति, बहु
देह दहि जाति, जोर घटे करगाई कों[१] ।
भोजन पचें ना, पाय आदिमी रचें ना, कछु
नफा हू बचें ना, ऐसी करत कमाई को ।
नैन जल भरें, औ' नितंब दूपि परें, जब–
दिन भरि अरे, तब पामें कछु याई को ।
काम पर्यो जाई, सोई जानतु है मायी, यहु[२]
बहुत 'गुवाल' काम कठिन लिपाई को ॥

---

१ है० को २ है० इह

रासधारी

पुरुष वाच

रासधारि है करहुंगो[3], जोरि मंडली रास ।
गाय बजाय रिझाइ कै, धन लाऊँ तो पास ॥

कवित्त

सोंहन सरूप, बड़ो लोयन रहत नोन,
भोंहन नचाइ, मन मोहैं नर नारी कों ।
स्वामीजू कहामें, औ' हजारन के लामें माल
हरि गुण गामें करें सुकरम भारी को ।
सुकवि 'गुपाल' मिलै' धंवे कों नगद माल
लाल बनि सदा मजा लेंय[4] सब ठारी को ।
आमें बात धारी, देह रहति सुधारी, याते
बडो सुखकारी, यह कांम[5] रासधारी को ॥

स्त्री वाच

कवित्त

*आति घरें नांम, नाम होत बदनांम, करें
घर के हरज कांम, रहै नांहि नारी को ।

---

३ है० करूँगो ४ है० रेत ५ है० रुजगार

*है० प्रति में इस कवित्त से पूर्व यह दोहा है :

"स्वामी बनि करि मंडली, भूलि करो मति रास ।
देस छोड़ि कै होइगो, परदेसन मे बास ॥"

जेती है नफहि[१] ताहि पात हैं समाजी लोग
सेवनो परत परदेस परद्वारी को ।
गावत, बजावत[२], नचावत[३], में लागे लाज,
द्रष्टि परि जाय जब कोऊ हितू यारी को ।
कहत 'गुपाल' होत पछिम दुवारी, याते
बडो दुष-कारी यह काम[४] रासधारी को ।

गवैया

पुरुष वाच

कर न नदीनी मडली, होइ गवैया गाइ[५] ।
तानन को धन लाइहै[६], सुजन समाज रिझाइ[७] ॥

कवित्त

हरि-गुण गावो प्रिया-प्रीतम रिझैवो, नित
भक्ति उपजैवो, नैवो हिय उमगैया को ।
सँकरान नर-नारी जोवन रहत मुष
देत हैं बडाई अरु लेत हैं बलैया कौं ।
है कै गुनमान मान पावै गुणमानन में
कानन में तान गान सुष तरसैया कौं ।
कहत 'गुपाल' भलो आपनो पवायो यामैं
यातें यह भलो रुजिगार है[८] गवैया को ॥†

---

१ है० नफा होइ ताय २ है० बताव्न ३ है० नचावत ४ है० इज-मार ५ है० *गाय* ६ है० *लायहै* ७ है० *रिझाय* ८ है० है

† इसमे दूसरी पंक्ति है० की प्रति मे तीसरी पंक्ति है और इसमें तीसरी पंक्ति है० प्रति मे दूसरी ।

स्त्री वाच

दोहा

गंवे के रुजिगार कों समझि कीजिये कंत।
सुनिये कान लगाय कें, याके, दुख्य अनंत ॥

कवित्त

आगें बैठि गावै ओ' भमैया लों बतावै माव,
तब कछु पावै यों रिझावत रिझैया कों।
स्वाद कौन जानें, बड़ी साधना न ठानें, कंठ–
रहे न ठिकानें, पाटे भोजन पचैया को।
ढीठताई धारि कें, पराए द्वार चार होत
ठट्ठा करवावै, ताल चूकत चबैया को।
कहत 'गुपाल' दैया दैया करि आवै, याते
सबमें कठिन रुजिगार है, गवैया को ॥

इतिश्री दंपतिवाक्य विलास नाम काव्य-सास्त्र प्रबंध वर्णनं नाम

दसमोविलास ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ विलास

(भिक्षा प्रबंध)

पुरुष वाच

दोहा

गँवे के रुजिगार ते, बरज्यो तैंने मोद ।
भिक्षुक के रुजिगार के मुण्य : सुनाऊँ तोइ ॥ *

कवित्त

आवै नांहि चोट, गढ़कोट ओट तकै न,
निलाले पात रोट, पोट करत न प्यारी को ।
चहियें जमान, सब देस जिजमांन, भलो–
पावै पान-पाँन जोव्यो ज्वाँन न अगारी को ।
घर घर यार, चाहूँ हाथ न हथ्यार, ख्याल
करत हो त्यार, प्यार होत नर नारी को ।
कहत 'गुपाल कवि' मेरे ज्ञान में तो याते
सब ही ते भलो रुजिगार है भिषारी को¹॥

---

* है० प्रति में यह दोहा है–
स्यानप के रुजगार ते बरज्यो तैंने थांम ।
भिषुक को गुण सुनिय नित भीष मांगिहैं गांम ।

१ है० में यह पंक्ति इस प्रकार है .
"कहत गुपाल आनुवान्नि के जमाने बीच
सब ही ते भलो रुजगार है भिषारी को ।"

रती वाच

सोरठा

काके द्वारे जाय, कहैं कि हमकों दीजियै।
मरि जैयै विसवाय, जीवत भीष न मांगियै॥

कवित्त

राषत पराई आस, चित में उदास रहै,
सतत विनास औ' निवास दुष भारी कौ।
प्रीति हरकति, बरकति नहिं होति, आत्रू-
आदर न रहै निरलज्ज रहै गारी कौं।
लैबौ होत इहाँ, आंनसी में उहाँ दैबौ दिन
रैंनौई परात, चित चैनौ न अगारी कौं।
डोलै द्वार द्वारी, यामें यह बड़ी ख्वारी, याते-
कहत 'गुपाल' काम कछु न भिषारी को॥

प्रोहिताई

पुरुष वाच

पुजवावै लै पाँय, पतितन कौं पावन करै।
पल पल प्रीति वढ़ाय, प्रिया प्रोहिताई करत।

कवित्त

जाके हाथ ह्वै कैं सब होत काम कारज को,
सदां पुन्य दांन सदां गमी औ बधाई कौ।
सवते पहल, पाइ[1] पूजियत जाके आइ,[2]
ताके दिये बिन धर्म्म[3] होत नहि काई कौं।
'सुकवि गुपाल' जिजमांनन के मांन भलो
पाँन पाँन दैकें[4] सनमान मिलै ताई कौं।

---

१ है० पाय २ है० आय ३ है० धर्म ४ है० दैकें

मानें ममिताई, होइ हिय में हिताई, याते-
बड़ी सुखदाई यह काम प्रोहिताई को ॥

स्त्री वाच

सोरठा

प्रोहित हूजै नाहि, जो जिजमान कुबेर सो।
निंद्य कहैं सब ताय[५], गति न लहै परलोक में ॥

कवित्त

रहतो परत दुख-सुख जिजमान के में,
दान के बपत[६] लोग देत बुरवाई को।

जाको धान पाय, ताके पापन को भागी होइ,
वद औ' पुरान, यातें निंद्य कहैं ताई को।

कहत 'गुवाल कवि' भले बुरे कर्मन में
सबते पहल ग्रास लैनों परै जाई को।

जाइ[७] के निताई, यों कमाइये किनाई, क्यों न,
ठहरत काई के न पैसा प्रोहिताई को ॥

गहुनावा

पुरुस वाच

होइ कुटम प्रतिपाल, माल मिलै यामैं[१] घनों।
याते 'सुकवि गुवाल' गहुनाई करिहै सबै + ॥

---

५ है० याहि

६ है० बपत वृंदावन वाली प्रति में लिपिक की भूल से पत लिखा है।

७ है० जाय

१ है० जामें

+ है० प्रति में पंक्तियों का विपर्यय है।

कवित्त

आय आय सब, व्रजवासी जाँनि पूजें पाँय,
बात सही होति है सदाँ कौ प्रोहिताई में।
तीरथन न्हात, कथा करत विख्यात, भले
भोजनन पात, जे न मिलें पहुनाई में।
'सुकवि गुपाल'[२] मिलिजात माल, हाल यामें,
भागि के जगे में तौ निहाल होत याई में।
करें मन-भाई, कछु राई न दुहाई, याते
सब तें सवाइ है कमाई गहुनाई में[३]।'

स्त्री वाच

दोहा

कवि गुपाल बहु कठिनि है गहुनाई कौ काँम।
भ्रमें देस परदेस में लेइ[४] न नेंक अराम॥

कवित्त

सेयौ करें राह, औ' गनें न भूप ग्याह जब[५]
आवै कछु आह, न अुमाह कछु याई[६] में।
डोल रहे मारो, कम तौल रहे न्यारो, परदेसन
में प्यारी, बँधो जीवका न जुयाई में।
कहत 'गुपाल' जब मिलै कछु[७] माल, बाँधें
बातन के झाल, जब[८] आवे दाञ्ज धाई में।
छोड़ि कें लुगाई दहुताई राति जाई,
होति बड़ी कठिनाई ते कमाई गहुनाई में॥

---

२ है० कहत गुपाल ३ है० टहौ नृपदाई रुजगार गहुनाई कौं।
४ है० लहे ५ है० तब ६ है० याही ७ है० जत्र ८ है० तव

चौबेके

पुरुस वाच

श्री बराह अवतार नृप महमाँ गावत आप ।
याते माथुर लोग की जग में बडी प्रताप ॥

कवित्त

रापत है सौप बडो, पाइबे पहरिबे को
बैठक रहनि सदा जमुना समीप की ।
'सुकविगुपाल' अं' कहत में न चूकं कहूँ
अकृति न यात बडी रापत है टोर की ।
गाजे श्री बराह, द्विजराजन के सिरमोर
जिनके अगारी विद्या चले न हरीफ की ।
सेवत महीप सात पड नव दीप याते
जाहर जहूर जोति माथुर महीप की ।

स्त्री वाच

दोहा

औरन की पंटो कहत, अपु बातन को पात ।
याते सब ही म बुरी, यह चोबिन की जाति ॥

कवित्त

जाकी धनि पाय सदा सार्ई को निगोयो करें,
पोटी के कईया जे गुसाय रहें रोटं को ।
पूदत रहत सदो देत परदेस बने
रहें गरगरा जिजमान के रिझैबे को ।

'सुकविगुपाल' और ब्राह्मनें न देषि सकें
बड़े चुरबोल, सो लगाअे रहैं देवे कौं।
सुर सी न सोवै, परद्वारे दिन षोवै, याते
सबही में बुरो रुजिगार यह चौबे को ॥

पुन

अेक साहो सोधि के, असूझ करें ब्याह सब,
बदले बहनि बेटी के ते ब्याहे जात हैं।
देसी परदेसिन कौं, घर में घुसाइ कें—
रिझाइ लेइ सबै नहि नेंक सरमात हैं।
'सुकवि गुपाल' घर टहल करत आप
चौबिन की सदां सेर राष्यो करें बात हैं।
पतिः गृह पात सबै देषे जारे जात, याते
सब में कुजाति यह चौबिन की जाति हैं ॥

घटमंगा

पुरुष वाच

दछिना कौं मांग्यो करें जपि जमुना को नाम।
याते यह सब में भलो, घटमंगा को काम ॥

कवित्त

(जे) सदाहो रहें तट टीरथ के सुभ कर्म सुनें सतसंगिन कौं।
नित न्हात औ धोवत देष्यो करें, सुमदां तरुनीन के अंगन कौं।
परदेसी' ए देसी ते लें दछिना, हरि नाम जपें लें उमंगन कौं।
यह 'राय गुपालजू' याते सदा रुजिगार भलो घटमंगन कौं ॥

स्त्री वाच

सोरठा

यक कौडी के काज, नगा है दगा करे।
याते बडो निलाज, काज सु घटमगान को ॥

कवित्त

मांगन में झोली ठोली डार्यो करे सबही पै,
अर-अक कौडी पर र्यो करे दगा कौं।
मरनौ परत मोर ही ते जाय लेरथ पै,
कान्ति को रहे डर बीछी औ' भुजगा को।
'सुकवि गुपाल' घात मबते जबर फली—
मूत नहि होत लेत जमुना औ' गगा कौं।
बने रहे नगा, राचि जाति सौं अरगा, याते
बडो मति भगा यह काम घटमगा को ॥

पुसामर्दी

पुरुष वाच

छोडि सबै रुजिगार, करहु पुसामदि आइ कै[१]।
बस करि कै नर नारि धन सचित करिहौं बहुत ॥

कवित्त

बढै हुरमति अति आबति है[२] मति, लाल
बन्यो रहे नितप्रति पूव पाअे पीअे ते।
दुप-मुप परे, दव औदर में सरे काम,
रावत हमेश हित ह[ु]दिन[३] हीअे ते।

---

१ है० मे २ है० ४ ३ है० हुरमत

'सुकविगुपाल'[४] माल मिलै पै निहाल होत,
भले परिजात और गुद्यम के मीजे ते।
या मदि में आमदि, सुदामदि को होति, पुस–
आमदि की रहति पुसामदि के कीये ते॥

स्त्री वाच

सोरठा

या आमदि के काज करहु पुसामदि जाइ[५] कै।
हियें मानि कैं लाज[७] चुप[८] करि घर मैं बैठियै॥

कवित्त

साँचरु झूठ की हाँ कहनों औ' मदाँ कहनो सहु-सोमिली बातें।
पापरु[९] पुन्य में संग रहै सदा[१०] रावत राजो सु आपनी घातें।
'रायगुपालजू' देय कछू जब, डोलत पाछे लग्यो दिन रातें।
याही ते या जग माँझ बुरो रुजिगार पुसामदो की यह यातें।

रोजीने के

पुरुष वाच

रोजीना बधवायबो गुन महनति ते होत।
याके छूटते सदाँ, बहु दुष होत उदोत।
लालो रहै न अेकहू अँस करत दिन जात।
याही ते जग में बड़ी रोजीना की बात।

कवित्त

मिलिबो करतु है कपूत औ'सपूतन सौं
ब्याज मारो जैसें बढ्यो दीसे दिन-राति है।

४ है० हाल ही गुपाल ५ है० किलैते ६ है० कौन की ७ है० लजि।
८ है० चुप ९ है० दुप्यरु सुप्य १० है० निउ

'सुकविगुपालजू' कमानौं न परत, कछु[1]
जानौं न परत सो निलाले रहैं गात हैं।
संपति कौं पावे, गुन कदरि बढावैं, ऐसे–
बड़ी करशावैं, फूले गात न समात हैं।
दाँम रहै हाथ, पात रहै पैड़ो सात याते
जग में विख्यात रोजाना की बड़ी बात हैं।

स्त्री वाच

कवित्त

लगत सबेर, जानौं परैं बेर बेर, कछु
बरकति होति पात पियत न पाके में।
'सुकवि गुपालजू' दिमान औ' मुस्सदिन[2] के
देनी परै घूंस, काम हाथ-होत जाके में।
होत है हराम, और है सकै न काम, जब
पटत न दाँम, दिन जायो करैं फाके में।
दाँम रोजीना के, दुष देषि रोजीना के, आय–
जाय रोजीना के, रुजिगार रोजीना के मैं॥

इतिश्री दंपतिवाक्य विलास नाम काव्य मिधा प्रबंध
वर्णन नाम एकादसो अध्याय। ॥ ११ ॥

---

१ सम्भवत: यह 'रहैं' है।

२ लेखक ने मूल में 'द' के द्वित्व के स्थान पर 'स' का द्वित्व कर दिया है। इस प्रकार पाठ 'मुसद्दिन' होना चाहिए।

श्री गोपा... ... सि...

द्वादश विलास

(मंदिर–प्रबंध)

अथ गुसाईंन सुख

पुरुष वाच

दोहा

धन दैकें पधरामनो करत राउ उमराउ।
घर बैठें पूजत जगत, गोस्वामिन के पाँउ।

कवित्त

ईश्वर के रूप, भूप सेवत अनेक जिनें,
राषत न उर में भरोसो कहूँ काई को।
आसन कों डारि करि जाप मौन बैठे जब
नवत भलोकी रूप देषत ही ताई को।
'सुकवि गुपाल' व्रज रज कों रहत ध्यान,
जामें चली भेंट घर बैठे सदा ताई कों
पद्धत सवाई, भोग भोगत सदाई, याते
बड़ो सुषदाई यह काम है गुसाई को॥

स्त्री वाच

कवित्त

आमदनि पाँच, पै पचास को षरच राषें,
ब्याज झगरे में धनजात सब जाई को।
'सुकविगुपालजू' डिफाँन बड़ो राषे सदा
देस परदेसिन की षात है कमाई को।

करनी परति तन काष्टा अनेक, कंठी–
दुपटा, प्रसाद, दैनों परे सब काई कौं।
होवह गुसांई, मरे रहत गुसांई याते
बड़ोई गुसाई को य करम गुसाईं को॥

भट्ट

पुरुष वाच

दोहा

भोर-साँझ, कीर्तन कथा, सतसंगति दिनराति।
पूजा पुन्यरु पाट में भट्टन को दिन जात॥

कवित्त

बाँचत पुराण, गुन मान सनमान, भलो[1]
पात पान-पान-दान-मान मिलै[2] ता को हैं।
करत 'गुपाल' बरपोत्सव समाज, रास,
प्रभु को लड़ाइ, सुप देत सब ही को हैं।
अनगण धन, बातसल्य में मगन मन,
करत पवित्र जन जनन के जी कौं हैं।
व्रज भाव टीको, सर्व अर्पं हरि ही कौं, याते
सबही में ठीको कर्म भट्टन को नीको है॥

भट्ट

स्त्रीवाच

है समर्पि, कृष्णारपन तन मन धन करि देत।
तबै भट्ट है कै कछू, या जग में जस लेत।

---

१ मु॰ आछो। २ मु॰ होत दान मान ही को हैं।

कवित्त

माल पात जट्ट, दिन जात छट्ट पट्टहि में,
(पटाही में) पटत्यो रहत बड़ो नीरन की ठट्ठ को।
'सुकविगुपालजू' कमात जेते दाम, तेई[1]
करिकै इकटठ जात बनिया[2] की हटठ को।
अर्पनी परति[3] है समर्पनी देह, गट्ट–
पट्ट है सकै न घर रहे पट्टपट्ट को।
लागे रहे पट्ट, झांकी[4] होति झट्ट पट्ट, याते–
सब में निपट्ट कर्म[5] कठिन है भट्ट को॥

अधिकारी

पुरुष वाच

संत महंत दबे रहैं, जगत-जगत में जोति।
हरि मंदिर में जाइ जब, मुखिया मुखिया होत॥

कवित्त

आमदि औ'खरच हजारन को रहै हाथ,
मार्यो करें माल, बात कहिकैं हुस्यारी की।
'सुकवि गुपाल' कोई मामले रहत हाथ,
पावै भुखरयारो कैऊ बात की तयारी की।
दुपटा प्रसाद, रोझ बूझ लेन देन, ताकै
हाथन है आयो करें भेंट नर नारी की।

---

१ मु० सोई २ मु० बनिक

३ मु० करत समर्पण अर्पन के देह गट्ट पट्ट पर ह्वै सकै न घर पट्ट पट्ट को।

४ मु० पूजा ५ मु० काम

दवत पुजारी, रुप रापत भँडारी, होति
मंदिर में भारी मुफ्तयारो अधिकारी को ॥

दोहा

स्त्री वाच

जाके दाम घटें न ते दया करैं घरकार।
अधिकारिन की रातिदिन, माँटी रहति पुआर ॥

कवित्त

रापनी परति पर बस्ती सब बालन की
आमदि परच जमां सौज की सँभारी की।
'सुकवि गुपाल' रहैं झगरे अनेक, कर्यो
परै सनमान नित नअे नरबारी को।
सेवक-सती की यादि रापनी परति कंठी
दुपटा, प्रसाद, दैनौं परै सब ठारी को।
लोग देत गारी, औ'तगादो रहैं जारी, याते
बड़ो दुपकारी यह काम अधिकारी को ॥

सिरकार

पुरुष वाच

मंदिर में सिरकार जब गोंडियान को होत।
भाव भगति हिय में दसै, जग में होत उदोत ॥

कवित्त

चाहै ताहि रापै, चाहै ताही कौं निकारि देह,
रापैं गुलजार घर नगर बजार कौं।

'सुकवि गुपाल' भेंट मारे परे हाथ ओ'
परच करि सकें जाके दूसरो अगार को।
महुरा कों लेइ, भिरि झगरे कों जीतें, सब
काम में हुस्यार के चलावें कारवार कों।
मंदिर मँझार, सदा रहैं मुषत्यार, याते
सब में अगार, रुजिगार सिरकार को॥

स्त्री वाच

दोहा

रगरे झगरे बहु रहैं, मंदिर महल सँभार।
गौड़ संप्रदा कौं कबहुँ हूजै नहिं सिरकार॥

कवित्त

रगरे अनेक जाकूं, झगरे लगेई रहैं
बिद्दति अनेक लोग रापें अहंकार कौं।
रैयति निकारें, दीन भित्रपुक बिडारें, भेंट
मारे के अगाहत में पायो करें गारि कौं।
'सुकविगुपाल' काम मिलकि मकानन को
निसदिन रहैं फूटी टूटी की सँमार को।
भेंट देती बार, जाली कहैं बुरबार, याते
बड़ो दुपकार रुजिगार सिरकार को॥

फौजदार

पुरुष वाच

जुर्यो रहे दरबार घर मिलैं भेंट में भेंट।
फौजदार को काम यह याते सबमें ठेठ॥

कवित्त

जाली लोग जेते, कांम पूछि कै करन, ब्रह्म
मोज पुन्य-दान भेंट पूजा के बिचार कौं।
'सुकविगुपाल' बाबू काबू में रहत, घर
बैठें माल आयो करे मंदिर मंझार कौं।
जाके हाथ ह्वैके भेंट मंदिर न होइ
गहुनावा ब्रजबासी सब कर्यो करें प्यार कौं।
दबें सिरकार, रुप रावें सिरदार याते
बड़ो ओजदार, इजिदार फोजदार कौं॥

फौजदार

स्त्री वाच

गहुनावा घेरें रहे, जालिम के आधीन।
याते सबमें कांम यह फोजदार को हीन॥

कवित्त

घर में अुतारी, जात्री लोगन की सहै घूम,
करि बरदाय सिकरावे निज जुबांन कौं।
पांन पांन दैके बहु आदर कौं फेंकें, मन
राचनों परत गहुनाव सनुआन कौं।
'सुकविगुपाल' सिरकार अधिकार भेंट
देत, लेती बार कर्यो करत हिरान कौं।
मेरी कही मांनि, हरि मंदिर में आनि, कबौ
भूलि के न हूजे फोजदार गोंडियान कौं

छरीदार

पुरुष वाच

दरस करत निसदिन रहत हरि मंदिर के द्वार।
याते भलो 'गुपाल कवि' छरीदार रुजिगार॥

कवित्त

सबते पहल जासों आइ कैं कहत बात,
प्रात ही ते सदां हरि मंदिर बहत है।
जाके हाथ है कै सब मंदिर सयानन,
प्रसाद पनवारे संत सेवग लहत हैं।
'सुकविगुपाल' जब मंदिर में भेंट होति
भेंटे में ते भेंट लियो करत सहित हैं।
बढ़त महत, सुप संपति लहत, सुप
सब ते बहुत, छरीदार कों रहत हैं॥

स्त्री वाच

दोहा

डोलत बोलत रैनिदिन देह जाति है हारि।
याते सब ही में बुरौ छरीदार रुजिगार॥

कवित्त

सदां ही, नठल्लन में, टल्लन में, डोल्यो करैं,
ठाड़ो रहै द्वार निरवारैं भीर-भार कौं।
घर-घर जाय, बटवावनौं प्रसाद परै
काँम रह्यो करै जापै सब को बिगारि को।

सुकवि'गुपाल' चाय सेवक सबी को
करवाबनी परति भेंट, करि के संमार कौं।
रौकत में द्वार, जात्री कहें दुरवार, याते
बड़ो दुपकार रुजिगार छरीदार को।

भंडारीके

पुरुष वाच

सौज, प्रसादी, अमनिया, हाथ रहत भंडार।
भंडारिन सों रहतु है, याते, सबको प्यार॥

कवित्त

सौज परसादी औ' अमनिया रहत हाथ
ताको दई चीज मिलै सेवग पुजारी कों।
सुकवि'गुपाल' मुपत्यार रहै मंदिर में
भलौ भयौ करे ताते सेवक भिपारी कौं।
सौज परसादी, दे'लगायो करै लाग, ताते
लेयो करै मजा महबूब-नर-नारी को।
देह होति भारी, पात सबते अगारी, याते
बड़ो सुपकारी, यह काम है भंडारी को॥

स्त्री वाच

दोहा

सौंज अमनिया की सकल निसदिन रापें त्यार।
सबै भंडारी होत हरि-मंदिर में मुपत्यार॥

कवित्त

करनी परति रपवारी, नित रातिदिन,
देइ नहिं जाइ, सोई दीयो करै गारी कौं।
रापनी परति है तयार सब सौंज, काम
लग्यो रहै सदां, भोग-राग की तयारी को।
सुकवि'गुपाल' समझावत मैं लेवो, चीज
घटि बढ़ि दीयें, डर रहै अधिकारी को।
लोग करैं चारी, पावे जात हैं[1] भिपारी, याते
बड़ो दुपकारी यह काम है भंडारी को॥

पंडा

पुरुस वाक्य

बांधे जग झंडा, तेज रहत प्रचंडा, जाकौ
पूजै यह मंडा, करवावै नित हुंडा को।
पूजि करि देव कौं, सुसेव करै आछी भांति,
जानै भक्ति भेव जेव रापै तन मंडा कौं।
पहरि 'गुपाल' कड़े, मोती, गोप, तोड़ा, सेला
समला, दुसाला, मोहि लेत नव पंडा कौं।
पाय पीरि-पंडा, जाकी देह होति संडा, बहु
जोरतु है भंडा, रुजिगार करि पंडा को॥

स्त्री वाच

इष्ट में न निष्ट, लिप्ट, पिष्ट रहै रांड़न सौं,
मन के निकृष्ट जोरै कष्ट करि भंडा कौं।

---

१. मूल प्रतिमें यह 'हौं' है।

छोटे बडे आदिमी के पीछे लगे डोले, आस
जात्रिन की रापें, देव-पूजा पात चडा कौं ।
रहत 'गुपाल' राजमद मँह छाके सब
बापन बिरोध बहु आपुस में हडा कौं।
रहै रडा मुडा गुर करैं मुछ मुडा, बहे
होतहु गुरडा काँम करतहि पडा कौ ।।

पुजारी

पुरुप वाच

घटा, संप वजाय के पूजत हरि दिन राति ।
याते सब ही में भली पुजारीन की बात ।।

कवित्त

प्रभु के निकट रूप माधुरी कौं देप्यौ करैं,
कर्‌यौ करैं काम सदा सुन्दर मजारा कौं ।
भूषन वनाइ, तन सुगंधि लगाइ, चरनामृत-
प्रसाद लीयौ करैं हरि-द्वारी कौं ।
सुकवि 'गुपाल' हरि मदिर में बैठ्यौ सदा
पातरि में लावत न बामन हजारौ कौं ।
रूप होत भारी, आवै देह पै तयारी याते
सबही में भारी यह काँम है पुजारी कौं ।।

स्त्री वाच

दोहा

राति दिना घेरो रहै, जाय सकै नहि धाम ।
याते कठिनि 'गुपाल कवि' पुजारीन को काम ।

कवित्त

जागे पिछराति, घेरा रहै दिनराति, बडे
सीतन मे न्हात, गात रहै न सुपारी कों।
सुकवि 'गुपाल' रंगो पगत अपर्स, पुनि
पामनो परे प्रसाद, सबते पिछारी को।
सेवक समाजी, कविराज, द्विजराज, जाय-
देइ न प्रसाद, सोई दीयो करै गारी को।
छूटे घरवारी, पैंडो देख्यो करै नारी, याते
बड़ो दुषकारी यह काम है पुजारी को ॥

रसोइया

पुरुष वाच

सबै सौज कर में रहै, घर में होइ मुषत्यार।
याते रसोईदार को भलो सु यह रुजिगार ॥

कवित्त

भोजन सो छकि कें, रसोई मांझ बैठे, मन
भर्यो रहै, कांमना रहति नहिं कोई हैं।
सुकवि 'गुपाल' जासों सबको रहत प्यार
कबही बिगार करि सकत न कोई हैं।
मार्यो करै माल, भलो बुरो करै हाल, नांना
भातिन के स्वाद, सदां लीयो करै सोई है।
करत रसोई, जोई कहै सोई होई, सदां
जाके हाथ लोई, ताके हाथ सब कोई है ॥

स्त्री वाच

दोहा

कोई दुष सुष परत जब, भरम धरत सब कोइ।
याते रसोईदार को, बड़ो दुष तन होइ ॥

कवित्त

जरयो करै हाथ, देह गरमी में भुज्यो करै,
धुआँ घुमडत जब, आपिन छो सूझै ना।
बडो कष्ट पावै, सो पसीनन तें न्हावै, पाले
भोजन न भावै, तब वपत पै पूजै ना।
'सुकविगुपालजू' रसायनि को काम, जाके
करत में कोमू अररस ह्वैकै छूजै ना।
निसदिन घूजं, कोमू दुप को न वूझं, याते
राजन के मंदिर रसोईदार हूजै ना॥

कुतवाल[1]

पुरुस वाच

'कविगुपाल' कुतवाल बनि, गहरे मारत माल।
करि कुटंब प्रतिपाल नित, बन्यौ रहत हैं लाल॥

कवित्त

संत औ[२] महंतन के रहैं बडो वृत्त, सदा
आदर अधिक, भागि जागतु हैं भाल को।
लेत अह देत मुपत्यार सब ही के होत,
जाको[१] कयो[२] बोलवालो परै न सवालको।
आमदि[४] दरफ[५] हरि-मंदिरन रहैं, गहु–
नावा ब्रजवासी सब अरयौ[६] करैं प्यार कौं।
कहत 'गुपाल' भल भले मिलैं माल, याते
सबमें बिसाल, रुजिगार कुतवाल को।

१ है० पेरन की कुतवाली
१ है० 'ह २ है० तारो ३ है०, मु०, बहैं ४ है०, मु०, आमद
५ मु० रफन ६ है०, मु० नित होय (होत) उपकार भले दीन प्रतिपाल को।

स्त्री वाच

दोहा

कुतवाली के करत मन जते जते को लेत।
राति दिनां डोल्यो करत तब कछु यार्को देत।

कवित्त

राति दिन यामैं होंनो परत हिरान, नित
डोलें घर घर, कहूँ न्योतो' जइ दीजियै।
गारी-गरा देकैं, बोली डारत रहत लोग,
जेंमें-जुठिबे में जाय भीतर न लीजियै।
रोकत मैं पाप, लगै दीन को सराप, मूलें-
चूकें लेत-देत में महंत जात' पीजियै।
सुकवि 'गुपाल' कछु और कर जे जियै, पै
सत के घरे. को कुतवाली नहिं कीजियै॥

इतिश्री दंपतिवाक्यविलास नाम काव्ये मंद्र प्रबंध वर्णनं
नाम द्व सो विलास॥ १२॥

---

७ है०, मु० न्योते ८ गु० जाज

त्रयोदश विलास

(देवालैन को रोजगार)

पुरुष वाच

संत समागम हरि भजन दरस मोर अरु साझ ।
यतने सुष नित होत हैं हरि देवल के मांझ ॥

सदाई भँडारी के भँडार रहैं हाथ औ
रसोइका के हाथ सब रहति रसोई है ।
परच को रहैं अधिकार अधिकारी हाथ
फौजदार हाथ भेंट आवै सब सोई है ।
ऊपर के काम सब रहैं छरीदार हाथ
पूजा को मुरम तो पुजारी हाथ होई है ।
सुकवि गुपाल भावभक्ति उर होइ सदा
ऐसो रुजगार तो त्रिलोक में न कोई है ।

स्त्री वाच

भगत भाव मन में रहैं इंद्रिय-जितनिहि काम ।
कवि गोपाल तापै बनै देवालन को काम ॥

देत अरु लेन में भँडारी के हिसाब हैं हो
घेर बडो रहत पुजारी को सदाई है ।
छरीदार भये डोला डोली में पगाव, धुंआ
आगि को रसोइया को दुख अधिकाई है ।

अधिकारी भये पै रहैगो बोझ भार सब
फौजदार भये होगी आफति महाई है।
चाहिए 'गुपाल' भाउ भगति भलाई याते
यंत रुजगारन में येतो कठिनाई है॥

ब्राह्मण के रुजगार ते बरज्यो तैंने मोहि।
क्षत्रिय के रुजगार के सुष्प सुनाऊँ तोहि॥

अथ साध प्रबंध महताई

पुरुष वाच

हाथ करामांति, औ' जमाति मानैं बात
दिनराति-प्रात जात जाको हरि चरचाइ में।
सबही सों हित, परमारथ निमित्त, भाव
भगति[1] में चित्त, औ ममित्त नहि काई में।
'सुकविगुपाल' भले माल पाय लाल होत
हाल ही निहाल है पुस्याल रहै याई में।
बढ़ै साधुताई नवै राजा राउ आई, याते
सबते सवाई है कमाई महंताई में॥

स्त्री वाच

बनि है नहीं महंत बनि तुम पै बड़ी महंति।
सांचो जोई महंत जो सब की करै महंति[2]॥

कवित्त

झूंठ-सांच बोलि, धन लेत सतो सेवग को,
बिना भक्ति-भाव, जमलोक गयें भूंजियै।

---

१ है० भक्तिहि २ है० में यह दोहा प्रथम है

मिलिकि, मिरासि, कुआ, बाग, औ' निवासन के
रगरे अनेकन के झगरे तें छूजियै।
'सुकविगुपाल' काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद
माया जाल परे न पसारि पाँव सूजियै।
जाइ के यकत,[3] टूक माँगि जीजै अत थे पे
सत की जमाति[4] को महंत नहिं हूजियै॥

महंत को चेला

चेला को बल होत पुनि, मेला चूतर होत।
मंदिर माँझ महंत को चेला होत उदोत॥

कवित्त

देषत ही गादी मुषत्यार होत मंदिर को,
गुरुन को माल सूब मिलत अकेला कों।
'सुकविगुपाल' सदाँ रजई करत, ओढ़ि
साल औ' दुसाला सो झुकाय कढे हेला कों।
कुलप्रति पाल भागि जगत विसाल वहो
देह होति लाल हाल हो मल चेला कों।
बनो रहै छैला मिलै भोजन सबेला याते
कह्यो जात सुष न महंतन के चेला कों।

दोहा

छोडि अकेला कुटम कौं रहै मोडन के माहि।
याते जाइ महंत को चेला हूजै नाहि॥

कवित्त

कुटम कबीले के न काम को रहत कछू,
होत निरमोही. सुष पावै न यकत कों।

---

३ है० इकत ४ है० जमाति

देखि-देखि जर्यो करें, भाई गुर भाई,
दुष दाई सब होत, मद करत अनंत को।
'सुकविगुपालजू' रजोगुनता आवै दिन-
टहल में जावें, भाव रहतु न संत को।
कवी न मिचत, भाव भगति न बंदि, अेते-
दुष होत अंत, चेला भअे तें महंत को॥

महंत की चेली

सोज अनेक प्रकार को भरि भरि दौंना वाति।
काहू संत महंत की तब चेली ह्वै जाति॥

कवित्त

साजि के सिंगार, रापें सब ही सौं सैंली कांम
बंद नांहि रहे जाकौं रूपा औ' अषेली कौ।
'सुकविगुपाल' सदां सांझ औ' सबेली सो
नवेली बनी रहै हार पहरि चमेली कौं।
जाय परजंक पें, निसंक भरि अंक, मजा
लीयौ करे मंदिर में करि-करि केली कौं।
रहै अलबेली, बांधि करिहा सूं थैली, याते
कह्यौ जात सुष न महतन की चेली कौ॥

रती भञ्च

सोरठा

तवयौ करत सब ताय, कांम तपति ह्वै कै सदां।
अंत जाइ पछिताय, चेली भअे महंत की॥

कवित्त

डारयौ करें लोग जापें टौंक औ' मजाक, नित
धरयौ करें नाम, जाकों ज तो लोग सैलो के।

'सुकविगुपाल' मिलि भाई गुर-भाई सदां,
हूवै कें दुपदाई प्रांन लेन है अकेली के।
करे गर्भपात, होति हत्या दिनर ति, सुष
सतत को जात, दूरि रहति हवेली के।
यहूं रेला-पेली दावि करिहा सूं पेली, याते
कहे जात सुष न महंतन की चेली के॥

महंतानी के सुष

सुष सांनी निसदिन, कहे भगतानी सब कोइ।
मुषिया साध महंत की, महतानि जब होइ॥

कवित्त

बनी ठनी रहै, मिसी काजर लगाइ फूली
रहै मन असे फुलवारी ज्यों बसंत की।
'सुकविगुपाल' कोकिला सो मिलि गामें रनु-
झनु झनकार करे भूषन अनंत को।
मेला औ' तमासे रास भजन समाज देषि
दरस परस पूजा करै साध संत की।
राजन की रानी, बनी रहै ठकुरानी सदां,
रहै सुषसांनी महंतानी है महंत की॥

स्त्री वाक्य

दोहा

भगतांनी निसदिन रहे भगतानी बनि सोइ।
महंत की महतांनि ते, भली कहूं नहि कोइ॥

कवित्त

जातिपांति कुटम के वांमकी रहै न, अंत
भोगति नरक हत्या करि जंति की।
दंपति कौं संग नहीं, सतति कौ मानें सुप,
कंपति रहति भय मानि साध संत कौ।
नांमनां न चलै पूरी कांमनां न होइ, वह
पाछै दुप पावै बूझ रहति न तंत की।
रहति यकंत, जाको कोऊ नहि गंत, दुप
पाचति अनत महंतांनी हूं महंत की॥

मुषिया

पुरुष वाच

दबै घरे जासौं सकल महमा मंदिर वोत।
सत महंतन कै सदां मुषिया मुषिया होत॥
पाय आप पोपै सबहि, मुषिया मुष सम जांनि।
दंतहु में लगि रहहिं तहँ, काढ़ि लहइ सुप आंनि॥

कवित्त

उत्तव रसोई मेला 'पचरु' पँचायति में,
लीयौ करें षबरि सुदीन दुषियांन की।
'सुकवि गुपाल' गादी बैठत महंत जब
पूछि कंठी बँधति महंत पुपियान की।
जाके आगे पेस होति, काहू की न वात, वंठ्यौ
मंदिर मे पचप कर्यौ करें रुपियान की।
दावि सुपियान, बैठि वीच मुषियान,
सब मांने मुषियांन, मुषियांन मुषियांन की॥

स्त्री वाच

दोहा

दीयो परत घरेन के सब बुरवाई ताइ ।
याते काहू मंद्र को मुखिया हूजे नाँहि ।।

कवित्त

पच औ'र पंचायति, रसोई अूत्सव माँझ
रिस रहै जाको ताकी बात नहि बूझिये ।
'सुकवि गुपाल' पनवारन के लैत देत,
साँझ लो सवारे ते भिपारिन सो जूझिये ।
अपने सयानन की रहै जब बात, तब
बुरो बनि सात औ' महतन ते जूझिये ।
गुरन के पाय दूरि ह्वै ते ज'य पूजियें, पै
भूलि काहू मदिर को मुखिया नहूजियें ।।

संत

पुरुप वाच

दोहा

राम नाम जपते रहे बैठत कवि आपीन ।
दे दरसन सब जगत के, पाप करत है छीन ।।

कवित्त

तीरथन माझ सदा विचर्यो करत, सदा
पूजापाठ भजन में ज न दिन जाई वेरै ।
अंबरा कुपीन छापे तिलक दै भाल, माल
कंठ में 'गुपाल' भलो करै सब काई को ।

राजु अरु रंकन में, दूसरो न भाव, निस-
किंचन बिरति, सील सहन सदाई की।
नम्रता सवाई, रहैं हँसत सदाई, यह
बड़ो सुषदाई सदाँ बानो साधुताई को॥

स्त्री वाच

दोहा

सत संगति निसदिन भगति राजा रंक समांन।
सहन सील संतोष करि धरै सदाँ हरि ध्यांन॥

कवित्त

मूड़ के मुड़ाअे, छापे तिलक लगायै, माला
कंठी लटकाये, झूंठो ठठको ठठन है।
पूजा के करायें, संष घंटा के बजायें, बहु
भगर दिषायें, कछु होत न पठन हैं।
तीरथ के न्हाअें, बग ध्यांन के लगायें ब्रत
नेम मन लाअें, सत संगति सठन हैं।
कीजें न हठन, मेरो सुनि के पठन, याते
'सुकवि गुपाल' हो तो साधुता कठिन हैं॥

पुन

पुरुस वाच

बुजुर्गिल मेल करैं पर बासन बास करे नहि वेक हिकाले।
देत हैं औरन को सदां मांन औ आप अमान रहै तजि मानें।
संतन की सतसंगति में 'श्रीगुपालजू' को निस बासर ध्यांनो।
देषत पाप हरे सब के जब में है सिरै यह साधु को बानों॥

स्त्री वाच

कवित्त

बने डोलें साइ, घर बीप बीप राखें भाड,
पात बनि माड, जैं लगैया तिलक माल के।
चोर ठग लपट, असाधुता करत हिय
दया नहिं राखें मरवैया बड़े गाल के।
काम-क्रोध-लोभ-माह पगेई रहत बड़े-
निपट हरामी जे जुरैया धन माल के।
झूंठो भेप घालि भाग्र भगति बिसालि, साध
ऐसे रहि गये हैं 'गुवाल' आज कालि के।

नागा

सब मिलि इक जगा रहैं, रखिकें बडी जमाति।
यतें सत महत में, नागन की बडी बात॥

कवित्त

राखें तोप साँनि चढ़ै नौबति निसान, लखिवे
को अभिमान, सजें अस्त्र सस्त्र हाथ हैं।
संग हय घोडे, रण मुरत न मोरे, औ-
मुरामें कडे तोडे, रहैं हृष्ट-पुष्ट गात हैं।
'सुकविगुवाल' पटब जो के दिपामें हाथ,
काहू न डरात जग जोरें बित जात है।
माल बडे पात, सग रावत जमाति, माते
जग में विख्यात बडी नागन की बात हैं।

स्त्री वाच

दोहा

हारत नहिं हथ्यार धरि, सूझत मारहिं धार ।
याते यह नागान को निराधार रुजिगार ॥

कवित्त

बांधत हथ्यार, जिनें सूझें मार धार, हरि
नाम उर धारि, करो सोचत न आगा कों ।
लूटत घसोटत रहत दिनराति सदां,
बसिके कुजागा'अे विगोवत विरागा को ।
'सुकविगुपाल' बांधे बारन की पागा अनु-
राग में नरक है लगायो करें लागा कों ।
काटें बन बागा, रहत न अेक जागा, याते
सबही में बाधा यह भेद बुरो नागा को ॥

"सिद्ध"

पुरुष वाच

है प्रसिद्ध जग सिद्ध बनि सिद्ध करें सब कांम ।
रिद्धि सिद्धि लाजूं धनी वृद्धि करत जस नांम ॥

कवित्त

भूत को भभूति, औ' विभूति देत भूतन कों,
बांझन कों पूत अवधूतन समिद्धं कों ।
चाहें न प्रसिद्धि भयो मौन वृत्ति गहै, हिय
सुद्ध रहै मेटि के विरुद्ध कांम क्रुद्ध कों ।
'सुकविगुपाल' छोडि अंबर दिगंबर-
पिगंबर है रहैं मेंटि संबर की वृद्धि को ।

छुवत न निद्धि, लागी रहै रिद्धि सिद्धि हरि—
मिलिबे की सिद्धि, होति सिद्ध ही में सिद्ध कौं ॥

स्त्री वाच

दोहा

चाहत करयो जु सिद्धई, होति सहज सो नाहि।
मन इंद्रिन को मारिबो, बड़ो कठिन जग माहिं ॥

कवित्त

मागे नहिं कहूं, नित जागें दिनराति, अनु-
रागें हरि ही में, जो मैं मेंटि काम क्रुद्ध कौ।
रापे नप-केस, भेस अजुजिल बनाइ ओ—
सुरेसहू के सामने न होइ पर सिद्धि कौं।
'सुकविगुपाल' ओढि अबर-दिगंबर—
दिगंबर है रहैं मेंडि संबर की बुद्धि कौ।
छवत न निद्धि, लागी रहैं रिद्धि सिद्धि हरि
मिलिवे की सिद्धि होति सिद्धई में सिद्ध कौं ॥[२]

---

१ है० हैबी
२ अंतिम दो पंक्तियाँ है० प्रति मे इस प्रकार हैं :
"बोलें नहीं मुष, नहीं डालें घर-घर कहूँ,
जोरों नहीं धन, हाथ आवें नवनिद्धि कौ।
सुकवि 'गुपाल' करें सुछमन बुद्धि जब
होइ कछु सिद्धि, काम सिद्धईमें सिद्ध कौ।"

फकीर

पुरुष वाच

सबते भलो फकीर को, या जग में रुजिगार।
लाल बन्यो नितप्रति रहै[१], घर-घर पूरल स्वाल॥

कवित्त

फाका को न फिकिरि, प्रवाह न किसी की करै,
घरैं तन गुद्दर गरयारन की चीरो का।
रवि ससि दीया, जाके अवनी बिछैया, फल
फूलन के भोजन औ[१] पंपावों नसीरो का।
नाता करि हांता, 'श्रीगुपाल' गुण गाता रहै
प्रेम मदमाता सबिसंतन की भीरो का।
बैठि छांह सीरो न करत दलगीरी, याते
सबमें अमीरी, यह कामहू[२] फकीरी का॥

स्त्री वाच

सोरठा

घरैं सदा तन चीर, भिक्षा को घर घर फिरैं
याते होइ फकीर[४], ह्वैयै नहीं विदेस कौं

कवित्त

सबते उदास, करैं जंगल में वास, नहि
राखै पर आस, राअु रंकहू[५] अमीरी कौं।
धन कौं न धरैं औ' पराए दुप परै, नित
इंद्री[१] वस करैं, त्यागि अरध सरोरी कौं।

त्यागि बकवाद, लो गुसैंया सो' अबाद, कछु
मागे न मुराद, नहिं स्वाद तातो-सीरी कौं।
काहू की न पीरी, घरे करे दलगीरी, याते
कहत 'गुपाल' काम कठिन फकीरी को ॥

तपेसुरी

पुरुष वाच

जपत पकरि मन बस करत, इंद्री रापत हाथ।
याते यह जग में बड़ो, तपेस्वरन को बात ॥

कवित्त

चले आमें लोग, लेके नाना भाति भोग, मिटि
जात सब सोग, रोग रहत न जी को है।
गाजे औ' चरस के लगायो करे न दम, गम
कछू न रहति रिद्धि बाटें सबही को है।
'सुकवि गुपाल' पूजा मानसी करत, दुख
सबको हरत, चित जानें आनसी को है।
सुबुध : करे जोकों, ध्यान रहे हरि ही कों, याते
सबही में नीको, यह काम तपसी को है ॥

स्त्री वाच

दोहा

कद-मूल-फल-फूल-दल, भोजन, वन में बास।
तप करिके तपसी सदा, सब सों रहे उदास ॥

---

१ है० रहे   २ है० पुन   ३ है० दरबार है
४ है० जैवें   ५ है० औ   ६ है० येंद्री

कवित्त

कूबरी कठारी कर, कौंघना ते कसें कटि,
राखें नप-केस, बैठे करिकें आधीन कों।
राख कौं लगावें तन धूनी ते जरावें, रवि
मांऊ द्रष्टि लावें, बहु हैं करि अधीन कों।
सुकवि 'गुपाल' जप-तप के करत, करें
काष्टा अनेक मूप देपें नहिं तीन कों।
देह रहै छीन, भेस बन्यो रहै दीन, याते
सब में मलीन, यह भेस तपसीन को ॥

विरक्त

पुरुष वाच

कुंज कुटी में बास बन, कर करवा कोपीन।
है विरक्त सब सौं सदा होत भगति में लीन ॥

कवित्त

कुंजन में बसि, कथा कीरतन सुनें, नित
हिय में ऊमंग, सतसंग साधु भक्त को।
संगृह कौं तजि कें, भजन ही को संगृह कें,
करवा-कुपीन कटि राषत हैं फक्त कों।
'सुकविगुपाल' हरि-लीला में मगन मन
मधुकर वृत्ति ही में होइ कें असक्त कों।
त्यागि करि जक्त, होत हरि अनुरक्त, याते
सबही में श्रक्त, यह कांम है विरक्त को ॥

स्त्री वाच

दोहा

करें कुटी में बास नित, करि हरि सौं अनुराग।
तब विरक्त के हृदय में, ऊपजें भगति विराग ॥

कवित्त

भक्त अनुरक्त, झूठो जानें सब जक्त, हरि
भक्तन के संग सदा रहै जत-मतमें ।
'सुकविगुपाल' सीष संतन सों लैकें, सबही
कों पीठि दैकें, मन राषत बिरति में ।
होइ न प्रकास, करें आस कौं बिनास, सदा
जाइ बास करें कुंज कुटी जो यकत में ।
तना झिरकत, घर घर रिरकत, ऐती
होति हरकति, बिरक्त के बनत में ॥

बिदेही

पुरुष वाच

देसन में बिचर्‌यौ करत, रहत अजूरी भेस ।
सदा बिदेही साध कौं पूजत सकल नरेस ॥

कवित्त

कर करामाति, सदा रहत जमातिन में,
रहैं दिनराति भक्ति भाव में मिदेई है ।
'सुकविगुपाल' कंठ बटुआ कों धारें आप
तरें, औरें तारें सुद्द करें निज देही हैं ।
जात जित सिद्धि चली आमें रिद्धि सिद्धि ठौर
ठौर ह्वैं प्रसिद्धि सुद्ध रहत बिदेही हैं ।
देवें न बिदेही आप रहत बिदेही सदा
करनी बिदेही की सो करत बिदेही हैं ॥

दोहा

निरमोही मन सों रहैं नगन इकंत निवास ।
बिदेहीन कों होत है पैतिक कष्ट प्रकास ॥

कवित्त

देसन के मांझ सदा फिरनो परत, चोरें
रहनो परत, सीत घाम बरसाति में ।
'सुकबिगुपाल' सती सेवग बिगरि, करनौ
परत कड़ाको, रिद्धि आवे बिन हात में।
धारने परत जटा, कोंधना, कठारो, धूनी
तपनी परति चीमटा ले संगसात में ।
फटिजात गात, नंगे रहे दिनराति, दुप
होत है विष्यात, जे विदेही की जमाति में ।।

जोगी

पुरुष वाच

तेज प्रचंड रहे सदा नेन वरत दोऊ लाल ।
धारत जोगीराज तन बाघंबर मृगछाल ।।

कवित्त

माल-मुद्रा-मेपला-बिभूति-सेली-श्रृंगी हाथ
रहैं, संग सदां अवधूतन समाज हैं।
'सुकवि गुपालजू' निरंजन कौ ध्यान हिय
सांधत समाज हरि मिलन के काज हैं।
होत जग ख्यात सो दिखाय करामात जात
बस करि लेत बड़े राजा महाराज है।
फलत अवाज, जिनें आवति अगाज, याते
राजन के राज, महाराज जोगी राज है।।

स्त्री वाच

सोरठा

जटिल अमंगल बेस, वास करन वन में सदा ।
यातें कठिन बिसेस, काम सुजोगी-राज को ।

कवित्त

जटिल अमंगल, मसानन में बसें पच
तपा तें तपत, सुध जानत न भोग कौ।
करत रहत तन काष्टा अनेक यम—
नियम के साधे मुष देषत न लोग कौ।
काँनन फरामें, जोगी जगम कहावें, या में
'सुकविगुपाल' घ्यांन घरत अभोग कौ।
काहू को न सोग, रहे तिय तें वियोग, फेरू
लागे रहें रोग, सदां साघत में जोग कौ।।

परमहंस

पुरुष वाच्य

भोजन कर न करें कबी, अजुजिल जैसें हंस।
हरि के अंस प्रसंस जग, परमहंस अवतंस।।

कवित्त

तन, मन, पीन, कटि, राषे न कुपीन, होइ
हरि लव-लीन, साधुता के अवतंस हैं।
बसन दिसा है करें घ्यान को नसा है, मुष
मौन है न चाहें है, गिरि कदरा के मंस हैं।
'सुकविगुपाल' क्यों जाचना न करें, सबही
की व्याधि हरें, जे बढ़ावत न वंस हैं।
काहू की न संध, रहै अजुजिल ज्यौं हंस, याते
अंस हरि ही को, जे प्रसंस परमहंस हैं।।

स्त्री वाच्य

दोहा

सीत घांम जल संग है, वसे गुफा के माँहि।
परमहंस कौ साघनौं, धर्म सहज है नाँहि।।

कवित्त

करनो परत गिरि कंदरा में वास, मन
मारनो परत, मुष मौनता के लेंवे में।
सीत, घाम, जल, सदां सहनौं परत, बहु–
आवति है लाज सो नगन वेस कैंवे में।
'सुकविगुपाल' भूप जाति रहे जब पर–
हाथ ते न स्वाद आवै भोजन के पैंवे में।
पर हाथ जेंवे, नही होत हैं कमेंवे, बड़े
होत दुष पैंवे, या परमहंस हैंवे में॥

मौंड़ा

पुरुष वाच

[1]गांम गांम में मांगि के, मगन रहत दिनराति।
याते या संसार में, मौंडन की बड़ी बात॥

कवित्त

अस्तल में वास, माई गाई रापें पाय नाम
पावत हैं दास, पूजा करें सांझ मोरा कौ।
फरि कें बहु रंगति दूनी ब्याज पात लेत
चूनन के चुगल झुकाइ[2] कड़े तोड़ा कौं।
कुल प्रतिपाल सदां पेत विरिहान किसान[3]
नते मिलिकि लैंकें रापें घोरी-घोरा कौं।
करें छोरी छोरा, 'औ' कमात होड़ी, होड़ा, याते
बड़ो धन जोड़ा रुजिगार यह मौंड़ा कौ।

---

१ है० घंटा जांति बजाइ के करत भजन दिन राति।
याते या संसार मे मोंडन की भली जाति॥
मु० घंटा संप बजाइ के मगन रहत दिन रात।
२ है० दिवाई ३ है० किमासन
है० याते यह कलिकाल में मोंडन की बुरी जाति।
मु० जाते या कलिकाल मे मोंडन की नहि बात।

स्त्री वाच

दोहा

मोड़ा-मोड़ी करत धन, जोड़ा-जोड़ी जात ।
धन जेठी मोंड़ान कौ, मोंड़ा-मोंड़ी पात[1] ॥

कवित्त

करनी परति जिमीदार की पवासी, गरें
परि जाति जाके विसै बासना की फाँसी है ।
'सुकविगुपाल' आए-गये साध संगति में
गारी दयी करें जो पवावें न मवासी है ।
दाम ले अुधार, पाय जाँय नर-नारि, तब
जिय में विचारि, हारि आवति अुदासी है ।
कवौ न पलासी, जिय जायो करे सासी, साध
मोगत चुरासी, सदाँ अस्तल कौ बासी है ॥

संजोगी

पुरुष वाच

सोग नही किहू बात कौ, निसदिन मोगत भोग ।
साध सँजोग सँजोग में, घर बसि साधत जोग ॥

कवित्त

ब्याह गौने चाले कौं, न परचनें परें दाम,
लाम नित नईन सों मोगयो करे मोगी कौं ।
गोत और नात न मिलांमनें परत नाम,
धरिवे कौ डर न रहत, काहू लोगी कौ ।

1. है० याने यह कलिकाल में मोड़न की बुरी जानि ।
मु० जाते या कलिकाल में मोड़न की नहिं बात ।

'सुकविगुपाल' बड़े होत परवीन, रूप
निकरे नवीन सदौं, नैनन के रोगी कौं।
कबी न बियोगी, सदा रहत निसोगी, याते
सब में सजोगी को सुकरम संजोगी को ॥

स्त्री वाच

दोहरा

बिषय लीन है होत हैं, दीन ते सदौं कुदीन ।
संजोगिन की बात यह, याते जग में हींन ॥

कवित्त

बवें पाप बीज, सो गृहस्त ते गलीज रहे,
भोगिवे कौं तरयो करें, भांमिनि अभोगी कौं।
भगति गमाय वर्ण-संकट कहाय कें
भयंकर से ह्वं कें कांम करत कुयोगी को।
'सुकवि गुपाल' धन जोरत ही जात दिन
माया-जाल परि निंदा सह्यो करें लोभी कौं।
नरक को भोगी, देह रहै न निरोगी, याते
सब में सजोगी, यह करम संजोगी को ॥

जती

पुरुषवाच

दोहा

कहत मठरती गजपती, जाहर जग में जोति।
पुलत रती बाढ़ति मती, जती जाय जब होत ॥

कवित्त

पोमें जल छानि, रापैं जेवण के प्राण, पूछि
पात पान पौन, सुद्ध : रापत मती कौं है।
रहत न दीन, जंत्र मंत्र में प्रवीन जादू
करि कै नवीन, वस्तु छावत वतीको है।
'सुकवि गुपालजू' कहावें मठपती, जैन
मत अघपती हैं कै जागत गती कौं हैं।
साधि के व्रतीकौं, बस करै गट्टाती कौं, नाते
सव में रती को, भलौ करम जती को है।

इस्ती वाच *

दोहा

सुमृत सास्त्र आगम निगम, निंदत है सब ताय।
याते साधि सु जैन मत, जती न हूजे जाय॥

कवित्त

मढ़ें रहैं बाँधें, क्षार मरे रहें कांधें, सदी
जैन मत साधैं, जे अराधे लै पतीन कौं।
नंद नहीं पावामें, मिष्ट भूतिया कहामें
परलोक दुष पामें, सुष पामें न गतीन कौं।
बेद औ पुरान निंद्य, कहत निदांन, जे
अधर्म कर्म ठानि धर्म टारत सतीन कौं।
देवें सुष तीन, पात निस मैं रतो न, यौं
'गुपालजू' मलीन हौन धरम जतीन कौं॥

स्थानपत

पुरुष वाच

सोरठा

सुमरि इष्ट को जाप करहु स्थानपत जाइकें[१]
बस करि के नरनारि, धन उचित करिहो बहुत ॥

कवित्त

नर को कहा है, भूत प्रेत कों करत बस,
अंजन को पून देत, भभूति लगत में ।
देह सिर आवत[*] में, गावत बजावत
पिलावत, दिखावत, चरित्र अजगति में ।
'सुकविगोपाल[२]' घर घर में वरत्ति बात
सब कों ठगत, जोति बाती के जगत में ।
होइ आगु–भगति, कहावत[३] भगत, याते
जगति है जोति, स्थानपत की जगत में ॥

स्त्री वाच

सोरठा

याते सोचि निदान, कबहुँ न कीजे स्थानपत ।
होइ जीव कों ज्यांन, गति न लहै परलोक में ॥[४]

---

१. है० जायकें २ है० कहत गुपाल ३. है० कहवत
४. इसकी जगह पर यह सोरठा है

मेरी कह्यो प्रमानि, कबहुँ न कीजे स्थानपत ।
होइ जीय को ज्यांन सुभ गति कबहुँ न पावही ॥"

कवित्त

करत रपत जाके अति ही कमप गात
होइ जीव[1]– घात, घात चलत फिरत में।
समति न पावै, 'औ' मलीनता बढ वै, सब
निरफल जावै, कर्म यष्ट[2]के कुरत में।
'सुकविगुपाल' मंत्र जाप के जरत, ध्यान
धरत हरत प्रीत जातहु [3]सुकति में।
भिष्ट होति मति, नहि पव सुभ गति पत
बडो है अगति, या करत स्थानरत में।

सरभंगी

पुरुष वाच

जंत्र मत्र में निपुन अति, सिद्धि होत सब मत्र
याते यह सरभग मत, सबते भलो सुतत्र

कवित्त

डिम्म नहीं रावें ब्रह्म सब्ही म भापे, सुध
काहू सौं न मांगै काम करत उमगी कौं।
काहु में 'गुपाल' कबो भेद नहि माने, मन
जानें हरि अगं, सदा आह्वान र भगी कौं।
आरत में प्यार, सौनें ठौर ठौर में झारि, ठढे
रहे नर अनादि, दुवार लै के चोज चगी कौं।
देह रावें नगी अवधूतन के सगी, यातें
सत में भदगो यह, मत सरभगी कौ।

---

१ हे० जीव २ हे० दृष्ट ३ हे० है।

स्त्री वाच

न्हाइ नहि धोवें भली बुरी ठौर सोमें, चोटी
सिर पें ते पोंमें अनविन्न रापें अंगी कों।
करि मल मूत्र कों, न धोवें हाथ-गोइ हाथ,
पोपटीन रापें दूजो गावत न सगी कों।
'मुकविगुपाल' रहें सबतें उदास भवप
अभक्षन पात, सब काया राषि नंगी कों।
होन बहु रगी बात भारत दुरगी, याते
भंगी ते गयो है यह मत सरभंगी को।

गुरदक्षा

पुरुष वाच

चेला चांटी करत में पावत सुख सरीर।
नवत सब जग आइ[१]के मटे भव की भीर॥

कवित्त

राम नाम कहें, माला मुद्रा धरे रहें, कर्म
भ्रुक्त[२]के गहें, लोग मांगत परक्षा कों।
चरन घुवावें सीस, सब कों पवावें, गुर
ईस्वर कहावें, नवशावें, करें रक्षा कों।
बढत 'गुपाल' भाव भगति विसाल होत
हाल ही निहाल प्रतिपाल बाल बच्छा कों।
मांनें जग सिक्षा तामें पूरें सब यक्षा[३]याते,
सबही में[४]अच्छा रुजिगार गुरदक्षा कों॥

सोरठा

लोजे सिक्षा मांनि, अरु इच्छा[५]होइ मुईकरो॥
मेरो कह्यो प्रमानि गुरदक्षा नहिं दीजिये॥

---

१. है० आय २. है० मुक्त ३. है० दूजा ४. है० ५. है० इक्षा

कवित्त

देस-परदेस अुपदेसियै न धन काज
धरिकैं सुबेस, बिन भवित रंक राऊ कौं।
लागै अपराध जो असाधुते न साधु होइ
गर-भव वारिध अगाध परै ताऊ कौ।
'सुक वगुपाल'[1] बहु सिष्य ज' करत पाप
सबते लगत आइ आधो आध जाऊ कौं।
भिक्षा मांगि जोजें, और इक्षा हो सु कीजें, मेरी
शिक्षा मानि लीजें, दीजे दक्षा नहि काऊ कौं॥
होत भवपार बिहार छुटजात हृदि
रूप दरसन तिहि बेन मन दजे ते।
'सुकविगुपाल' जग में, सुजन प्रभाव, भाव
भक्ति बढिजाति, ज्ञान होत पद नजें ते।
हिय होत अमल विमल मत नैन होत
होत चित चैन भैन रहैं कोऊ विये ते।
नयौ होत जनम करम सुभ होत कर
येते सुष होत गुर मनमुष भजे ते॥
तन मन धन सब अर्पनो परत, कर्म
करने परत अनुवत्त गुर रक्षा के।
पूजा पाठ भजन ध्यान संध्यादिक करि
मांनने परत सब जैते बैन शिक्षा के।
चलनो परत निज संप्रदा के अनुसार
सारहि वौं नहि भाव भगति परक्षा के।
रोकि पक्षा पक्षा, करनी परै जे व रक्षा अैसी
करनी परति बात लोयं गुरदक्षा के॥

"इतिश्री दंपतिवाक्य विलास नाम काव्ये साप्रदाय वर्णनं नाम त्रयोदश विलास।"

---

१. बहुत गुपाल

चतुर्दश विलास

ब्राह्मन

पुरुष बाच

सौच, सांति, संतोष, दम, दया, सुघाई ज्ञान ।
हरि ततपर, तप, सत्य, मम द्वज लच्छन अ जानि ।।

जगत अपावन, तप करन, धर्म रच्छ्यै काज ।
दान पात्र भगवान निज पूज्य करे द्वजराज ।।

सबही के पूज्य, औ' पवित्र सब जीवन में,
कोमल हृदय जे बनावे धर्म-काज हैं ।
होतहैं पवित्र घर तिन के सुचित्त हो सौं,
तिनकी कृपा सौं मिलें बहु सुखसाज हैं ।
जिनही के तप तेज जगत को रच्छा होति
तिनके चरन धारे हरि महाराज हैं ।
कहत 'गुवाल' भगवान को सरूप याते
राजन के राज महाराज द्वजराज हैं ।।

सोरठा

जप तप व्रत मन देइ, हरि संतोष रोष न करैं ।
तब दुज है जस लेइ, है वैदक करि शास्त्र ।।

कवित्त

दिन आपे रहे भोजन की बात बने
निवपक निपारो, आस करे सब जन की

'सुकविगुपाल' सो सरारि देत हाल, जाति
कौन देवि सकैं पोटो रहत सुजन को ।
रहत न तेज पति गृहन को कोडी पात
पात न कमाई कवो अपने भुजन की ।
धर्म के सुजन को विसरत तुरत कम
अजन की याते यह जाति है द्विजन की ।।

क्षत्रिय

पुरुस वाच

कवित्त

छिमा, तेज, सूरता, प्रमाद, दान, धीर्य, धारि
रहत प्रसन्न, मन जीउत पवित्र है ।
तिनही के हाथ रन सत्रुन के जीतन को
बाधुधो है विधाता नें विजे को जीउन्त्र है ।
सुहृद 'गुपाल' गऊ साधु द्विज दीनन की
हैके हितकारी रच्छा करै सरबत्र है ।
बाधे अस्त्र सस्त्र, भारी सब में नखत्र, याते
सुजस को सोहे सिर छत्रिन के छत्र है ।।

स्त्री वाच

दोहा

मिले रहे मद्र सों सदा जियको कसक न जाय ।
याते यह छत्रीन की, जाति बडी दुपदाय ।।

कवित्त

घरट में छोड स्वामि नरक में पेरै, तिय
सोंवे न सरोर बडो लगतु अधम है ।

कायर भजे पै जार-जातिक कहावै धन—
धरा-राज-काज मन पट रन गर्म है ।
'सुकविगुपाल' नौन करिवे हलाल काज,
बेटा बाप लरें रन छाँड़ि निज सर्म है ।
बेधै पर मर्म, फटै तिल तिल चर्म, याते
सब में कठिन, यह छत्रिन को धर्म है ।।

वैश्य

पुरुष वाच

दोहा

धन संचै करिकै चहुल रापन बीच बजार ।
याते यह सबमें भलो वैश्यन को रुजिगार ।।

कवित्त

संमत-कुसमत में राखि लेत लाज, राजु
राजन की काटै यद, करत निसांको है ।
याही ते जगत प्रंस, मेवा को कहत दाप,
याते सदां होत प्रतिपाल दुनियां को है ।
'सुकविगुपाल' काम परे सबही को सदां,
घर भरयो रहत, कुबेर को सो ताको है ।
बनिज को पाको, धन जोरत सदां कौं, काज
करनी कौं बांको, सो बनायो बनिया को है ।।

स्त्री वाच

दोहा

पहल नरम, पाछे नरम, दाम परे करपात ।
याते यह बनियान की, सिंह तुल्य है जाति ।।

कवित्त

जानिकें निसक, चाहें सोई धमकाइ लेइ,
मानत न कोई आनि-कानि नेंक ताकी है।
साहू बने रहैं, अरु चोरी को करत काम
दिनही में काट्यो करें गाँठि दुनियाँ की है।
'सुकवि गुपाल' वहु जानते कौं मारें माल,
काम भये पाछें, फिरि जाति आँखि जाकी है।
लार गिरें याकी, जाति सिडिबिडि न ताको
डरपोकनी सदा की, यह जाति बनियाँ की है।

सूद्र

पुरुषवाच्य

प्यारे चारिहू बरन के सबन देत सुप गात।
याते यह सब जाति में भलो सूद्र की जाति॥

कवित्त

भले बुरे करम में निंदतु न कोई, बहु
करनौं परें न जप तप व्रत गात कौ।
हुरमति, इज्जति सुचाहियें न बड़ी, बड़ो
दीसे कारपानों ताको चोरी सौ बिसाति कौं।
तिनसौं 'गुपाल' काम निकरें अनेक, रहैं
सबही के प्यारे, सो बनाय निज बात कौं।
सब काम हात करें, भोजन न पात, याते
सुप सरसात, बहु सूद्रन को जाति को।

स्त्रीवाच

दोहा

दीन रहत भूपन मरत, होत भोगते हीन।
सूद्र लोग दुप मीनि के, रहत पाप में लीन॥

कवित्त

चारिहू बरन को सुननों परत, सब
कहे नीच जाति, हथ्या भयो करें हात हैं।
जिनको 'गुपाल' अधिकार नहीं वेदन को
तापै मथ छेदन की बनति न बात है।
बुरे दिन जात, भवप अभक्षहि पात औ'
कुकरम को कमात इतराइ हाल जात हैं।
मरत न सूद्र, घेरें रहत दलिद्र, यामें
सबही में छुद्र, यह सूद्रन की जाति है॥

पुरुषवाच

गृहस्थाश्रम

चारि बरन आश्रमन में है सबको सिर मोर।
गृहस्थाश्रम के सद्रस, कोउ न जगत में और॥

चारिहू बरन, चारि आश्रम को मूल यही
याही ते सकल अबादानी[1] होति बस्ती है।
बंस बढ़वारि, व्याह-सादी-भोग-राग-सुप
है रहत यामें पुन्य-दान अबरदस्ती है।

---

१. मु० अबोदानी

'सुकविगुपाल' याते जगत के जीवें जीव,
सदां सब ही को भयो करै परवस्ती है ।
तनकी दुरस्ती रहे, धनकी न सुस्ती, तो पै
प्रथिदो के मांझ सरवोपर गृहस्वी है ॥

स्त्रीवाच

दोहा

कुटम सुसील सपूत सत, अनगण धन प्रभु देइ ।
तब गृहस्त हैं कैं कछु या जग में जस लेइ[1] ॥

कवित्त

रातिदिनां यामें कैई परच लगेई रहै,
आयो-गयो, ब्याह गौनों, गमी ओ' बधाई हैं ।
विषय के भोग कर्म जोग के वियोग रोग[2]
जिकिरि फिकिरि मारैं आपनी पराई हैं ।
'सुकविगुपाल' भाव भजन बनै न यामें,
फँस्यो रहै सदां मोहजाल में महाई है ।
करत कमाई, तऊ रहै हाइहाई, याते
सबते सवाई दुपदाई गृहस्थाई है ॥

ब्रह्मचारी

हरि-गुर-अग्निह पूजिकैं, साध सदां त्रकाल ।
ब्रह्मचर्य व्रत धारि गुर ग्रहैं बसैं सब काल ॥

---

१ है० मु० करनी कर तब घरि कछू तब गृहस्त सुष लेइ ।
२. है० मु० योग

कवित्त

पूजत रहत हरि-गुर-अगनि सूरज कौं,
साधिकैं अकाल कर्म करौ सुभकारी कौ।
मन बस करि, पढ़ि, वेदन कौ भेद जानें
गुरकुल बसें तजें मादक अहारी कौं।
'सुकविगुपाल' होई चतुर सुसील अद्-
-मान प्रयोजन मात्र करें विवहारी कौं।
सत्य उरधारी, ब्रह्मचर्ज व्रतकारी, भारी
करनी परति क्रिया बालब्रह्मचारी कौं॥

स्त्रीवाच

दोहा

देह हटैं, सुष सब मिटैं, घटैं कुटम सौं हेत।
कष्टा बहु करनी परत ब्रह्मचर्ज व्रत लेत॥

कवित्त

सांझ औ' सवेरें भिक्षा लांमनी परति, तजि-
भूषन, अरगजादि पट सुषकारी कौं।
जटा, कुस, मेषला, कमंडल, अजिन डंड,
नव-गुन धारि मुष देषनौं न नारी कौ।
हूकरि दयाल, इंद्री-जित मित मुष गुर-
अगुया पाइ षानौं परें भोजन की थारी कौं।
वेद मत-धारी, ब्रह्मचर्ज लेती बारी, भारी
करनी परति क्रिया, बाल ब्रह्मचारी कौं॥

बानिप्रस्थ

गहि बिसवास निवास बन सदा सुसाधत स्वास ।
बानप्रस्थ गिरहस्त ते ढ़ढत बहुत सुपरासि ।

कवित्त

मुनिन के सम तेज आवत है गुण, पुनि
रिपिन के लोक भोग भोगै निज दास के ।
'सुकविगुपाल' निरविघ्न बनवास बसि
जानै निज रूप रहै आसरे न आस के ।
जप, तप, होंम, के अदवैत मत साधन मैं
व्यापत न दुप अहमपता के फाँस के ।
ज्ञान-परगास होत, ब्रह्म पास वास, सुप
कहे नहि जात बानप्रस्थ सुप-रासि के ॥

दोहा

आय जबै बारह बरप, करै सुबन मैं बास ।
ब्रह्मचर्ज ते होइ जब बानप्रस्थ परगास ॥

कवित्त

धारे जटा रोम, तन डड ओ' कमंडल कौं,
बकुल अजिन अग्नि रापै परगासी कौं ।
पवन'र धूप, जल, सीत, सदा सहै, अनसन
ब्रन गृहै, रापै काहू की न त्रासी कौं ।
'सुकविगुपाल' अन्न काचौ, रवि पाचौ, पात
काल पाय पके बिन जोते भूमि बासी कौं ।
रहि उपवासी, धान रापै नहि पासी, धर्म
सबते कठिन बानप्रस्थ सुपरासी कौ ॥

सन्यास

निरारंभ, निरदंभ नित, आत्मराम सुख रासि ।
चारि बरन, आश्रमन में सरवोपर संन्यास ।।

कवित्त

आतमा को दरसी है, निजगति जानें बंध-
मोषहू में मानें, राषै काहू को न आस कौं ।
सब सौं सुहृद, सदां समचित सांति गहि,
होत महामना परब्रह्म रति तास कौं ।
तजिकैं सकल पक्षपात बकवाद है
नरायण-परायन सुकर्म करैं दास को
कहत'गुपाल' बरनाश्रम के बीच याते,
सबमें घरम सरवोपर संन्यास को

इस्त्रीवाच

मानपमान समान नित, ग्राम ग्राम में बास ।
बडो कठिन तातें कछु, धर्म सधत संन्यास ।।

कवित्त

करनौं परत ग्रांम ग्रांमन में बास, गूंगो
बाबरो सो ह्वैकें, कर्म करयो करै हास के ।
देह कौं न ढांकै, तजो बस्तु कौं न राषै, ध्रुव
मरन कौं मांगै, अभिलाषै न प्रकास कौं ।
सुकविगुपाल' कवो सिष्य कौं न करै, सदां
विचरै अकेले तजि बासना की फांस कौं ।
गहि बिसवास, सोवै जागै न निवास, याते
सब में कठिन धर्म्म साधन सन्यास कौं ।।

*इतिश्री दंपतिवाक्य विलास नाम काव्ये वर्ण । श्रम प्रबंध वर्णनं नाम चतुरदसो अध्याय "१४"

पंचदशो विलास

सहर प्रबंध*

पुरुष वाच

संच कहै सबसों[1] सदा सकी हुँ[2] सबही की अंच।
[3]जानत नहि परपंच कौं, जिनते कहियत पंच ॥

कवित्त

रंक करें राजा, अरु राजा को करत रंक,
दूषन को मेटि देत, आवति न अंच है।
काहू सों न सकें, चाहै सोई करि सकें, करि
दया उपकार, यहैं पापन तें बंच है।
जिनकौं[4] 'गुपाल' सब[5] सौंपि देत न्याय,[6] तिन
मांझ आप बोलै परमेसुरहू संच है।
आवति न लंच,[7] रूप करत न रंच, नहि
जानें परपंच, जिनें[8] कहियत पच है ॥

---

* मुद्रित प्रति में शीर्षक इस प्रकार है: अथ दानिय हजिगार, शहर प्रबन्ध, संनादि सरदारी।

1. है० मुयते, मु० मुयसो 2. मु० सबन 3. है० मेटतु जो परपच को सोई साचो पच 4 है० सुरवि 5. है०, मु०, राश, राजा 6. है० न्याव, मु० न्याऊ, 7. मु० अच 8. मु० जर 9. है० मु० तिन्हें

स्त्री वाच

दोहा

[१]पंचायति में पंच जो, करै न साँचो न्याइ।
[२]ताकी पीढ़ी सातहू, सदा नरक में जाइ॥

कवित्त

डोलनो परत, झूठ[३] बोलनो परत, रूम
पक्ष न करत जाको,[४] सोऊ देत गारी हैं।
'सुकवि गुपाल' धर्म-संकट परत न्याव
मामल के छानत में लगत अवारी हैं।
अरनौं परत, कछु हाथ न परत, भली
बुरी के करत यामें पाप होत जारी[५] हैं।
[६]चिंता रहै भारी, चारी करै नर नारी, याते
पंच कौं पँचाइति में होत दुख भारी हैं॥

सिरदारी

पुरुष वाच

सुघराई सरसाति, सब सौं सरस सनेह नित।
स्यौं सोभा सुष सात, सिरदारी कृत सहज में॥

कवित्त

जाकी बूझ होति सदा राज दरबार, गुन-
मंडन के मुख ते बड़ाई गाइयति है।

---

१. है० जो कहूँ साचो पंच है, करै नहीं कहूँ न्याय २. है० जाकी
३. हैं० सांच ४. हैं० ताको तेई ५. है० पाप लागत न वारो है।
६. है० लोग करै प्यारी।

बाँधि के मृजाद तोल आपनी जनाइ,[1] पर
फारज बनाइ, अरि छातो दाहियति है।
'सुकविगुपाल' बड़े मामले सुधारि करि,
जाको[2] घर बंठही कमाई पाइयति है।
होत मुषत्यारी जाहि चाहे नर नारी बड़े
भागिन ते भारी सिरदारी पाइयत है॥

स्त्री वाच

सोरठा

सिर प्यारी परिजाति, सिरदारी कृत सहज में।
बिना तोल दरि जाति, याते कीजो समझि कै॥

कवित्त

पाति दिन यामें पाजे जात हैं भिषारी लोग,
सोगुनो भरम धरें आमदि की बारी में।
घेरे रहैं लोग, कैई लगे रहैं रोग, आजें
जाजें राठ पाजें बात रहैं मुषत्यारी में।
'सुकवि गुपालजू' पधाजे काज जाय सापि
भरनी परति झूठी साँची[3] दरबारी में।
मार परें भारी, बुरो कहैं नर नारी, बड़ो
भारी होति प्यारी, या करत सिरदारी में॥

थोकदारी

पुरुष वाच

थोते देतह लेत में, रंगि दमरुनी बार।
होत आपने थोक में, थोकदार सिरदार॥

---

१. ह० जनाय २. ह० ताको ३. ह० साँची

कवित्त

जाको थोकदारी घर बैठें सदाँ आयो करै,
पायो करै हुक्म सदाँ सबवे अगार कौं।
'सुकवि गुपाल' सादो, गमी, औ' बधाइन में
जाके हाथ सब काम होत बिवहार को।
मार्‌यो करैं माल सदाँ न्योते औ पनीतन
कौं, पावै मुख्त्यार दैनी दवपना की बार कौं।
दबैं नरनारि रूप राखैं सिरदार याते
बड़ो सुपकार रुजिगार थोकदार को॥

स्त्री वाच

दोहा

गारी दीयो करत सब, लै-लै जाको नाम।
याते बड़ो निकाम यह, थोक-दार को काम॥

कवित्त

थात बहु बंस जाते जात निरवंस लोग
कर्‌यो करै पुत्र बैर करि करि मारी को।
माल लाइ कहूँ को पचाय जाइ जब तब,
मूंड फूट्यो करै, दैनी दवपना की वारी कौं।
करि करि चारी, गारी तारी दै दै लोग, अहं—
'कारी जे 'गुपाल' सदाँ दीयो करैं गारो कौं।
देवै धरकारी, कोस्यो करै नरनारी, याते
बड़ी दुखकारी, यह काम थोकदारी को॥

मुहल्लेदार

पुरुस वाच

रुप रापें नरनारि सब, घर घर होइ मुख्यार।
हल्लो भल्लो लगतु है, होत मुहल्लेदार॥

कवित्त

मानें सब कोइ, जो कहै सो काम होइ जाय,
सब ते पहले बात बूझें जाइ जाइ कें।
झगरेअरु' झाटे, बट-चुट लैन-दैन जाके,
हाथन है निपटें अनेक काम आइ कें।
'सुकवि गुपाल' कंई मिल्कि-मकानन के
मांमिल करत, घूस पच्चर कों पाइ कें।
सुष सरसाइ, सिरदार गन्यौ जाइ, होइ
दरजा सिवाय, या मुहल्लेदारी पाइकें॥

मुहल्लेदार

स्त्री वाच

रापे जब नरनारि की, घरघर की सुंम्मार।
तबै मुहल्लेदार की, बूझ होति दरबार॥

कवित्त

रापनो परत घर घर को हवाल यादि,
आय रहै दोस भलो बुरो मैं मइल्ले कों।
इंड चोरीदारी, दैनी परति जुगाहि, लोग
अंचें-अंचें डोलें, काम परें रल्ले-झल्ले कों।

'सुकवि गुपालजू' फरेब की वहै जो बात
अल्ले-मल्ले लोग आय पकरत बल्ले कों।
पायो करै पल्ले, लागे रहैं रल्ले टल्ले, याते
हूजै न मुहल्लेदार, भूलि कें महल्ले को॥

जुमेदार

पुरुष वाच

बढ़ै हुकम हासिल सदां, सबही मों होइ हेत।
काहू जिल्ले की जबैं, जुम्मेदारी लेत॥

कवित्त

बूझ होति भारी जिमीदारी सिरदारी बीच,
होत दरबारी, थांम परैं नर-नारी कों।
'सुकविगुपालजू' हुकम रहै, बस्ती बीच
करि परदस्ती, सदां रापत हुस्यारी कों।
चुंगी औ' करनां घर बैठे पूस आयो करै,
पायो करै हक्क मो निकारि चोरीचारी कौं।
बैठि कै सवारी, करै देसकी सैंमारी, याते
सबही में भारी, यह कांम जुमेदारी को॥

स्त्री वाच

दोहा

नितप्रति हित करि लाइ चित, जो कोई देइ हजार।
काहू जिल्ले को तऊ न, हूजैं जुम्मेदार॥

कवित्त

डर रह्यो करत डकैत ठग चोरन को,
साँस-साँस लेत, कढि सकत न हल्ले कौ।
चोरी की 'गुपालजू' लगाइ कै सुलाक लाइ
दैनों परै मुद्दा आप जाय दूरि पल्ले को।
सूतरी गले पै लाइ रस्सा दैनो परै, लै—
परै जो झूंठ कोऊ तब पायौ करै टल्ले को।
सूधि जात वल्ले, कोऊ कहतु न भल्ले, याते
भूलि कै न हूजै जुमेदार काहू जिल्ले को॥

जाति चौधर

पुरुष वाच्य

चौधर के रुजिगार को बड़ो जगत में बात।
जाति-पाँति उपकार को, होतिहु ताके हात॥

कवित्त

ब्याहु-बधाई[1] हू[1] मांदी गमी मुखिया सबही के बन्यो रहै न्यारो।
काज सँमारतु है सबके सदा थोरे-घने में करै निसतारो।
डंडे धरै तकसीर परै कोऊ देउ' रु लेत न रोकन हारो।
राइ 'गुपालजू' पंचन में नित चौधर को दरजा बड़ो भारो।

---

१. है- औ'

स्त्री वाच

सोरठा

पंचन में दरि जाति, गारी देत रुपात पें।
रुवयो रहै दिनराति, चोरी कों मरमत सबै॥

कवित्त

पकति जुवांन, वात सुनत न कांन, वेसरम
है निदांन हौंनौं परत लरत में।
कहत 'गुपाल' देत नेगिन[1] की लाग जाकी
उतरति पाग गारी पातु हैं मुफति में।
घूस उघरत, मर्म चोरी को धरत, पाप
करत डरत[2] दीण दुपी सौं मरत[3] में।
भूपन मरत, नहीं दौलति जुरति, वुरवाई
सिर परति या चौधर करत में॥

चबूतरा की चौधर

पुरुष वाच

सब बजार में[4] हुकम करि, लौंऊं धरहिं कमाइ।
चौधर पाग वंधाइ कें, चौधर करहुं वजाइ॥

कवित्त

मानें आंनि-रानि छे रकांनि पें हुकम सो
बिपारिन ते मिलि माल मारें आठो जांम में।
लें करि 'गुपाल' सिरोपाव सिरकार ते चबू-
तरा की लाग वंठ्यो लोयो करें धाम में।

---

१. है० नेगिन २ है० गदत ३. है० अरत ४. है० पें

बाँधि तोल हाँसिल, करीना बनोबस्त, बहु
जिनसि के निरधनि, करयो करै[1] गाम में ।
होत परकाम, फैलै देसन में नाम, होत
लेते सुप माम सदा चौपर के काम में ॥

स्त्री वाच

दोहा

राजकाज के काम की, चौपर कीजै नाँहि ।
मार-धार मारी रहै, बड़ो दुख्य या माँहि ॥

कवित्त

गारी दयो करै चपरासी मजकूरी लोग,
सहयो करै[2] राजदरबारन की घाम कौं ।
आइ कै जगामैं, अधराति पिछराति लोग,
फौज के परे पै जब भरत[3] गुदाम कौं ।
'सुकविगुपाल' बुरा रहतु बजार को औ'
चुंगी औ' करीना जाको बंद करै गाम कौ ।
पावै न अराम, विच्यो डोलै आठो जाम, याते
भूलिकै न कीजै गाम[4] चौपर के काम को ॥

गाम चौपर

पुरुष वाच

जोरि-जोरि धन मो घरत, जग में होत उदोत ।
सब कोऊ जाको मो धरत, जो घर चौपर होत ॥

---

१. है० गान २. है० निउ ३. है० काम पेट दे ४. है० कबू

कवित्त

चली आमें जाकौं, गांम गांमन ते भेंट, घूंस–
पच्चर अनेक रिपि दबैं ताकौ ताक ते।
'सुकवि गुपाल' नेंक दवत न कहौ ज्वाब,
साल के परे पै, ज्वाब देतु है अराक तें।
गांम-गांम, घर-घर, देस में करै सो होइ,
मामले बनाइ बड़ी रहत मजाक ते।
मानें जाकी धाक, सब मानें यस्तपाक, दब्यौ
करत फजाक, देषि चौधर की धाक ते॥

स्त्री वाच

दोहा

काहू के नीचें जबै, गाम बिसौ दबि जाय।
जब चौधर के कांमु में बड़ौ दुष्य होइ आइ॥

कवित्त

आठ पाइ यामें नित नौ की रहै भूष, सूकि
जाइ गूदा-गात, दिन राति रहै भौ घरी।
'सुकवि गुपाल' घूस-पच्चर मैं लेत, लोग
सापत अकस, पाप होत या मैं सौ घरी।
कारषाने बिगरे पै, बूझत न कोऊ तब,
करज के नांते जाय मिलत न जौ घरी।
दाही औ' घरी सौं न बरौ सो मिल सकै यातें,
भूलि कैं न हूजै गांम-गांमन कौ चौधरी॥

ठाकुर

पुरुष वाच

रन में सकै न काहू मूपो देपि सकै, झूंठ
मुप सों वकै न तकै पर धन माल कौं।
सांच मुप वोलै, नही घर-घर डोलै, सदां
एकसम जानै, व्रद्ध. तरुन रु वाल कौं।
घूस नहीं पांइ, झूठो करै नहिं न्याय, देपि
कुटमें सिहाय, कवों मारै-नहिं गाल कौं।
हिय मे दयाल, सदां रहत पुस्याल, सोइ
जानियै 'गुपाल' बडो ठाकुर सुचाल को ।।

स्त्री वाच

दोह

चुगल-चोर घुसिहा बड़े, तकै परायो माल।
कपटी लपटा लपटो, ठाकुर हैं अजकालि ।।

कवित्त

ऐंठि बांधें पाग, कुआ बागन में अंड़ें, रापैं
पीठि पाछैं मूंठि वंद, चूतर पैं ढाल के।
चूहरी-चमारि, नटी-नाइनि सौं नेह करि,
जाके द्वार-द्वार न्याय करत विहाल के।
लंवे कौं यक्टुठे न्यारे देवे कौं रहत जग-
जूरे, दुरे घोंस औ' वुलाए दरबार के।
मूंठो मंप, घालि वर्क परधन-माल, सब
ऐसे रहे ठाकुर 'गुपाल' आजुकालि के ।।

जिमींदार

पुरुष वाच

सोरठा

जग में जागति जोति, करत जिमींदारी सदा।
बूझ राज में होति, गाम चलैं सब हुकम में॥

कवित्त

धारि कें हथ्यार धारि आरि को निहारि मार
मारत में हारि नहीं मोने छिप स्यार तें।
पारें परिवार, घरवार कों समारि, निराधार
को अधार नहि टूटें हितू यार तें।
कहत 'गुपाल' लोग भुमिया-भुवार, सिर-धारन
हजारन में रहै सदां प्यार तें।
करै षेत वयार, सबही के मुषत्यार, देषि—
दबैं दरबार, जिमींदार की बहार तें॥

स्त्री वाच

दोहा

करत जिमींदारी सदा, अे दुष होत सरीर
सदां राजदरबार की, परें आय कें भीर॥

कवित्त

यामें धोंस तलब की रहति अुपाधि, सेना
पररें अगारी, बाकी रहै षेत वयारी में।

भेंट दैनी परति, यजारदार आमिल कौं,
लगें पलजाम, कहूँ होत घोरी पारी में।
'सुकविगुपाल' बड़ी चाहियें हुस्यारी जो
मदारी के करेते माल मिलें मुदस्यारो में।
होति मार-मारो, बिसी दवत में मारी, बड़ो
मारी होइ ख्वारी, या करत जिमींदारी में

यजारदारी

पुरुष वाच

गाम यजारो[1] लेत में, जग में जागति जोति।
भिक्षुक दीन दुपीन की, परवस्ती बहु होति॥

कवित्त

जामें नित भेंट, पलें जीवन के पेट, सदी
बन्यो रहै सेठ, मजा मारत तिजारे में।
बार न लगति होति आंमदि हजारन की,
करि के बहार, छक्यो रहत तिजारे में।
रापत 'गुपाल' हुकुम हासिल हमेस जाको,
ताको दरबार बन्यो रहै गुलजारे में।
देव हर हारे, बात मानें बूढे बारे, याते
भारे सुप होत लेत गाम के यजारे में।

स्त्री वाच

दोहा

देर न लागे परखते, सुरक्षत लागे बार।
याते भूलि न[2] हूजियै, गाम यजारेदार॥

---

१. हे० यजोर   २. हे० कबहुँ न

कवित्त

दाम घटे गामें, मारे मरें, जिमीदारी के पेचन ते तन छीजे ।
खेती में होत 'गुपाल' कछू न, किसान को जो परवस्ती न कीजे ।
हाल ही होत हवाल वुरो, जो जवाल परे पै जमा नहि दीजे ।
भूखही जीजे, कि लै विष पीजे, पै भूलि के गाम यजारें न लीजे ।

ग्राम बैनामा

पुरुष वाच

त्योर होत हैं राजसी, राजसीन सों हेत ।
जिमींदार दबते रहैं, गांम बिनामा लेत ।

कवित्त

रैयति से रहैं सब जाके जिमींदार लोग,
दबे सब जाति सिरकार रहैं हेत में ।
'सुकविगुपाल' घर धूरी रहै हाथ सब,
जाही को सु होत ऋण-तरु त्रितो पेत में ।
ऐठिबो करत, जमा पैठिबो करति, औ'-
सदां कों चल्यो जात, नहीं रुकै लेत-देत में ।
पावत अरामां, रापें राजसी सुसामां, भोग
भोग्यो करे पामां, सो विनामां-गामां लेत में ॥

स्त्री वाच

दोह

दोसै महुं नहि बाम को, नाम होत बदनाम ।
पावें नहीं अराम कहुं, बैनामा लै गांम को ॥

कवित्त

पहले पदचने हुआरन परत पवे,
पाछें सिरकार में भरतु रहै दामों कौं।
घूस दे अनेकन कौं, नामा को लिपावै पत्र,
तऊ डर है जिमींदारन की धामों कौं।
'सुकवि गुपाल' लोग रापने अनेक परं
होत जब काम छोड़ि वैठं निज धामों को।
जात जिय जामा, राज फिरै ढेल डामा होत
लीजियं न नामा याते गामों के बिनामा कौं॥

किसान[1]

पुरुष वाच

गाम बिनामा[2] छोडि कं, पेती करिहौं धाम।
सब जग जाके करे तें, पान पियत निज धाम॥

कवित्त

सातहू बिरह दह्यौ दूध के रहत सुप
लीयो करं स्वाद, औ रसाल नई नई को।
नितप्रति रहै सातों पौनि पं हुकम,–
सिरकार में रहत भलो ठसवा ठकुरई को।
जोवें जग जाते, जीव जनु कौ कनूका मिलें,
पिलें भली बात, यह काम मरदई को।
कहत 'गुपाल' बीस नहूँ की कमाई, याते
सबही में भली यह पंसी रिसनई को॥

---

१. है० पेती   २. है० मजारो

स्त्री वाच

दोहा

षेती करत किसांन के मो ते दुष सुनि लेउ ।
हर लेकें पिय षेत में, भूलि पांव मति देउ ॥

कवित्त

कारो होति देह, सहै सीत घांम मेह, नित
रहै लेह देह, सुष नही पांन-षान कौं ।
बरहे में बास, राषै बोहरे की आस, ईति
भीति ते उदास, गिर मानत इमांन कौ ।
राजै देत पोता, हर जोता, सुष सोता, नांहि
पोता दिन योंही, रहै लेस न अयांन कौ ।
देह में न मांस, रहै हाथ में न दांम, याते
कहत 'गुपाल' कांम कठिन किसान कौ ॥

स्यारी

पुरुस वाच

चारो घनो होइ, बड़ो भारो सुष रहै, सब
कोई करि लेइ, यामें कांम नहीं प्यारी कौं ।
थोरो परैं बीज, थोरि लागति, थोरे दिन में-
(बहुत) कमाय लाय डारें घर-बारी कौं ।
'सुकवि गुपाल' हाल लाल परिजात, कछु
लालो नहिं रहै, कुआ पल्लर की स्यारी कौ ।
बनि जाय न्यारी, चैयै बरहा न बषारी, यातें
बड़ो सुपकारी, सदां षेत यह स्यारी कौं ॥

स्त्री वाच

परें मड़सारन, गमारन को पानो, होत
गुरः सन रावत ही हारि जात जेती हैं।
'सुकवि गुपाल' पूरो किसानं न बाजे, कछू
गरज न सरें, फोजू करो क्यों न बेती हैं।
चारि मास रहे, असमान ही कों मुप क्यें,
मुप नही ऊँचें नीचें पटपर रेती हैं।
पसम कि सेती, होति घने मेह हेती, बहु
प्रांणन कों लेती, यह स्यारी को सुपेती हैं॥

उनहारी

पुरुष वाच

ब्योसत कमेरे, घर हेरे जे सबेरे ही तें,
पेरे बीच, साझो पट्टो मिले विसेदारी कों।
सुकवि 'गुपालजू' अपज बड़ो होति, सेक-
-रन मन जिति आय परें घरबारी को।
बड़त 'गुपाल' दोमु सावि बीच सावि बरं-
-दाजो बड़ो दीसें कुआ पत्थर की त्यारी को।
बोहरे मियारी, रुप रावें जिमीदारी, कवो
आवति न हारो, अनहारी बीच हारो कों॥

इस्त्री वाच

हारी छकि हारिन को कारी परे देह, थकि
जाय बैठ भारी, बाकी रहै न अनारी में।

पात जिय गोत, घना मानत न ओत सोत
देषत ही जात दिनराति अुआ क्यारी में।
चाहियै 'गुपाल' बीच पादि बड़ी मारी, ओरो–
ढोरो डर त्यारी साष्षी रहैं आमें ब्वारी में।
बनति न न्यारी, बड़ी चाहियै तयारी, याते
स्यारी ते सरस दुप होत अुनहारी मैं ॥

पटवारी

पुरुष वाच

पेतन कौं अब नाहिंहैं, करि जरीब की सार।
लिषैं पढ़ें, कागद करें, बनि 'गुपाल' पटवारि ॥[1]

कवित्त

लिष्यो जाको मांनें, सिरकारहू प्रमांनें, मन
मांनें जोई ठांनें, जानें पेच जिमीदारी को।
जेवरी परत, दांम पीता के भरत, जमा
घटि बढ़ि करत, करत मुषत्यारी कौं।
राज के फिरत, काज केते के सरत, जाते
जाके हाथ हैं कै होत कांम विसेदारी को।
राज दरबारो, बूझ सब ते अगारी, यों
'गुपाल कवि' मारी याते पेशी पटवारी कौं ॥

---

१. है० में सोरठा: 'बनि गुपाल पटवारि, पेतन को अब नाहिंहैं।
करि जरीब की सार, लिषें पढ़ें कागद करें॥''
इस कवि की यह प्रकृति मिलती है कि दोहे को चाहे जब सोरठे में परिवर्तित कर देता है।

स्त्री वाच

सोरठा

और बरहु हजिगार, पटवारी नहिं हूजियै।
याके दुष्प विचारि, कहति श्रवन सुनि लीजिए ॥

सवैया

बाकी औ कर्ज बतावत में, सो किसान को रिसहू ते मुप सूजै।
हाथु ही हाथु में टूटत पाथु, सी[१] सेना सदा सिरकार को मूजै।
"राय गुपालजू" पेतो में जात जरीब के कागद ते मन घूजै।
पूजै जु धाइ के, धाम में सूजै, पै गौमन को पटवारी न हूजै ॥

कवित्त[१]

जाकी अेक बात साची होनि न हजारन में,
सबै घमकाय गरे काट्यो करैं काम में।
"सुकवि गुपाल" घूस-पच्चर के लेवे काज,
करिके फरेबी, फूट रापैं धाम धाम में।
हाकिम सों मिलि, करि अुटकी गरीबन की
चोटी-परो कहि, पामी पारि देत काम में।
होत बदनाम, सब कहत हराम, चांदि
पिटै आठो जाम, पटवारिन की गाम में ॥

कानूगोह

पुरुष वाच

काम परै परगनन[२] को, बूझ राज में होइ।
याते कानूगोह की, बड़ो मजाफा होइ[४] ॥

१ है० टूटेंगे पाय औ' २ है० म नहीं है ३ है० सब गाम
४ है० दरजा भारी जोइ

कवित्त

जेते पातसाही परमाने रहैं जाके हाथ,
जानतु हैं बात, परगनन की गोई कों ।
सबते पहल,[1] जाके दसषत होत, राजकाज
में "गुपाल"[2] आइ पूछत हैं ओई कों ।
बूदक रु जीनां, चुंगी राज के करीनां, चंदा
पूछें ही पै मिलत फिरस्त मांझ कोई कों ।
लिख्यो[3] सही होइ, भेट देत सब कोई, याते
सबमें बड़ोई, यह कांम[4] कांनूगोही कों ॥

स्त्री वाच

गाम गाम परगनन कों लिषत बड़ो दुष होइ ।
याते कबंहु न जाय[5] कैं हूजै कांनूगोह ॥

कवित्त

बापने परत रुजनामे-परमाने हाथ,
करनी परनि गांम गामन की जोह कों ।
देनो परे डंड, इचें-पिचें फंलें भंड, जब राज
के फिरे[6] पै जो बताबत न टोह कों ।
काहू को "गुपाल" जो करो नां कब्ज करें तो पै
कृपन कगाल कोस्यो करें करि कोह कों ।
होत बड़ो तोह लोग कर्‌यो करें द्रोह याते
बड़ो निरमोह रुजगार कानूगोह कों ॥

---

१ है० सुकवि गुपाल २. है० के फिरत ३. है० लिपी
४. है० रुजगार ५ है० मूलि ६. है० बदलै

जामिनी

पुरुष वाच

जिमीदार ते लै जमा करु जामिनी जाइ।
दाम दिवाऊँ राज के, लाऊँ हाल[1] कमाइ ॥

कवित्त

मामले बनाइ कैं, हजारन रुपैया लेत,
लेत अरु देत, हेत रहै सदा ही को है।
बूझ करैं राज-दरबार-तहसीलदार
जिनसि के काटत में दीसौ बरै घी को है।
"सुकविगुपाल" साहूकारे में बढति साषि,
माषि के जुबान सौदा करै सबही को है।
गाढो होत होको, काम करत सब ही,[2] को, सदा
यातें यह नीको रुजिगार जामिनी को है॥

स्त्री वाच

सोरठा

घर बैठो सुष पाइ, अरु मन आवै जो करौ।
कीजे कबहुँ न जाइ, जिमीदार की जामिनी ॥

कवित्त

राज दरबार इत भ्रत में घिरयोई डोलै
लालो करि नाहक पराय काज अरियें।

---

१ है० बहुत २. है० सही

टूटत में बाकी जो असामी भजि जाय कहूँ
दात रहै जब तब आप दाम भरियै ।
देत नहीं किस्त तौ सिकिस्त लगि किस्त बात
सुकविगुपालजू फरेबिन ते डरियै ।
भूपैं दिन भरियै कि खाय विस मरियै
गामन के लोगन की जामिनी न करियै[1] ॥

तहसीलदारी

पुरुष वाच

छाँड़ि[2] जामिनी करहुँगो, गामन की तहसील ।
धन कमाइ कैं लाइहु,[3] तनक करूँ नहिं ढील ॥

कवित्त

गाँम पै हुक्म, परगने पै दवाब रहै,
चाब रहै हिय, मजा लेत सब ठारी मैं[4] ।
हाली औ[5] मवालिन में, होत[6] ज्वाब साली, हवि
साली नफा लालिन में, तेल बात सारी में ।
'सुकवि गुपाल' चली आमें सहुगाति-भेट,
सेठ बनि सदां, माल मारै मुपत्यारी[1] में
मोटो रहै भारी, कबहूँ न होति हारी, दव्यौ
करै जिमेदारी, सदां तहसीलदारी में ॥

---

१. हैं० अँगरेजी लोगन की नाजरी न कीजियै ।
वृंदावन प्रति में यह पाठ भ्रमवश हो गया है ।
ऊपर का पाठ हैं० और व्र० दोनों में है ।
२. हैं० छोडि ३. हैं० मुप पाइहौं
४. हैं० नरनारी ५. हैं० तें करि ६. हैं० मजेदारी

स्त्रीवाच

"कविगुपाल" जो आपनों राख्यो चाहत सील ।
तौ कबहूं नहिं कीजियें, गांमन की तहसील ॥

कवित्त

त्यागि निज गांम, घिर्‌यौ रहै आठौ जांम, होइ
नांम बदनांम, कांम जोम जरबील कौ ।
करने परत हैं कसाई कैसे कर्म, जब
राज बदले पैं, जो बतावत न टोहू कौं[१] ।
मार[२] वध[३] डंड यै लिलाम करि लेत यातें
कहत "गुपाल" यह काम न असील कौ ।
चाहत जो सील, माफ कीजै तकसील, तौपै
भूलिहू के कीजियें न कांम तहसील कौ ॥

सहना

पुरुषवाच

गई-गाम में जाइ के तब कोऊ सहना होत ।
पेत मांझ पिलिहार ते, तब यतनें सुपहोत ॥[४]

कवित्त

पेत औ' कियार जे निगाह में रहत, जिमी-
दारन ते माल मारयौ करैं दिन-रैंना कौं[५] ।

---

१. है० राज के पद्में देन कोई करै डोल को ।
२. है० मारि ३. है० मु० बांधि ४. है० मु०
"जर्मदार के गाम को जो कोई सैंना होइ ।
पेत प्यार पिछियार तो पें गुर विरमै मोइ ॥"
मुद्रित में तुक होत । होन की है ।
५. है० मु० को काम नित परै लेना देना को ।

'सुकविगुपाल' चांक रासि पें लगाइ पिति–
हारन ते कांम सदां परें लेंना-देंना कौ[1]।
बने[2] रहें मीर, नित पात[3] पांड-पीरि, सदां
पौढ़ि कें अथाइन में, लीयौ करें चेंना कौं।
देयें मजा नेंना, कमी कछू की रहै ना, याते
बड़ौ सुप देंना रुजिगार यह सेंना कौ।

रत्नीवाच

दोहा

घर छोड़ें गामन अरें, परें पराअे आन।
याते भूलि न हूजियें, सेंना पेत किसान ॥

कवित्त

मारनौ परतु हैं गमारन ते[4] मूंड पिति
हार जिमींदारन ते नित तन लूजियें।
चांकहु लगायें, चित चिंता ही में रहें,[5] रासि
घटि बढ़ि जायतौ पकरि करि मूजियें।
'सुकविगुपाल' याके पहरे कौं लेत देत
पायबे कौं भोजन, बपत पें न पूजियें।
कबहौ[6] न चेंना, दुप देप्यौ करें नेंन[7] याते
मेरे मांनि वेंन,[8] कहू सेंनां नहिं हूजियें।

---

१. है० मु० माल यारारौ करें दिन रेंना कौ।
२. है० बन्यौ ३. है० पाद
४. है० मु० जमींदारन सौं सदां मुड, और पितियारन ते मित तन घूजिए।
५. है० बहूं 'कहो'। इस शब्द से अर्थ अधिक स्पष्ट होता है।
६. है० मु० पसहूं ७. है० मु० नेंना ८. है० मु० बेंना

ग्वार

पुरुस वाच

जबहू दिवारी के दिना, गोधन पूजा होइ ।
ग्वारन को आदर करें, घर-घर में सबकोइ[1] ।।

कवित्त

नित गोरज[2] गग में न्हात रहें परघ्यो करें पोंहें हजारन कौं ।
बहु पाल रहें सदा दूध दही, बन को रहि लेत बहारन कौं[3] ।
मिलि हेरी दै हुरी कौं गायो करे, जब जात है गोधन चारन कौं ।
यहू 'राय गुपालजू' याते भलो सब में रुजिगार गुआरन को ।।

स्त्री वाच

दोहा

अेक न विद्या आवही, कोरो रहत गमार ।
याते जाय कवो[4] नही हूजें कबहो ग्वार ।।

कवित्त

झार झूकटन ही में डोलत रहत, ऊजरे–
पं[5] पेत बचार, लगें मारि ग्वारिया को है[6] ।
घर छोड़ि बरहे को वेवनों परत, परे
रापनी सम्हार आई गई को सुवाको[7] है ।

---

१ मु० ग्वारन को भारी सबै घर घर आदर होई । २ मु० पोरस
३. मुद्रित प्रतिमें प्रथम और द्वितीय चरणों के उत्तरार्द्धों में परस्पर विपर्यय-विनिमय है । ४. मु० कहूँ
५. मु० 'उमेरेपं' है । पर इसका कोई अर्थ नहीं है ।
६. मु० गारी भार याको है । ७. मु० सुवाहो है ।

'सुकविगुपालजू' कहावत गमार ग्वार,
बिनटत पोहे[1] दाम दैने परें ताको[2] हैं।

वुरो चहुँधा को, तन कारो होत ताको,[3] याते
सब में लराको, यह कांय ग्वारिया को हैं॥

[4]"इति श्री दंपतिवाक्य विलास नाम काव्ये सहर प्रबंध
वर्णन पंच दशो अध्याय"१५'

---

१. पो हो   २. जाको (मु०)   ३. जाको मु०)
४. मु० में -'अति श्री दंपति वाक्य विलास नाम काव्ये प्रवीजराय आत्मज गुपालकविराय विरचत शहर प्रबंध वर्णन नाम नवमो विलास : ।'

षष्ठदस विलास

राज प्रबन्ध[1]

पातसाही[2] : पुरुषवाच

पुरुष वाच

राजा-राव-राना कर जोरे आगे ठाडे रहैं,
निज्यौ जात अंत में मुलक सब ताई कौ।
'सुकविगुपाल' चारि सूबन पै हुकम ताकौ,
जाके रहै डर सो जेजिया न खाई कौ।
वजीर नवावन के रापने परत रुप,
मुलक अबाद करनो परें सबताई कौ।
होत बातसाही, परिजान बातसाही, याते,
बडा आतसाही, यह काम पातसाही कौ॥

स्त्री वाच

करने परत मनसूबे सब सूदन के,
औरन परत करिबे कौ चैयै जाई कौ।
'सुकविगुपाल' मुसलमानी ही में मिलें थे,
हिंदमानी माझ मिलें कबहीं न काई कौ।
वजीर, नवावन, के रापने परत रुप,
मुलक अबाद करनो परें सब ताई कौ।
होत बातसाही परिजान बातसाही याते,
बडा आतसाही यह काम पातसाही कौ॥

---

१. मु० अथ राज प्रबन्ध सभादि राज रजिवार।
२. यह दो विषय है० मु० में नहीं है।

नवाबी[1] : पुरुष वाच

जेते पातसाही नृप भोगनि करैं नितप्रति,
जाके हाथ रहैं पर्व सूबे के हिसाब कौं।
'सुकविगुपाल' हजूर मे करें सो होइ,
दुनदै न कोऊ सब धारें-धूरि पाव कौं।
करै सर मुलक, अनेक दाम वावन सौं,
बावन सौं न्याय निवरावै राय राव कौं।
दबै उमराव, देस मानत दबाव, याते
होत बड़ौ रुवाब पातसाही में नवाब कौं॥

स्त्रीवाच

पावै छुटकारी न निसाक औं हिसावन ते,
जोवन ही जात नृप नाव उमराव कौं।
करि न सकत कोई बात गौरि साव मस्त
होइ जात हाल यामें पी करि सराव कौं।
'सुकविगुपाल' घने चैपै दाव-घात तब,
पावत है चाह डर रहै परवाव कौं।
परत दबाव जब, रहत न आव, बड़े,
होनह खराब काम करि कै नवाब कौं॥

राजसुख[2] : पुरुष वाच

ईस्वर कर कहाव हौ, होइ[3] सब को सिरमौर।
रजई के सम सुख नहीं तीनि लोक[4] में और।

१. यह विषय है. मु. मे नहीं है।

२ मु. राजा व्यपार ३. मु.हैं ४. है. मु. कोउ जगत

कवित्त

परम प्रताप परसिद्धि देस देसन में,
प्रजा प्रतिपाल पुन्य पन प्रगटाइ कें।
साधि सत्य-सील, कोस देस कों वढाय सत्रु—
सासन कों[1] नासन, कें अुग्रता दिपाइ नें।
'सुकविगुपाल' दान दुनन[2] दिवाय, सर—
मुलक वराइ वुध वलहि वढाइ नें।
आम में हजूर, सुप रहै भरिपूर, बडो[4],
आवत सहूर, नृप पदवी कों पाइ कें॥

स्त्रीवाच

सोरठा

देषत सुप अधिकाइ, पुन सुप दुष ही रूप है।
तीनि लोक में नाँहि, नरपति से से दुष नहूँ॥

कवित्त

सभासद जुत, पावें नरक में वास, काम—
—क्रोध-लोभ मोह-मद-मत्सर वढाओे में।
बिद्दति अनेक, ज्ञान-ध्यांन न विवेक, बने
भारी भय हौन, जामैं[5] रिपि के दवाओे में।
'सुकविगुपाल' जावें[6] धन के गृहें भों पाप—
लागत सराप, आप प्रजा के दुषपाओे[7] में।
तीनि लोक पायें तृष्णा घटै न घटाअ, याते
सबनें सवाओे दुष राज-पद पाओे में॥

---

१ है० कें २ है० दीनता ३ है० मु० दीनन ४ है० मु० नहू।
५ है साम ६ है मु नार ७ है दवाय ८ है मु आये

दीमानी : पुरुषवाच

द्विज दीनन कौ दान, गुनमानन कौं सनमान।
मान होत सब देस में, भऐं दीस[1] दीमान ॥

कवित्त

राज कौ पईसा, जमा होत सब जाके आय,
ताके हाथ परच रहत राजा रानी कौं।
जाकी[2] बांधी-डोरी कौ न कोई रोकि सकै, ताकी
महर भऐ पै काम होतु है जिहांन कौ।
'सुकविगुपाल' न्याव मामले अनेक करि,
लीयौ करै भुप भलै सेई रजधांनी कौं।
होत बड़ौ दांनी, सदा करै[3] अबादानी, बात,
देसन में जांनी, जाति करत दिमांनी कौं ॥

स्त्रीवाच

दोहा

न्याव मामले परत में, अरु हिसाब की पोत।
रहै बड़ौ डर रान कौ, देस दिमांनी होत ॥

---

१. है० देस २. ताकौ ३ है. राखै

राजचाकरी[१]

पुरुषवाच

मंत्र वकील षजानची दाना दक्ष दिमान।
अरु वक्मी रुजगार करि, लाऊं धन ऽ प्रमान ॥

मंत्री कों सदाई सब मान्यो करें मंत्र औ
बकीनई में राजा रूप राप करें जनें है।
दानपुन्य होत दाना दक्ष ही के हाथ औ
षजानची के हाथ धन सदा रहै तेन है।
चोवदारी माहि परे सतटी को काम थाइ
है कै हलकार महें मागी मौज लेते है।
सुकवि गुरानजू कहे न जात येते इनि
चाकरी में चाकर को होत सुष तेते हैं॥

स्त्रीवाच

राज्यधान खानो परे, करत चाकरी माहि।
मो ते सुनि रुजगार ये, इतने कीजें नाहि॥

मंत्रई में साची कहें मालिक रिसैहे, औ
वकीलई में सदा परदेस दुष रहिहो।
दानादक्ष ह्वेहो नहि दै हो ताके बुरे ह्वेहो
दौलनि संभारत षजानची ह्वे बहिहो।
चोवदार माहि ठाडे रहत है दरबार द्वार,
बनि हलकार सदा आगे जाम वहिहो।
'सुकविगुपाल' मेरी यात को न ताहिहो,
तो सबसे बहुत दुष चाकरी में नहिहो॥

---

१ यह प्रसग 'ब' और 'भ' म नहीं है।

कवित्त

करत भलाई दुखदाई आइ रहै हाथ,
भले बुरे मांमले के बीच के परत में।
चुगल-चवाइन सौं, कांप्यौ करै देह, डांडि
सीधी जात नेक में फरेबी निकरत मैं।
'मुकविगुपाल' राज-काज कौ रहत[1] बोझ,
मार्‌यौ जात राजन के क्रोध के धरत मैं।
पाप की निसांनी होत मांनी अभिमांनी, मति,
रहति दिमानी, या दिमांनी के करत मैं॥

कामदारी[2] : पुरुष उवाच

केतिक केतिक नरन के, कढ्यौ करत वर कांम।
कामदार के कांम ते, होत जगत में नांम॥

कवित्त

होति मुपत्यारी, अधिकारी सब बातन की,
जाके हाथ है कै होत कांम दरबारी कौं।
'मुकविगुपाल' निज अकलि के जोर जोर,
सोर करि करि माल मारे नरनारी कौं।
सज कौं बनाय, दरवार के निकट रहै,
आपने अगारी नहीं गनै धनधारी कौं।
दबै कारबारी, बात थामैं सिरकारी, याते,
सबही में भारी यह कांम कांमदारी कौं।

---

१. बोझ राज को रहत।

२. यह विषय मु. में नहीं है।

स्त्रीउवाच

दोहा

जाही में भरमार नित सब कामन की होइ।
भलो कहै सबही नहीं कामदार की काइ॥

कवित्त

मिलै न भलाई, कहै हराम खसाई, मुख,
छाइ जाइ स्याही, नोरी निकरै हराम की।
'सुकविगुपाल' नेकी करै हानि बदी, जावौं,
बांधन प्रबध पत अडि जाति धाम की।
रहत सदाही घर बाहर कौं बुरो, फली—
भूत नहीं होत बात कौडी जो हराम की।
छुटै धन धाम, कबी पावै न अराम, यात,
भूलि कै न कीजै कामदारी काहू काम की॥

मुसद्दी : पुरुष उवाच

बैठूं गहो दारि कै, बनूं मुसद्दी जाइ।
चौहद्दी की ऐंचि धन लाऊं हाल कमाइ॥

लापन का लेखो, होत रहै सदा जाते हाल,
सब ही को काम परै भली अरु बदरी को।
राजु-उमराउ कौ' सिपाह की परच जाकै,
लिखै ही पै पटन, गरीब औ उमदरी की।
'सुकविगुपाल' भने मारगो करै माल, काट—
फांस करि करि लेत, देत हारि कदरी को।
बैठूं दाबि रद्दी, दाबो करत चट्टद्दी, याते
सब में निरद्दी यह काम है मुसद्दी को॥

---

१ है दरबार

स्त्री उवाच

दोहा

लिषत पढ़त, कागद करत, नेंक न नेंइ[१] अराम ।
याते यह सव में बुरौ, मुसद्दीन कौं कांम ।।

कवित्त

मारि जात दाम, ताकौ होत नहिं कांम, तेई,
कहि कें हराम, लोग करयौ करें वद्दी कौं ।
कागद सौ कागद, मुकालवे करे पें, निकरें,
जौ हर्मजद्दी होइ दफतर रद्दी कौं ।
'सुकविगुपाल' यामें भली बुरी कहें वात,
रद्दी परिजात बुरौ होनु है चहूद्दी, कौं ।
छाई रहे मद्दी, होइ वडौ वेदरद्दी, याते,
भूलि कें न कीजे काम कवही मुसद्दी कौ ।।

चेला राजा : पुरुष उवाच

वने रहै राउ-उमराउ ते सरस, वाला
सव पें रहत' डर रहत न, मेला कौं ।
होतुह 'गुपाल' सव वात कौं अगेला कड़े,
तोड़न पहरि धारें समजा' रु सेला कौं ।
रहै अलवेला, मेला ठेला में नवेला, नृप
सव ते सवेला, प्यारा रायत अगेला कौं ।
सदां सव वेला निसदिन रहै मेला, याते
वड़ौ होत हेला, महाराजन के चेला कौं ।।

---

१. रहत

स्त्री उवाच

कवित्त

जाति निज जाति, निज धरम न रहै हाथ,
डरै दिन-राति नित लाग्यौ रहै पैला कौं।
भले बुरे कर्म, कर करने परत कर्णी
परति गुलामी लोग बुरौ कहैं वेला कौं।

हाजरा-हजूर होंनौ परत हमेस, तऊ,
रहन 'गुपाल' डर हुक्म के हेला कौं,
रहै न अलबेला, सब दीयौ करै ठेला, बडे
रहैं अुरझेला राजु राजन के चेला ॥

वतिसलक्षण[1]

सज्जन सुरत्ती, सत्य सुचि सदा तुष्ट सील,
प्राक्रमी प्रवीन अुपकारी परदार हांनि।
आतम अभ्यासी, वुद्धि- वन, विद्यावत, वादी,
विचक्षन, गुण, रूप, देत मद जाकौं मांनि।

इंद्रीजित अलप अहारी रति- नींद हती,
मात पितु गुरु देव भक्त है धनमांन।
दाता, धरमी, कुलीन, सत्रुजित, रण, पीन,
लक्षन 'गुपाल' ये मनुस्य के वतीस जांनि ॥

अवगुन[2]

कलही, हठधनी, मोढो, कुटिल, कुमति मति,
कायर, कुरूप कुवचन के कुरस कौ।

१-२ ये प्रसंग हैं मु म न ग ं है।

वाँमन, वधिर, क्षुब्ध, बावरो,' रु बालक
अभागो, अध, अधम, अनायन् मुरस कौं।
पंगु, गंगु, ज्वारी, विभचारी, चोर नारी अग,
हीन, अहंकारी, अतिरोगि या पुरस कौं।
मन-वच-काय, सेवै सदा मृप पाइ, तिय
सपने न त्यागे कहूँ अैसे हू पुरस कौं॥

रानी के सुष[१] : पुरुष उवाच

राजा ते सरस जा कौ हुकम रहत, जांनी——
मांनी जाति सारे, रूप होतु है भमानी कौं।
'सुकवि गुपाल' नृप जाके वस होत, जस
देसन में फैलै, दांन-मांन कर मानी कौं।
सबते सरस जाको परच रहत, होत
चतुर सुसील मान मारें अभिमानी कौं।
पैज पनसानी, जाकी रापै सब आनी, नृप
अैते मिलै आनी, राजु राजन की रांनी कौं॥

स्त्री उवाच

कैद मैं रहति, दीसै नर कौ न मुप, सुप
सेज कौ न नित, चित रहै अभिमांनी कौं।
'सुकवि गुपाल' तरुनाई गअे ब्याय होत,
छोटौ मिलै पति, सुप जाँनति न जवाँनी कौं।
जतन बड़े तें, होत नृप कौ मिलन, रहै
संतति कौ दुप, सौति करै प्रांनहांनी कौं।
रहै क्रोध सांनी, मति रहति दिमानी, अैती
रहब गिलांनी' रजवारन की रानी कौं॥

---

१. यह प्रन्थ है. मु. मे नही है।

फौजदारी : पुरुष उवाच

सदा रहत महाराज कौं, जाते निस दिन प्यार।
राज काज के करत होई, फौजदार मुपत्यार॥

कवित्त

प्यार रह्यौ करै सिरदारन कौ जाते, सदा
रहत हुस्यार जग जुरत की वार कौं।
मारि मारि रिपु वारि धारि कै हथ्यार सब,
सिमह सँभारि करि देत सिध स्यार कौं।
'सुकवि गुपालजू' छतीस कारखानन में
पावतु है सदा राज-काज मुपत्यार कौं।
सातौ सुप त्यार, रहै, हाजरि सवार, याते
राज तै सरस दरवार फौजदार कौं॥

स्त्री उवाच

दोहा

जग जुरत की वार, है फौजदार सिर भार।
कहूँ न रहै ठनवारि बहु, रह्यौ करै भरमार॥

सिपह को स्वाल, इववाल को हवाल सुनि,
हाजरी रपोट जानौ परत मजारी को।
'सुकवि गुपाल' राज-काज कौ रहत धाक,
वृथा जात दिन नेक पावत न वारी को।
घरन मुहर, बीयो कम्त कहर, वान
लागनि जहर बिन करत हुस्यारी को।
चिन्ता रहै भारी कँई गोत रुहै जारी, याते
बडो दुखकारी रुजिगार फौजदारी कौ।

बकसी को रुजिगार : पुरुष उवाच

दोहा

सेनापति को सुख सदा, रहनि सैन सब साथ ।
जग जुरब में मुरत नहिं, प्यार करत नरनाथ । [1]

कवित्त

मांफ तकसीर जे अनेक होति जाकी, राति—
दिन सब फौज पै हुकम रहै बीत है ।
ध्वामद सों प्रीति, श्रम जीति के अभीत, ताहि,
जीतत हीं जंग, माल मिलै हरि पीत है ।
'मुकवि गुपाल' जाकौ राजा डर मानें, अुमराव
सनमानें बढ़ै संपति अकोत है ।
जग मे अुदोत, होत चाकर की श्रोत, यातें
राजन के बकसी कौ अैते मुप होत है ॥

स्त्री उवाच

दोहा

फौजन के बकसीन कौ, बड़ौ कठिन कौ काम ।
सिर कौं धरि कै हाथ पै, करत कमाई दाँम ॥

कवित्त

सब सौं अगारो बढ़ि, लरनौं परत जंग
जुरत मुरत मरबाबत है मकसी ।
'मुकवि गुपाल' कहूँ हारि जाय रन में, तौ

---

१. मु. में है 'अन्यों' में नहीं ।

बाहू के अगारी नैंक रहै न ठसक सी।
आप चढ़िआवैं, किधौ रिपु ही दबावैं, तब
राति-दिनों यामें बडो रहै धकपक सी।
लगति न जक, रहै नृपति की सक, याते
भूलिहू कैं हूजियें न राजन कौं बकसी॥

रसालदार : पुरुष उवाच

बाँधि ढाल-तरवारि रण, मारत सत्रुन सीस।
नृपति रसालेदार कौ, मौज देत करि प्रीति॥

चट तुरगन पैं सग पैं सिपाह घनी, जीतें
जग जाइ बाउ विस्मिति हथ्यार की।
'सुकवि गुपाल' सदां रहै सुप पानी बडो
रहै महमानी सनापति सिरदार की।
काढें नाम गाम मिलें गहरी यनाम क्यों
दाम की रहै न रीझ भजें सिरदार की॥

स्त्री उवाच

दोहा .

हय-गय चढ़ि कर पगा गहि, बटि-बढ़ि घर घर देत।
तब रसालदारैं कछू, मिलति यनाम सहेत॥

कवित्त

बाधनें परन तरवारि-ढाल माले स्यार,
रापनें परा जेते जग के मसाने हैं।
है नरि निराडें, सो निगारें न रहत, प्रान
परें परगाने, लाले रहत न माने मैं।

'सुकवि गुपाल' कहूँ नहीं हालें चाले जाके
देपत पसाले मन परत फसाले में।
सबही कों सालें, सदा रहें काल गालें, रहैं
कितने कसाले रसालेदार कों रसाले में।

मुसाहिब

दोहा

रहत सदां आराम में जुरत पजानें दाम।
साहब कौ पुस रापिवौ मुसाहबन कौं काम ॥

कवित्त

सुनें राग-रंग, भोगें भांति भांति भोग, संग
गुनिन के गुन सुनि, आनंद बढाइयैं।
तिनही सौं सब, सब बातन कौं बूझें, मंत्र
रहत सुतंत्र, प्यार नृप कौ सिवाइयैं।
'सुकवि गुपाल' बैठि बरंबरि राजन के,
काजन कौ-सारि हिय वैरिन के दाहियैं।
दवै राउ-राइ, होइ दरजा सिवाइ, याते
बड़ी सुपसाहिबी, मुसाहिबी में पाइयैं।

स्त्री उवाच

दोहा

पचत नहीं कहुँ हाजिमा, रहत भोर अरु सांझ।
मिलै न कहु सुप साहिबी, मुंसाहिबी के मांझ ॥

कवित्त

रहनौं परै पास हजूरहि के पुनि मारे परै हैं दुसाहिबी में।
निसवासर ही जिय जायौ करै दरबारिन की सुमु साइबी में।
मुष जोवत ही जिय जात सदा, मिलै पान न पान कुसाहिबी में।
यों 'गुपाल' कहै न परै जितने, तितने दुष होत मुसाहिबी में॥

पोतेदार[1]

ओजदार[2] भारी रहै बोझदार होइ चित्त।
फौजदार दबते रहै पोतदार[3] ते नित्त॥

फौज को परच जावे कर ते अुठत जावौ
कटि कै कटौना रुक्या पटै दरबार को।
राज[4]को षजानौ सब जाके जमा होत आप
होत जमावद लैनौ परै न अुधार को।
'सुकवि गुपाल' धन रहै कैंअू राह[5], बहु
लै करि[6] अुमाह, साह रहत बजार को।
दबै सिरदार, रप रापै जिमींदार, याते
बडो ओजदार, रोजगार पोतदार को॥

दोहा

गाम गाम परगनन को, जमा होइ नहि जाइ।
बोय[7] परै सब राज को, पोतदार[8] सिर आइ॥

१–३ मु पातदार ४ मु राज्य
५ मु कैऊ विरत कै कहत क्यो
६ करिकै ७ मु बाज ८ मु पातदार

कवित्त

देने परें दाम. लैनी परनि रसीदि, लोग
गारी दयो करें काट फांसत की वारी मैं ।
दौलनि के विनठे पै, मार–बांध होत जब
पटन न रुक्का जिय आइ जात[1] नारी में[2]।
'मुकवि गुपाल' जाय जुरें जब जंग, तब
सग लै पजानों जानों परैं भरमारी में[3]।
रहै बोझ भारी चोर चार करें प्वारी याते
होत दुप भारी पोतदारें पोतदारी में[4]॥

दरोगा : पुरुष उवाच

कछू काम पै जाइ कैं, होइ दरोगा सोइ ।
राजन के घर ते सदां, तब इतने सुप होइ ॥

कवित्त

तेज बढ़े भारी, सिरदारी मांझ गन्यो जात,
मार्‌यौ करें माल, मिलि–झुलि जाई ताई में ।
'मुकवि गुपाल' भलों भयौ करें हाथन तें,
बातन कौ षाय, सदां बैठ्यौ रहै छाई में ।
सबहि कौ प्यार,[5] कांम परमुपत्यार, धन
वढन अपार, कैसू कांम रहै धाई में ।
कीरति सवाई, बड़ी होतिह वड़ाई, याते
सब ते सवाई है कमाई दरोगाई में ॥

---

१. मु. जाय २. मु. मे यह तृतीयचरण है । ३. मु. में यह द्वितीय चरण है । ४. मु. 'मे' के स्थान पर 'को' है । अन्तिम चरण इस प्रकार है : 'बड़ो दुखकारी [illegible] पोतदारी को । ५. मु नृपति को प्यार । यह चरण मु में द्वितीय है ।

स्त्री वाच

दोहा

टीको लागत लील को, बिगरि जाइ जो कांम ।
दरोगई के करत में नाम होत बदनांम ॥

कवित्त

देइ नही जाय, रिस रह्यो करैं सोई सदा,
दोस आय रहै, सहै सबही पै नाम को
राज को गुपाल' नित रहै डर भारी, छुटकारो
न मिलत, इक छिनहूँ अराम को
काम बिगरे पै टीको लील को लगत सिर,
बडो कष्ट करि यामें देतें मुष दाम को
टूट्यो करै माम, पैडो देख्यो करै कांम, याते
भूलि कै न हूजियै दरोगा काहू कांम को ॥

षजानची : पुरुष वाच

राज रहत आधीन नित बडे बडे मुष लेइ ।
है षजानची राज को, काम परें धन देइ ॥

कवित्त

रहत अधीन राम-काम मैं सकल लोक,
भोग कर्‌यो करत, कुबेर के समाने मों ।
कहे औ' पुराणे[1] कै वजानन कों जानें आन,

---

[1] है पुराने

दर्वे के ठिकानैं रहै हिम्मिति बँधाने कौं।
'सुकवि गुपालजू' भँडार पोलि देत धन,
काम आय परें, जद जग के जितानें कौं।
राज सनमानें, सब रायें आनकानें, याते
वड़े मुप पामें, है पजानची पजानें कौं॥

स्त्री उवाच

राज्य खजाने में रहत. रहत वड़ो शिर भार।
जिय जोख्यो के ज्यान ते, कांपति देह अपार।[1]

कवित्त

दौलति सँभारतहि जात दिनराति, नित—
प्रात ही ते लेत देत धन तन घूजियें।
चोर औ' चुगल, नृपराज कौ रहत डर,
होइ मार—मार न पसारि पाय सूजियें।
परच वढ़े[2] पे गढ टूटत लरे पें, राज—
काज के फिरे पे तो पकरि करि भूजियें।
'सुकवि गुपाल' याते मेरी सिप मानि, कहूँ
राजन को ग्रांन कैं पजांनची न हूजियें।

सिलहदार : पुरुष उवाच

सिलह पांन में सुपय ते, सिलहदार कौ होइ।
सूर वीर रनधीर हित, सदां करत सब कोइ॥

---

१. मू. मे यह दोहा है; वृ. में नहीं है। २. है परे

कवित्त

हेत रह्यौ करत सिपाह, सूरबीरन कौ,
    बडौ रणधीर होत किम्मती हथ्यार कौं।
जग में अुदोत सदा राजा पुस होत, मिलें
    गहरी यनाम काम परैं मार-धार कौ।
'सुकवि गुपाल' रुप रावत है जेते[1] तिनें
    देत अस्त्र-सस्त्र मोल महँगे अपार कौं।
राज दरबार, सिलैपानैं मुपत्यार भयैं
    यतने अगार सुष होत सिलेदार कौं॥

स्त्रीवाच

दोहा

सिलेपाल में जाय मति, सिलहदार होअु कोइ।
लेत देत हथियार कौं, बडो राज डर होइ[2]॥

कवित्त

करैं न सँभार जोपैं बिगरैं हथ्यार, बडो
    रहै डर भार, महाराज के रिसाने कौ।
लेत-देत, गिरत-परत, जिय ज्यान लगि
    जात में विस्वास नहीं आपने बिराने कौ।
'सुकवि गुपाल' कर कालिमा कलित रहै
    नित प्रति यामें काम परैं बनवाने कौ।
अति ही कठिन पहचान कौ सुकाम यातें
    भूलि कैं न हूजे सिलैदार सेलपाने कौ॥

---

१. मु. ६ केई २ ६ हजने डर नित होइ।

दानादक्ष : पुरुष वाच

दाना दक्षन हाथ ते, दान होत दिन राति ।
दुषी दीन द्विजराज गुन, मांन सराहत जात ॥

कवित्त

जाके हाथ है कैं ही षरच होत लष्यन[1] को,
देई–देव, तीरथ औं' सुकरम पक्ष कौं ।
ह्वै करि दयाल, सो निहाल करि देत हाल,
भरिकै भँडार माल मैंटैं दुष–तुक्ष कौं ।
'सुकवि गुपाल' निसदिन यही कांम, गुनमान
ननमांन प्रतिपाल बाल वक्षः कौं ।
भूपन कौ भक्ष, पुन्य दांन दीन रक्ष, याते
सबही में स्वक्ष, यह कांम[2] दानादक्ष कौं ॥

स्त्री वाच

दोहा

राजन के घर कौ सदां, होत हि दानादक्ष ।
दुषो दीन दुष देपर्ते होतहू पाप अलक्ष ॥

कवित्त

सो तो रहे साई लों' पिसाई रहे बेक पुन्य—
पाप होत आई बुरवाई रहैं मांय[3]कौं ।
देइ[4] नहिं जाय,[5] ताकौ ग्रातमां दुषित होति,
तुषित न रहैं धाम जाय जौ पै गाय कौं ।

---

१. है. लषन २. है. रुजगार ३. है. हाथ ४. है. देत ५. जाकी

'सुकवि गुपालजू' प्रतिगृह को देत लेत
दुखी औ' अनाथ दीन छांड़त न साथ को।
सतन के साथ, सुनो हरि गुन गाथ, नाथ
भूलि कै न हूजे दाना-दरप नर-नाथ को ॥

मंत्री राज : पुरुष उवाच

राजन के दरबार में मन्त्रि मन्त्र जब देत।
जग[1] जीति जुलमीन सों जबै जीति जस लेत ॥

कवित्त

होत[2] गुनमान, चौधौ विद्या के निधान, नीति—
न्याव के विधान जानैं लिये जेवे रात्र में।
आगम निगम सरवग्य बहु बात घात
पच अग गुन पट राखत सुतन्त्र में।
'सुकवि गुपाल' होइ सूरिमा, सुसील, छिमा—
व्रत, छमधारी, सालै रिपुन के अन्त्र, में।
जानैं जन्त्र-मन्त्र, राजा रहै निरबन्ध याते
ऐसे नृप होत देत मन्त्रिन को मन्त्र में ॥

स्त्री उवाच

दोहा

राजन के मन्त्रीन को, जग जुरत को पोत।
मन्त्र देत के समे में, इतने डर नित होत ॥

---

१. मु. है. जुरन षग जुलमीन सो जंग जीति जस लेत।
२. है. होय

कवित्त

सांचो जो कहै तौ, जामें राजा रिस होत, मुनि—
सिर के वचन विष सम सुप सूजियें।
'सुकवि गुपाल' सभासद बीच बैठि बड़े
सोच में परत मन मंत्र जब बूझियें।
अुड़ि[1] जात होस, जब आइ जात दोस, सह्यौ
परै नृप रोस. राजकाज लगि घूजियें।
जंग जुरि जूझियें, कि कीजे बात दूजियें, पै
राजदरबारन को मंत्री नहिं हूजियें॥

वकीलायति[2] : पुरुष वाच

रापत सकल नरेस हित, देस होत है नाँम।
याते भलो 'गुपाल कवि' है वकील कौ कांम॥

कवित्त

सभासद जेते रुप राष्यौ करें सदां, सब
देष्यौ करें राज दरबारन के सील कौं।
लिषि–लिषि पत्र, होत बातन विचित्र, राञु
राजा होत मित्र यामें ज्यान नहिं डील कौ।
'सुकवि गुपाल' राज काज के बहाल जानें.
हाल माल मिलैं, नेक लागत न ढील कौ,
चढ्यौ करें पील, बहु वाढतु हैं सील, याते
सबमें असील, यह कांम है वकील[3] कौ

---

१. हे. देव वह दोस यातें उडि जात होस, सह्यौ
परे नृपरोस राजकाज नित छूजियें।
२. मु. वकीलात को रुजिगार ३. हे. उजील

स्त्री उवाच

दोहा

निसदिन[1] अरनों परतु है, पर दरवारन जाय ।
लिपने परत हवाल वहु[2] या वकीलई पाय ॥

सवैया

देसकौं छोडि प्रदेस रहै घर कौ सुपजाने[3] नही सपने में।
दूसरे राज में लागै बुरो, दरवार में बातन में थपने में।
हाल ही जीपै हवाल लिपै, न, तो काप्यो करै सदा जी अपने में।
'राय गुपालजू' याते सदा यतने दुप होत वकीलपने[4] में ॥

पहलमान : पुरुष उवाच

पहलमान के बनन में जौम, रहन तन माँहि ।
अमल माँहि छाके रहै, काहू सो न डराँहि ॥

कवित्त

जान्यो करै वंभू दाउ–घाउ ऐंच–पेंचन कौ,
करि कसरनि देष्यौ करत भुजान कौ।
अमन में छाके बाके बनिकै अदा कै, तोरि
रिपुन के टाके, लेन नावे के मजान कौं।
'सुकवि गुपाल' लेत गहरी यनामा, गुटि,
झटकि, पटकि, जय मारै बलवान कौ।
पाय पान–पान बने रहै जवर उवान,
यतने निदान गुन होत पैलमान कौं ॥

---

१ है सब २ है नित ३ है देखे ४ है उकील

स्त्री वाच

दोहा

गुडन की सहुबति रहै, निसदिन आठौ जाँम।
याते नहीं भलौ कछू पहलमांन कौ कांम॥

कवित्त

सवही कौं पोछि मह्[1] पांनी परै चीज औ'
निवल वल होत सग तिय के डरत में।
'मुकवि गुपाल' यार वासन में आवै लाज,
देपि बल भारे ते अपारे में मुरत में।
लरत–भिरत अरु गिरत–परत हाथ
पाइ टूटि जात वार लागै न मुरत में।
रहै अकरत[2] कसरति के करत, कछु
कांम निकरत नहिं मल्लई करत मैं॥

राजचाकरी[3] : पुरुष उवाच

जमादार सूवेदार, चपरासी रुपनास निज।
सिपाही चौकीदार, इनके मुप वरनन करं॥

पलटीन पर सूवेदार मुपत्यार रहैं
हुक्म जमादार कौं सिपाही माने जेते है।
है कै चपरासी चाहै ताहि धमकामें चौकी–
दारी माहि चोरन कौ मारि माल लेते है।
करे वे पवासी षुस प्वामद रहत औ'
सिपाह में सिपाही मजा लियौ करै जेते है।
'सुकवि गुपाल' जू कहे न जात येते इन
चाकरी में चाकर कूं होत सुष वेते है॥

---

१. है. मु. मुर २. मु. अकड़त ३. यह केवल 'है.' मे है। 'मु' और 'वृ' मे नही है।

स्त्री उवाच

आय कहौ किन कोइ, एक नही मिष मानिये।
लाष टका किनि होइ, तउ न करौ ये चाकरी॥

ह्वैहौ सूबेदार, है है मार तरवार धार,
बनि जमादार सिरकार ग्यार वहिहौ।
बाँधि चपरास कौ दुपाइहौ गरीबै चौकी—
दार बनि राति में पुकारत ही रहिहौ।
करि हौ पवासी, तौ कहाइ हौ पवास, कहूँ
ह्वैहौ जो सिपाही सदा आठौ जाम वहिहौ।
भू-वि गुपाल' मेरी व त को न गाहिहौ तौ
सबते वहुत दुष चाकरी कौ सहिहौ॥

चाकरी[1]: पुरुष उवाच

और काम सब छाँडि कै, करूँ चाकरी जाय।
जामें जे सुष होत है, सुनहुँ श्रमन मन लाय॥

जौम जिय रापै, मरदाई नैन भापै नित[3]
रापत भरोगो भारी भुजन में ठौको है।
काहू सो न डरै, रन सनमुष अरै, अरु
नैनन में भरै, नें प्रताप सूरई को है।
पायकै पुराय दिजि[4]मिनि करै ष्वामद[5] की,
छैन व.यौ रहै, सो रहै न सोच[6]जीको है।
कहत[7] 'गुपाल' यामें सुष सबही कौं सदा,
याते यह नीको रुजगार चाकरी को है॥

---

१ यह विदय है' 'मु म है 'वु' म नही है।२ मु सकल कविराव
३ मु ित ४ मु दिदमत ५ मु ष्वाविद ६ मु मोष रज नही
७ मु सुकवि

स्त्री वाच

होत[1] प्रीति की हानि, चतुर चाकरी करत में।
घटैं उकर-अभिमान, चैन न पावैं चित्त में ॥

वहनौ[2] परत नित,[3] रहनौ परत पास,
सहनौ परत दुख, भली औ' बुरी को है।
चाकर कहावैं, बड़ो दरजा न पावें, भारी
नाम को घटावैं, औ' हटावें हित ही को है।
कहत 'गुपाल' देह बिकतो पराये हाथ,
मार-धार परैं यामैं होत ज्यान जी को है।
कुजस को टीको, मोहि लागत न नीको याते
सब ही ते फीको[4] यह पेसो चाकरी को है ॥

सूरवीर : पुरुष उवाच

जाहर जस जग में रहै, तेज होत[5] परचंड।
सूरवीर रण रारि करि, फोरि जात ब्रह्मंड ॥

कवित्त

जाइ-जाइ, धाय-धाय, करैं चाय-चायन
'गुपाल' दाय, घाय, पाय हरैं परपीर कौं।
जग जस छायकैं, वरंगना वराय आप,
जान चढ़ि जाइ, दिव्य पाइकैं सरीर कौं।

---

१. होइ २. मु. गुहानो ३ मु. यामें ४. मु. में
५. है. होय

बारबार सहै तरवारि–धार, बार तिल--
तिल तन कढेहू पै सहै सेल तीर कों।
होत[1] रनधीर, यों कहावतु है बीर, याते
सबमें अमीर यह काम[2] सूरबीर कों॥

स्त्री उवाच

दोहा

[3]रुड अरै. रन में मरै, लरै परै रन माइ।
कठिन छत्रिया धर्म कों, याते काम नु होइ॥

कवित्त

सनमुख ह्वै करि हथ्यारन की सहै आंच,
चाय प्रान देनु छाडि कुटम लुगाई कों।
पाच की पचासन तें, आय परै जग जब,
बिगरै जनम पाछे बगदत पाई को।
होत बदनाम, जो पै स्वामि के न आवै काम
धाहू कों कनाम होन होत कही गाई को।
'सुकवि गुपाल' करै रड ह्वै लराई, याते
बडो दुखदाई यह काम[4] सूरताई कों॥

सिपाई के

और काम सब छोडि कें, करै चाकरी जाइ।
जामें जे सुख होत है, सुनि प्यारी चित लाइ॥

---

१ है रुजगार २ है रुंड लरै रन म जरै मरै परै रन माह।
३ है रुजगार

जीभ जिय राषै, मरदाई बैन भाषै, नित
राषत भरोसो भारी भुज की कमाई कौ।
काहू सौं न डरै, रन सनमुष अरै, अरु
नैंन में भरै, लै प्रताप सूरताई कौ।

पाय कै पुराक षिजमति करै ष्वामद की,
छेन वन्यौ रहै सो रहै न सो चकाई कौ
फैलति अवाई, यौं 'गुपाल' कौ सवाई याते
बड़ो सुषदाई यह कामहू सिपाई कौ।।

सोरठा :

होइ प्रीति को हांनि, चतुर चाकरी करत मैं।
घटै अंकुर अभिमांन, चैन न पावै चित्त में।।

कवित्त

बहनौं परत नित, रहनौं परत पास,
सहनौं परत दुष, भलो औ' बुरो कौ है।
चाकर कहावैं, बड़ो दरजा न पावैं, भारी
नांम कौं घटावैं औ हटावैं हित ही कौ है।

कहत 'गुपाल' देह निकति पराअे हाथ
मार मार-धार परैं, जुयांन होत जी कौ है।
कुजस कौ टीकौ, मोहि लागत न नीकौ, याते
सबही मैं फीकौ, यह पेसौ चाकरी कौ है।

बहु चाकरी[1]

काजी[2] अरु चाली' रु पुनि नायक तुरक सवार।
हवालदार सूबेदार पुनि रहत राज दरबार॥

कवित्त

काजी मत न्याय निवटायबौ करत पुनि
नायब निगाह सही करि लिये तेते हैं।
तुरक सवारी में सवारी रहैं घाग्न की
है कै इवाल यक्वाल जानैं जेते हैं।
पलटन पर सूबेदार मुख्त्यार और
हवालदारी पाय कै हवल जानैं केते हैं।
सुकवि गुपालजू कहे न जात जेते, बहु—
चाकरी में चाकर त्यूं होत सुख तेते हैं॥[3]

---

१ है प्रति म पुनचाकरा है।
२ है—नाजर नायब मुसाहब मुसद्दीर वग्सार।
अरु दरबारहु कं कहूं सब सुख हिय विचारि॥
मु—नायब मुसाहब मुख्त्यार सिपाह।
चौकीदार रु पौरिया रहत राज दरबार॥
३ है—दनि म मुसद्दी गद्दी दाबि करि बैठे सदा
नाजर स्वान व मसान कहे जत हैं।
साहब कें साहिबी मुसाहब करत रह
नायब निगाह रही करि लिये नेते है।
हैके धग्दार धग्दारग सा लग भ्रा
दान बग्दार बग्दारन मा न्त है।
सु—स्वर के साहिबी मुसाहब करतु रहै
नायब निगा सहि बार लिय नेत है।
तुरक सवारी गान नाह की सग्गार चोकी
दारी मांहि घाग्न का मांहि मान मने ह।
पलटन पर सूबेदार मुख्त्यार और
सिपाह म सिपाही मजा मौजों करैं केते है।
[चोथी पंक्ति तीनों प्रतियों म समान है।]

सोरठा

लाप[1] कहहु किनि कोइ, अेक नहो सिप मानिये ।
आप[2] टका किनि होइ, तऊ न करो कहू चाकरी[3] ॥

कवित्त

काजी भये न्याय की विद्दनि मे रहै, पुनि
नाइवी में पैहो दगा मिलि जो न रहिहो ।
तुरक सवारी भये रहिहो सभार ही में,
इकवाली होत इकवानन नों दहिहो ।
हैहो सूबेदार नेहो मार तरवार धार,
है हवालदार पै हवाल बुरो लहिहो ।
'सुकवि गुपाल' मेरी बात कों न गहिहो तो
सब ते बहुत दुप चाकरी में सहिहो[4] ॥

---

१. मु. आव   २. मु एक

३. है दोहा इस प्रकार है —

सिरकारन की चाकरी, बड़ी कठन की धार ।
नेक फरेवी निकर ते, दीजे याहि निवारि ॥

४. है.—है हो जो मुसद्दी तो पै सब की सहोगे बड़ी
नाजरपने मे सदा साहब सो दहिहो ।
पाइवो न कछु सुप साहिबी मुसाहिबी मे,
नाइवी मे पैहो दगा मिलि जौन रहिहो ।
वैठन फिरोगे वटवार बनि बाटन पै
हैके पटवार बुरो सबही सो कहिहो ।

मु.—पाइवो न कछु सुप साहिबी मुसाहिबी मे
नायबी में पैहो दगा मिलि जो न रहिहो ।
ह्वै हो सूबेदार पैहो मार तरवार धार
ह्वै हो जो सिपाही सदा आठों याम बहिहो ।
गहु की सम्हार भार तुरकसवारी चौवी—
दार बनि रानि मे पुकारत ही रहिहो ।
[चौथी पक्ति सभी में समान है ।]

द्वालीबन्ध : पुरुष उवाच

रहि दरवान में सदा सब की जानत मार।
दयो करें द्वागाह दशा, द्वाली बदन द्वार ॥

कवित्त

भूमिया, मुखार, सिरदार, जौमदार, जेते,
राप्यो करें रुप भारी करि-करि प्यार पै।
सबकी अरज करि पकरि गुजारें जाय
तिनही की बात पस परति हजार पै।
ठाढो करि राय महाराज के हुक्महू पै
रिस करि जाको कर्यो चाहें जो बिगार पै।
'सुकवि गुपाल' गाने राजन की सार होत
दरजा अपार द्वाली बदन की द्वार पै ॥

स्त्री उवाच

दोहा

घटन जानि-पहचानि, घर पान-पान की जान।
याते यह दरमान को अधम बुरो निदान ॥

कवित्त

सहनी परति है जवाजें औ' तवाजें नित
रायन सिगट् टरि सकत न भाजें को।
जानने परत बहु कायदा-बकदरि, नौकरी
ते बेतरफ होत करत अकाजें की।
यन दुपी दीनन के रोकिबे को पाप पुन--
पकरि गुजारत में रहै डर राजें को।
'सुकवि गुपाल' होनी परत निवाजें, याते
भूलि कै न हजें दरमान दरवाजे को ॥

चोबदार : पुरुष उवाच

दरबारन में जाइबे, सारत सबको काम
मिलत चोबदारन तहाँ, बारत मुक्ता दाम।[1]
राजदरबारन में हाजर हजूर रहै,
बढ़त सहूर नूर लेतह बहार को।
काम आय परे, सदा जाते सब लोगन को
राअ अुमराअु, सेट-भुमिया गुवार को।
'सुकबि गुपाल' चाहै ताहि रोकि देइ, औ'
गिलाय हाल देइ भने अरज-गुजार को।
सबही को प्यार रहै, राजदरबार, याते
सबमें अगार रुजिगार चोबदार को।

स्त्री उवाच

दोहा

ठाढो रहनो परतु है, निस दिन आठौं जाम।
याते बड़ो निकाम, यह चोबदार को काम॥

कवित्त

सबही को अरज गुजारनो परति, यामें
लागत है पाप, रोपे दीन दुपकारी कों।
जान देइ भीतर, तौ राजा रिस होत, नहिं
जान देइ भीतर तौ लोग देत गारी कों।
'सुकवि गुपाल' गरो परि जात भारी, अगवारी
के भअे पै बढि बोलत अगारी कों।
छोड़ि घरबारो, सदा ठाढो रहै द्वारो, याते
बड़ो दुपकारी यह काम[2] चोबदारी कों॥

---

१. यह दोहा मु में है, बृ. मे नही। २. रुजिगार

हलकारे : पुरुष उवाच

दोहा

ठौढा[1] रहनो परतु है निसदिन आठौ जाम।
याते भलौ गुपाल कवि हलकारन कौं काम॥

कवित्त

सैल देस–देसन, नरेसन की देखें आपि,
काँम परयौ करत जरूर काम–वारे कौं।
'सुकवि गुपाल' तिनें रोकत न कोऊ कहूँ
चल्यौ क्यों न करो नित साझ लौं सवारे कौं।
वार न लगति रजवारन के वारन में
गहरी मिलति मौज मजलि के मारे कौं।
राजन के द्वारे, करें बातन के वारे-न्यारे,
याते सुष भारे सदा होत हलकारे कौं॥

स्त्री उवाच

दोहा

राति दिना चलनौं परत, देनौ परत जवाब।
छिन भरि कबहू रहत नहि, हलकारन के पाँव॥

कवित्त

राह ही में रहै परदेस[2] दुष सहै ठग
दौरत ते दहै देह चलत अवार कौं।
जाय कें मिताब, पहुचें न जो जवाब, तब
होत बडौ रुवाब राजु राजे के हजार कौं।

---

१ है मु–दस दिरा नरस हिन, महू मांग सप दाम।
२ है मू ठे ३ है राजिरिप

'सुकवि गुपाल' हेला–हेली मचो रहै औ,[१]
मजलि रहि जाय जब[२] वेली रहि हारे कौं।
परि जात कारे, पाय थकि जात न्यारे, याते
सबही ते भारे दुष होत हलकारे कौं॥

धाभ्रू : पुरुष उवाच

भागि जगै जाकी सदा, होइ दूसरो राज।
राजन के धाभ्रून कौं मिलत बड़े सुष-साज॥

कवित्त

जग में अुदोत जोति तेज सी पुरस होत,
राजा मान्यौ करत अुकर[३] जैमें दाभ्रू कौ।
पांन–पान–काजें जे निकरि आमें गांम, तिनें
पायौ करैं सदां सात सापि तोजी जाभ्रू कौं।
'सुकवि गुपालजू' सदां कौ घर होत, इतवार
रहै अैतो जैतौ और नहिं काभ्रू कौ[४]
होत है कमाऊ, दवैं राऊ–अुमराऊ, याते
सब में अगाऊ यह कांम भलो धाभ्रू कौं॥

स्त्री उवाच

दोहा

बड़ी कठिन को चाकरी, पर आधीन रहाइ।
राजन के घर कौ कबहुं, धाभ्रू हूजै नाहिं[५]॥

---

१. हैं. मु. औ २. मु. जहां ३. मु: अदब ४. ह. में यह द्वितीय चरण है। ५. मु. नाय

कवित्त

रापनी परति तिय आपनी पराअे घर,
तावे सुत-सुता सुख पावत न नेगि कौं।
राजा के टिगारी[१] नित रापतौं परत दर-
वारी जर्‌यौ करै बात करत में पेस कौं।
'सुकवि गुपाल' हिन्दू[३]-मारै[४]-जाति[५] वध सदा,
तावौं नित प्रति नाम धरत त्रिमम कौं।
छूटै निज देस, सुप पावत न लेस, याते
धाऊ नहि हूजे, चाहे जायकै नरस कौं॥

पोजा कौ : पुरुष उवाच

जब होइ पोजा जायके, रनमासन कौ कोद।
रावनि राजन के यहा, तव अंते सुप होइ॥

कवित्त

काम न सनावे, वडे दरजा कौं पावे, सदा
मूज्‌यौ करै राज, हुकम मानें सब कोता कौ।
सबते पहल रनसास में पहुच होति,
रानी अरु राजा[६] हुकम मान्‌यौ करै दोजा कौ।
'सुकवि गुपाल' दरवारन[७] में वैठि जान्यो-
करै दडवडे[८] गुनमानन के चोजा कौ।
पुलि जाय रोजा, बडो भारी होइ बोझा,[९] सदा[१०]
मार्‌यौ करै मौजा, काम करतहि पोजा गौ[११]॥

---

१. निकट २. रहनो ३. मु जाति ४. मु मारे ५. [illegible]
६. मु राजा और रानी ७. मु सरदार ८. मु [illegible]-बडे
९. मु बोजा १०. मु दा। ११. मु मवही म कर्यो अजिकार
मट्ठ योजा कौ

स्त्री उवाच

दोहा

पोजा कबहुँ न हूजियै, रनमांसन[1] कौं जाइ।
निसदिन तिन कौं सबन की, अरज गुजारत जाइ॥

कवित्त

मरद न महरी कहत तासौं, अैसें सब
कबहीं[3] न जानें नेंक बिषै के हुलास कौं।
सुत अरु सुता नांम–गांम कौ न जानें सुप,
रहै काहू कांम कौ न, नांम बुरौ तास[4] कौ।
'सुकवि गुपाल' सुनि सबकी पवरि दरबार[5]
में गुजारनी परति सदां तास कौ।
घर ते गुदांस बन्यौ रहत पवास यातें,
भूलि के न हूजे कहूँ पोजा रनमांस कौ॥

चिरवादार : पुरुष उवाच

ओषधि किम्मित जाति गुन, जानत परष सवार।
चढ़ि घोड़न लीयौ करैं चिरवादार वहार॥

कवित्त

घोड़न पै चढ़ै, संग रहैं सिरदारन के,
जानें जाति–किम्मित, अनेकन सवारी कौं।
'सुकवि गुपाल' जे निकारें घनी चाल हाल,
माज मारि जात देत नेत में बिपारी कौ।

---

१. मू. रनदासिन २. मु नानौं ३. मु. कबहूँ ४. मू. नाउ
५. मुनि पवरि नरज लै हजूर नें।

सालोत्तर पढि नाना भांतिन की जानें दवा,
पावत यनाम नाम करिके तयारी कौ।
परपै हजारी, वृझ करै नृप भारी, याते
बडो सुपकारी यह काम चिरवादारी कौ॥

स्त्री उवाच

दोहा

दौरत-दौरत द्वार पै, मट्टी होति पुआर।
यारी देतु न करम तव, होतुह चिरवादार॥

कवित्त

दाने-घास-पानी कौ मसाले न पकावन,
पुजावन सिपायत में मानि जात हारी कौ।
लगि जात लात, हदिजात काढि पान, ताकौ
माष्टर औ' डक पाय जान दह मारी कौ।
'सुकविगुपाल' घोड़ा करि कै नयार, पाछे
दोरनो परत, पुनि मग अमजारी कौ।
हत्या होति भारी, धर्म देत नहि यारी, याते
बड़ो दुपकारी यह काम चिरवादारी कौ॥

पवासी पुरुष उवाच

सदा राज कौ हित रत, रहत रैनि दिन काम।
यातें सबही में भयो,[1] या जग मान प्रनाम॥

---

१ [illegible]

कवित्त

करत खुसामदि अनेक लोग आइ जाकी,
कहि के मजेज राखे काहू की न आस कौं।
परम प्रवीन-बीन, बातन को जाने नित
जगर-मगर राख्यौ करत मवास कौं।
'सुकवि गुपालजू' लिहाज मौं रहत कहे—
तोड़न अकाज कौं कहावतु[1] है पास कौं।
सदा रहे पास, राजा माने बिसवास, याते
बड़ौ सुपरास रुजिगारह पवास कौ॥

स्त्री उवाच

दोहा

नीच टहल करनी परति रहिके सबदिन पास।[2]
याते सबही में बुरौ, या जग भाँति पवास॥

कवित्त

हाथन[3] में छाले, कँधू बात[4] के रहत लाले,
पाते परें पाले, बड़ी करत[5] तलासी कौं।
करनी परति नीच टहल अनेक भाँति
राति दिना यामें भोग्यौ करतु[6] चुरासी कौं।
'सुकवि गुपाल' झूठौ—कूठौ पानौ परें वित
संग जानौ परें असवारी में सुपासी कौं।
रहत उदासी, जिय जायौ करे मासौ, याते
बड़ौ दुप—रासी, रुजगारह पवासी कौं॥

---

१. है- कहावति
२. है सुप रहि रहत उदास मौं सव कोइ रहत [कहत] पवास।
. मु- बैठ्यौ रहत उदास मौ, सव कोउ कहत पवास।
३. है- मु- गोटुआन ४. मु- काम ५. है- करिकें ६. है- नित भोगत

गुलाम पुरुष उवाच

रहत हजूर हजूर के, सदा आठहू जाम।
याते सबमें काम की है गुलाम को काम ॥

सवैया

निन आठहू जाम हजूर रहै, पहुचावै सबी को सलामनि कों।
नुकता पै रिझाय के राजन ते, सदा पायो करै है यनामन कों।
सबमें उमराव बनेई रहै, दरबारिन के करि कामहि कों।
यह ते यह 'राय गुपाल' भलो सबमें रुजिगार गुलामन कौ ॥

स्त्री उवाच

दोहा

नाम होन बदनाम पुनि, सब कोई कहत गुलाम।
कामन ते छूटै न छिन, लेइ न नेक अराम[1] ॥

कवित्त

करनी परति जाइ नवि कें सलाम, झूठी,
मिलै पान-पान, नहिं दरजा छदाम कों।
'सुकवि गुपाल' यह काम के करत नेक
पावै न अराम, रहै काहू के न काम कौ।
ठहरै न पाम, वही होतु है हराम, आठौ
जाम सहि नाम-बदनाम करै नाम कौ।
लिख्यौ है कलाम, आवै दोसला कलाम, याते
सबमें निकाम, यह कामहू गुलाम कौ ॥

पिलमान[2] पुरुष उवाच

लवनें अंकुस हाथ पै गज पै बैठन आनि।
राजन के पिलमान जब, होनहू राज समान ॥

---

१ मू याते काहू का नहीं, कूर्म आव गुलाम। २ मू पीलवान

कवित्त

गजको सवारी, बैठै राजा के अगारी, रूप
राखै सिरदारी, बस करै बलवान कौं।
'सुकवि गुपाल' सदा सधै[1] सोंप–सांन, धर्नौ
घृत औं मलीदा नित मिलै पान–पान कौं।
मुक्त कौ काम धनी मिलति यनाम, रहि
राजन के धांम, स्वाफ[2] रापत जवान कौं।
होत अक्लिमान, नृप पावत निदान, बड़े
होत जोमवान, काम करि पिलवान कौं॥

स्त्री उवाच

दोहा

पांन–पान करवावते, गज नित लेत पिरांन।
कांम यहै पिलवान कौ, याते बुरौ निदांन॥

कवित्त

रहनौं परत निसदिन काल–गाल ही में,
होत बुरौ हाल, डर रहै जिय ज्यांन कौं।
'सुकवि गुपाल' जहां चलैं तोप–बान, तहां
चलनौ परत रन सांहमौ,[3] घमसांन[4] कौं।
करिकै हिरान जौ न देइ पांन–पांन, दाव
लगे में निदांन, चीरि लेत गज प्राण कौं।
चैंयै जोर ज्वाब, बन परत बिरांन, याते
बड़ोई गैवान, कांम यह पिलवान कौ॥

---

१. मु. साधौ २. मु. गहून
३. मु. रणसामी ४. घमसाना

गडमान : पुरुष उवाच

रथ बैठे रथमान के, रजई आवति हाथ।
बात करत महाराज[1] सों, करत पुसामदि जात ॥

कवित्त

पावें सिरदारन के बैठक अगारी, भलौ—
नितप्रति यामें माल मिलें पान–पान कौं।
देस औ' विदेस नर[2]–नारिन सों हेत होत
भलभले लोगन सौ जानि पहचानि कौ।
'सुकवि गुपाल' असवारी ही में चलें, मेले—
ठेलन में सदा लीयौ करत मजान कौं।
आवत सयान, होत नित नयौ मान, सुप
ऐते मिलें आन, रथमान–गडमान कौ ॥

दोहा

चोर टोर कौ[3] डर रहै, धूरि परै सिर माँझ।
राह चलत गडमान कौ धँवे, कौं मिलै साँझ ॥

1. है सिरदार सौ पाछे बिचरतजात। मु बडे गोग सादर बग्न, बहुत मिलतसुप साग। 2 है बहु 3. है मु. चोरन ते डरप्यौ करत धूरि परत सिर मास।

कवित्त

राह ही में रहै,[१] परदेस दुप सहै,[२] सीत
घाँम जल सहै, पावँ बाहर उतारे कौं ।
गारी घात हाल, सिर पेल्यौ करें काल, भगि
जात यलजाम[३] यामें नेंक वैल मारे कौं ।
'सुकवि गुपाल' रहै परच कौ पार्लों, नित
रातिदिन लालौ रह्यौ करें दाने-चारे कौं ।
टूट्यौ करें, मारे दिक्य[४] रहैं घरवारे, याते
होत दुप भारे, रयवारे गड़वारे[५] कौं ॥

मुल्ला : पुरुष उवाच

होत पूरकस यलम में, ग्न जवान दराज ।
पढ़त पारसी अकलि के मुल्ला होत जिहाज[६] ॥

कवित्त

करत सलामी सहजादे औ' अमीरजादे,
ताकी अद्‌बजादे लोग रापत मुहलौ के[७] ।
पिजिमित करि कें पुसामदि करत पांना,
आगें में पड़े रहै फ्रजंद[९] भल भल्लौ के ।
'सुकवि गुपालजू' हजारन किताबन की
कहत सिनाव, बाज पारसी की रल्लौ के ।
मोटे होत कल्ले,[१०] कहीं रहै ना इकल्ले, याते
. दरजा मुभल्ले, होत दुदही में मुल्लौ के ॥

१. मु. राह तन दहै २. मु. प्रदेशन में रहै ३. मु. इलजाम ४. मु. दिक्क ५. मु. रखवान गत्मा ६. मु. जहाज ७. मु. मुहल्ला के । इसी छन्द पंक्तियों में अन्त्यनुप्रास मल्ला, रल्ला, और मुल्ला है । ८. मु. खिदमत ९. मु. कुमर १०. मु. कल्ला; इसी प्रकार आगे इकल्ला, और मुभल्ला

स्त्री उवाच

दोहा

पढत पढावत में मगज, सब पच्ची हो जात।
लडकों से मुल्लान की, अकलि चरप हो जाति॥

कवित्त

फूटे जात कान, पा सकें न पान-पान, घब-
राय जाति जांनि, छोहरों के होत हल्ला कों।
'सुकवि गुपाल' दूर्प हालत में कल्ला सब,
पूछि पूछि पाअे जात पोपरा इकल्ला कों।
रहत निकल्ला, बडो लगत[1] झमल्ला, जब
कहि अलो अल्ला, सो जगावत मुहल्ला कों।
बढे रहें कुल्ला, लोग कहत मुसल्ला, आप
होत मति भुल्ला काम करतहि मुल्ला कौ॥

हकीम : पुरुष उवाच

चढत नालिकी पालिकी,[2] बोलत मग नकीम।
रजवारन में[3] जागर्ने, जब कोऊ होत हकीम[4]॥

कवित्त

हय-गय-रथ-पालिकीन में चढत, बहु
बढत पत्यारो, सो निकारें तर्कीबो में।
'सुकवि गुपाल' दरमाह यो घर आयो करें,
पावें बडो दरजा, गिदाग काम कीबो में।

---

१. मु. मगजु २. चलत पालकी रवन में ३ मु को ४. मु होत सु अर्थात् हकीम।

जानत मरज, करि ओषधि अरज, होइ
समज[1] सिवाय पारसी औ' अरबी बी में।
मिलें ग्राम जीमी, सब कहत कदीमीं, याते
येते सुप होत रजवारे की हकीमी में॥

स्त्रीवाच

दोहा

रहत काल के गाल में, छुट्टी मिलत[2] न जाइ।[3]
हूजे कहूं हकीम नहिं, रजवारन कौ[4] जाइ॥

कवित्त

रहत दुवारे, दिक्य[5] रहै घर बारे, रोग
बढ़ि गये भारे, ढील लगति न मारे कौं।
'सुकवि गुपाल' दवादारू के करत, नहीं[6]
मिलें छुटकारौ, कबौ साँझ लौं सवारे कौं[7]।
आदत औ' जादत में, महज दिषावत में,
दिक्य[8] करि लोग, लेइ, नीयें जात द्वारे कौ।
हारत जमारौ,[9] लोग कहत हत्यारौ[10] याते[11]
पावें दुषभारौ है हकीम रजवारे कौं॥

कलामत: पुरुष वाच

गावत गावत सदन में[12] गहरी सदा यनाम[13]।
बाते मह गुन कदरि कौं, कलामतन कौ काम॥

---

१. मु. समझ २. मु. मिलति ३. मु. ताप ४. मु. का
५. मु. दिक्क ६. मु. नेक ७. मु. में यह तृतीय चरण है। ८. मु. जमारो ९. मु. हत्यारे १०. मु. सदा ११. मु. भार दुख पावे है
१२. मु. ...
१३. मु. इनाम

मोदीषानौ : पुरुष उवाच

मोदीषानें राज कौ, जब कोऊ मोदी होत ।
भरम, धरम, हुरमति, सरम, बढ़त धरम, धन, जोत ।[1]

कवित्त

जा[२] दिनतें भरम, धम्म बढि जात घनौ,
कायदा कदरि[३] पावें सबतें सभा में है ।
माल लेत देन कहूं[४] नाही नहीं होति जाकी
सही बात होति, चाहे ताकू धमकामे[५] है ।
'सुकवि गुपालजू' तगादौ न करामें,[६] घर
बैठही कमामें,[७] नफा होति घनो तामें है ।
बड़ौ होत नामें काम सब कौ चलामें[८] भअे
मोदी महाराजन कौ अेते सुष पामें[९] है ॥

स्त्रीउवाच
दोहा

मोदीषाने में बहुत, काम परत दिनराति[१०] ।
राजन के मोदीन कौ, यातें बोदी बात ॥

कवित्त

लोग करें ख्वारी,[११] तगादे रहैं जारी, कहूं
मिटै न उधारी, भीर परै चहुँ कौदी[१२] की ।
त्रस होत गात, सोच में ही दिन जात, यौ
'गुपाल' दिनराति सोध धरत न सोधी की ।

---

१. वृ. जोति । २. मु. ता. ३. मु. अकर ४. मु. कोहू
५ मु. धमकावें ६. करावें ७. मु. कमावै ८. मु. चाहे ताही
की जिता मे ९. मु. यामें । १०. वृ राति ११. वृ. वौ १२. मु. मोदी

रहत लखूट, घर होत टॅट बूट, घर
घर[1] होइ फूट, यात रहै न[2] विनोदो की[3] ।
होत वडो ओधी,[4] वैर करत विरोधी याते
बोदीगति होति महाराजन के मोदी की ॥

इतिश्री दर्पनिवारन विलास नाम यान्दे राजप्रबधधर्गत नाम षोडशो विलास ।

---

१. मु. टोर-ठौर २ मु विगरै ३. मु. मे यह द्वितीय चरण है
४. मु. ओध

सप्तदश विलास

फिरंग प्रवन्ध[1] : पुरुष उवाच

दोहा

माने गग, कुटान[2] कौ, रापैं नाम' रु टेक ।
अस्कनि ते पैचें सदा, पैमा महृति विवेक ॥

कवित्त

न्यार[3] फौज रापे, मंत्र काहू सौं न भापें, जोर
चातुरी कौ रापें, काम करें न लवेज कौ ।
पाप–पुन्य छानें, फूट फरेब न जानें, एन–
कौ हीं[4] बात ठानें, न्याव करें नहिं हेज कौ ।
'सुकवि गुपाल' सदा सूरज कौ इष्ट, बड़ौ
कंपिनी की मानें आन, रापें न मजेज कौ ।
धरे तन तेज, सदा बैठत है मेज, याहि
सब मे थमेज, यह कोम[5] अँगरेज कौ ॥

जंगी कारपनिन की भरती करत सदा
फौज कौं सिपायों करें करि–करि हेज कौं ।
'सुकवि गुपाल' जंगु जुरतो थपत, फेरि
मुरन न मोरे, करि काहू परहेज कौं ।

१. मु. में अ 'अथ रंगी प्रबंध वर्णन' तत्रादि फिरगी रुजिगार ।
२. वृ. कुराष ३. मृ. न्वार ४. वृ. अनेकौ हीं ५. मृ. रुजिगार

जाकौं पाप होइ, ताके सिर पर राखे, झूठो
न्याव नहिं करें, करि-करि नग लेज को।
धरे तन तेज, सदा बैठत है मेज याते
सब में अमेज, यह काम अंगरेज को॥

स्त्री उवाच

दोहा

रापत[1] फौज तयारजे, ऽनत बडो फिरग।
जग जुरत जुलमीन सों जब जीतन जुरि जग।

कवित्त

बरमन लागे, तऊ टूटत न न्याय, परी
परच्च जुठाय करि देत हाय तगी को।
हिंदउस्तानी रिसपत पाइ जात अूचो,
नीचो करि दके, परवायों दरे चगा को[3]।
कर जरीमानों मार बहरी रसूम लै,
पजारं सटामटि[4] मूडे पेचें दाम दगी को।
रापत न सगी, पानसामा करें भगी, याते
सब में कुढगी यह काम है फिरगी को।

रह्यो करें यामें बडो कपिनी को डग, अंन,
कौमन, झिगरि काम सरन न जगी को।
'सुकवि गुराल' समसें न राग-रगो गुन-
मानन के काजे सदा हाय रापें तगी को।

---

१. मु. रापं २. म हिंदुस्तानो ३. मु एइन सों एक करवायो करें दगी का। ४. मु सटामटि

जियत विनासें, अेक ठौर न प्रकासें जाय,
लरि न सकत बारें मांस कहू चगी को ।
रापत न संगी पानसांमा करें भंगी याते
सब में कुरगी यह कांम हे फिरगी कौं ॥

[1]पहरत टोपी, टोपी धरि कें मिलत, पासी
पिलति न रापें, लाज आवति न सगी को ।
बीवी सग लेले, सदा डोलत अकेले, कहूँ
रहत न भेले, सदा लेले फौज दंगी को ।
'सुकवि गुपाल' होति आतश अधिक, मुप
मोंछ नहीं रापें, पागें धरि सिर रंगी कौ ।
रापत न संगी पानसांमा करें भंगी, याते
सब में कुढंगी यह कांम हें फिरंगी कौं ॥

फिरंगीराज : पुरुष उवाच

डाड़त न काहू, कबो मारत न काहू, पाप
करे जाई देइं डंड, रहै न बिराज में ।
नाहर औ गाय घाट अेक पानी प्यावें नित
धरम कौ जानें जंग जोरत अवाज में ।
'सुकवि गुपाल' चंदा, रोजो, नांजमीन कहूं
काहू की दई की न लगामें पनराज में ।
करें न अकाज, डर गये सब भाजि, भये
राम के से राज, अँगरेजन के राज में ।

१- यह कवित्त मु. में नहीं है। २: यह प्रसंग मु. प्र. में नहीं है।

स्त्री उवाच

दोहा

घर घर फूट औ' फरेब झूठ सांच, बरकनि
नहिं नेंक, यामे सासे रहें नाज के।
चोर निरभय, अरु साहु घिर फिरें, यल–
जाम लगें यामें, नेंक निकरें अवाज के।
'सुकवि गुपाल' भली बुरी भेद भाव, काहू
गुन की न बूझ, रुजिगारन लिहाज के।
पिचें महाराज प्रजा दुखित निलाज वह
जात न अकाज अँगरेजन के रजा के॥

सदर सदूलो[1] : पुरुष उवाच

रह आमदि की फूल, दरजा पाय बड़ो मदा।
बोझू करन अटूल, सदर सदूली करन में॥

कवित्त

कुरसी मिलनि अँगरेजन की साखी, आमें
अंन अंगरेजो, न्याव करन अदूली कों।
'सुकवि गुपाल' करि मामले हजारन के,
मार्‌यो करें माल करि कायन–मकूली कों।
बैठि करि मेज, पै मजेजई सों रहें वेर
जासों परिजात, ताय करि देत धूनी कों।
आवत सहूलो, सोभ रहत हजूली, सदो
यासे महू काम भलो सदर सदूलो कों॥

1. यह शब्द मु. है में रही है।

स्त्री उवाच

दोहा

सूली को चढिबो रहै, हूली हिय के मांहि।
हाल अदूली होत है, सदरसदूली पाइ॥

कवित्त

जाननें परत हैं अनेक अँगरेजी अंन,
जात दिन रैंनि वर्त्त कायल–मकूली कों।
'सुकवि गुपाल' जोपै जानें फरेब तो फरेबी
के, फरेंयन ते पाइ जात धूली कों।
न्याव निवटैबो, पून स्यावति को कैबौं, बहु
रिसवति लैबो इह कांमहु अदूली कों।
रहनों हजूली को, चढ़िबो है सूली को, सुयाते
नहिं कीजै कांम सदरसदूली कों।

नाजर : पुरुष उवाच

हाजर करिकें जानि कूं नाजर बनिहूँ जाइ।
फाजर धन लांऊं घनों, यों कमाय कें आइ॥

कवित्त

मान्यो करैं लोग सब[1] जांन्यो करैं अैनन को,
मेज के अगारी जवाब करि कैं छड़े रहैं।
साहब कों अरजी सुनाय समझाय कें,
दरोगन ते मिलि माल मारत घने[2] रहैं।

१. है भरा २. है बड़े

झूंठन कों साचौ, साचौ-झूठौ करि-क   परे[1]
परचा कों लै करि जितैबे कौं अरे[x] रहैं।
'सुकवि गुपाल' सदा नाजर भये पै,   लोग
हाजरी कौ दैर, आगें हाजरि परे रहैं ॥

स्त्री उवाच

सोरठा

झगरन में दिन जाय, राति-दिना धरा रहै।
रहियै नाजर पाय नाजर कबहु न हूजियै ॥

कवित्त

लागत सराप पाप[x] करत फरेबौ जब,
झूठौ साचौ[x] करि जावौ-तावौ बुरी करियै।
नाजर कहावै, निरधन कौ सतावै, परलोक
दुख पावै, औ' अकारथ ही अरियै ।
'सुकवि गुपाल' बहु हाजरी क होत सदा
साहब सौं[x] अरजी सुनावन म डरियै।
रस चटि करियै, कि और कछु करियै, पै
अँगरेजी लोगन की नाजरी न करियै।

थानेदारी : पुरुष उवाच

बैठि अदालति नाम की बनिहौं थानेदार।
करहु जोर तुमसौं की नारि जुलम दरबार ॥

कवित्त

रैयति पै हुकम जमैयति रहति, पास
पैयत अनेक नृप, सदा पाने–दाने में।
कांपत मुगल–चोर, डरत फरेबी–ठग,
करत सलामी आय बैठे ही ठिकाने में।
'सुकवि गुपाल' साँचे झूंठे को करत न्याव,
लेत मुंहमागे दाम, मामले जिताने में।
रहै बीरबाने, सब गाम होफमानें, याते
येते सुप होत थानेदारी पाइ थाने में।

स्त्री उवाच

सोरठा

माटी रहति अजीज, निसदिन थानेदार की।
बवत पाप के बीज, रैयति दीन दुपाइ के॥

कवित्त

गाम परवस्त, जबरदस्तन पै दस्त दिन
अस्त तें फिस्त गस्त समस्त दजागी में।
नालसि को डर, रहै विद्दनि को भर, सदा
बिगरें जुबान, बुरौ बोलि देत गागी में।
होइ गैरि हाल, हाज लिपे न हवाल जीपे,
आवे[1] चोट–फेंट, कहूं होत चोरी–चागी में।
'सुकवि गुपाल' यामें रहै मार मारी, याते
येते दुप भारी, सदा होत थानेदारी में॥

---

१. हैः मु. प्रेत

चपरासी : पुरुष उवाच

चपरासी–सिरकार की जब बाँधत चपरास।
हुक्म उदूल करैं न कोइ, भूप जात है त्रास॥

कवित्त

हुक्म अदूल करि सकतु न कोऊ, कहू
ताको काम परै गिरदारन[1] के पासी कों।
मार्‌यो करै माल, धमकाय के हजारन ते,
जाको नाम सुनें कूच भूपत मवासी कों।
'सुकवि गुपाल' तकसीरवार जते, जिनें
भार–बाँध करि, सूधे करै बदमासी[3] कों।
रात दिनै पासो, कर्‌यो करत तलासी, याते
बडो सुपरासो, रुजिगार चपरासी कों॥

कवित्त

दोहा

रुवाब, तेज, कूरनि त्रिना, जो बांधत चपरास।
काम होत नहिं ऐक हू, दरत नहीं कोऊ त्रास॥

कवित्त

टटे औ' फिसाद के विवादन में जात दिन,
ताके[4] सुख चैन निकरें न बदनामी कों।
'सुकवि गुपालजू' दिवानी–फौजदारी बीच,
आवन औ' जात होत भोगिबी नुरामी कों।

---

१ मुराद २ हे दरबी कों गिरफ़्तारन ३ मु डकैती ४ मु–– कर ५ है वाके

मारत मे नार, तकमीरवार मरें, जीपे—
तांपे ताही बार, यह पावनु है फांसी कौं ।
होत अधरामी, सिरकार की पवासी, करि
याते दुपरामी, रुजिगार चपरामी कौं ॥

परमट पुरुष उवाच

तेज जोम मन में रहै परमट कामहि नेत ।
माल मिलै महसूल को, ब्योपारिन सों हेत ॥

कवित्त

जाके हाथ हैकें जाती होत है रमना
सब करिकें तलामी रोकि राखें जोमवारे कौं ।
परयो करें आव के बिपारिन तें काम, तासों
हुकम चलायो करें पीकरि तिजारे कौं ।
कहत 'गुपाल' तईनात चपरासी घर,
बैठे ही हजारन के करें वारे-न्यारे कौं ।
काम सरें सारे, दबें महसूल वारे, याते
होत सुप भारे सदां परमटवारे कौं ॥

स्त्री उवाच

दोहा :

नितप्रति कहनि अपराधि बहु, देत लेत महसूल ।
याते कीजे काम नहि, या परमट को भूलि ॥

---

१. हैं. ने २. मू हैं. नेत मे ३ मु. हैं. को ४. हैं. नाते मु. जोर्ड
५. हैं- गादी

अरनों परत मग मांझ-दिन राति नित,
प्रात ही ते यामें कांम परें गरमट[१] कों।
लिपत पढत अरु माल की तलासी देत,
लेत में सिथिल करि देत[१] परमट कों।
निरदय है कें, बुरें बोलनों परत, जारी
करत रमन्ना, परें काम झुरमट कों।
'सुकवि गुपाल' लोग देत रहे गालि, [याते
भूलि कें न कीजें कबी काम परमट कौ॥

मीरवहारी : पुरुष उवाच

सब सहरी जासों दवत, अरु लहरी बहु होत।
मीर बहरि के बैठते, गहरी आमदि होति॥

कवित्त

घाट-घाट बीच बड़ ठाठ सों रहत. दूने
दाम लेत तासों, सोई बोलतु अमेंठ सें।
'सुकवि गुपाल' रोकि राखें राअु राजन कौ,
काहू ते न सकें, माल मारें घुस-पैठ तें।
दवत रहत [illegible]र-पार के जवैया लोग,
भोग [illegible]ग्यो करें काम सरें सब मेटतें।
सबही सों पैठ, नफा मिलति इकठ, बडी
[illegible] [illegible] [illegible], मीर बहरी के बैठतें॥

---

१ मु [illegible] [illegible] हो [illegible] ख्यलो होत १ यह प्रमाण मु-
में नहीं है।

स्त्री उवाच

दोहा

हुरमति तेज अरु' हौफ बल, धन बहु घर में होइ।
मीर वहरि के कांम कौं लेय यजारौ सोइ ॥

कवित्त

मारनौ परत है मियाग्नि सौं मूड, बुरैं,
वौलत में यामें, कछु जाइ जस लीजै ना।
'सुकवि गुपाल' जोनी लालौं रह्यौ करें, तौ लौं
गोनक के दांम ने यजारे मांझ दीजें नां।
विद्दति रहति है, सितानी औ" तुफानिन की,
श्राप लगें जाकौं, ताकौ अुतरन दीजै ना।
निसदिन ही जे, वढवार देपि पीजें, याते
मूलिकैं यजारौ मीर वहरी कौ लीजै ना ॥

जमादारी : पुरुष उवाच

मांनत सकल सिपाह, हित, नांम रहत अुद्दोत।
हुकम इलाये[1] बीच बहु, जमादार कौ होत ॥

कवित्त

सदां दरवाजे दरवाजन की चौकी पर
करत अवाजें औ' नबाजें लोग भारी कौं।
'सुकवि गुपाल' सदां गहरे मिलत माल
मिलकि मकांनन[2]के इमरत बारी कौं।

१. मु. इलाके २. है. मु. मौरासित

हुकम रहै भारी,[1]सुनें सबते अगारी बात,
पावें मुपत्यारी, सब काम की तयारी कौं[2] ।
राज दरबारी, बडौ होत तेज धारी, याते
बडौ सुषकारी, यह काम[3]जमादारी कौ ॥

स्त्रीवाच

दोहा

यतने[4] दुख नित होत हैं, जम्मादारी मांझ ।
विद्दति ही में होति नित, सदा भोर ते साँझ ॥

कवित्त

करत सिपाह सिर याके परें आय, नित
रापनी[5] निगाह परैं, नजे नरनारी में ।
गाम के हवाल–हाल सुनने परत नित[6]
कहने परत पुनि जाइ दरबारी[7] में ।
'सुकवि गुपालजू' यलापे बीच चोरी होन
आवै चोट[8]–फेंट गस्त देत चोरी-चारी में ।
छूटैं घरबारी, रहै रात्रि दिन ख्वारी, याते
होत दुप भारी जमादारै जमादारी में[9] ॥

चौकीदारी[10] : पुरुष उवाच

जागो जागो कहत, गत्र जागो[11] जाकी बूझ ॥
चौकीदारी करत होइ, चोर ठग की सूझ ॥

---

१ है मु भारी २ है मासिपाइ हकारी का, मु सिपाह की हुस्यारी को ३ मु है [illegible] ४ मु इतने ५ मु [illegible] करनी मु० करनी निगाह है परत नरनारी म । [illegible] है मु [illegible] ७ है [illegible] में ८ है [illegible] ९ है रात दिन ख्वारी छूटि जात घरबारी, वो दुख रहै भारी [illegible] जमादारी म । मु छूटैं घरबारी [illegible] जमादारी म । १० यह शब्द मु में नहीं है । ११ [illegible] शब्द है ।

कवित्त

मारयो करै माल, ठग चोर औ' डकैतन तैं,
राख्यो करै राजी नित हाकिम दिमांन कौं।
'सुकवि गुपाल' चुगी सब पै लगाइ, और
पराभु ते अगाहि दाम, बतन न आंन कौं।
सेल चमकाय, चपरास कौ झुकाइ, आय
आपने थलापन, मैं आछो मिलै पांन कौं।
देति बस्ती मांन, दव्यो करै हस्ती मांन, याते
बड़ौ मस्तीमांन, यह कांम गस्तीमांन कौं॥

स्त्री उवाच

दोहा

दिल होइ मस्ती मांन पुनि, रह न दुरस्ती मांन।
मन में तस्तीमांनि कैं, होइ न गस्ती मांन॥

कवित्त

चोरी-डाके परैं, मारे परिहौ गुहाल, मार-
बांघ भयैं भारी, रोब कारी मांझ दहिहौ।
गस्त देत गली औ' गर यारन के मांझ आधी-
राति पिछराति कौं पुकारत ही रहिहौ।
देसौ-परदेसिन कौं करत हुस्यारी, बैल-
तेली के लौं बहि, सुध सेज की न गहिहौ।
'सुकवि गुपाल' मेरी बात कौं न गहिहौ, तै
बड़ौ दुख भारी, चौकीदारी मांझ सहिहौ॥

गवाह : पुरुष उवाच

बनि गवाह गुजारि हौं, अबहिं गवाई जाइ ।
कवि 'गुपाल' धन लाइ हौं, तेरे पास कमाइ ॥

कवित्त

लीयैं रहै मन, जन घने रहैं साथ, मिलै
पान-पान आछौ[1] मामले के सम्हरत में ।
होइ सावधानी औ' जबानी साफ होति, यामें
आवति फरेबी, झगरे के झगरत में ।
'सुकवि गुपाल' जाय बूझत अनेक आय,
मानन दवाय सदा चीवन मरत में ।
जीतत अरत, सरकार जे करत, हाथ
दौलति परति, या गवाई के भरत में ॥

स्त्री उवाच

दोहा

होइ[2] चैन पानौं जहाँ तनक फरेबी माहिं ।
याते जाइ गुजारियैं, कहू[3] गवाई[4] नाहिं ॥

कवित्त

बोलि झूठ साँच, गंगा धरनी परनि हाथ,
रहै धक-धक देह काम्पो करै ताई कौ[5] ।
अरजी दीजे[6] पै रहै निकरैं फरेबी जगी–
मानों जेलखानो,[7] चैनमारि होत चाई कौ ।

---

१ है मु. भलो २ है होत ३ है मु. कबहु ४ ग्वाही ५ गु. माई को । ६ मु. दवे ७ मु. जेलखानो

सुकवि गुपाल' मुद्दईते वैर वधैं औ' सदां
को दाग लगै, यह काम बुरवाई को।
चैये चतुराई छल–बल अधिकाई याते
सबते कठिनि है गुजारिबौ गवाई को।

फौजदारी : पुरुष उवाच

करिकैं स्यावति[1] पूंनकी गवाहन कौ गुजराइ।
मुद्दईन कौ देतु है जेलपांन[2] डरवाइ॥

कवित्त

देषत ही होइ वेगि फैसला मुकद्दमा कौ;
जात सुनी बाति वात अरजी कौं लीये ते।
नायव[3] औ' मुनसी ते[4] मिलें घूंस–पन्वरते[5]
जीतें चंग स्यावति, चशारन के जीअेते।
पून करि स्यावति, गवांह गुजराय, नाम
पावै जेलषांनें, मुद्दई कौं डारि दीअे ते।
'सुकवि गुपाल' होत जेते सुष हीयें, सदां
फौजदारी माहि, जाइ नालसि के कीअें ते॥

स्त्री उवाच

दोहा

नालसि कीअे पैं, कहूं पून जु स्यावति[6] होइ।
होइ जरीमानौ परैं, जैलपान मैं सोइ॥

---

१. मु. स्वत्व २. मु. जेहलखान ३. मु. नाजर ४. मु. दो ५. दै
६. पून सुं साबुत होइ।

कवित्त

घूंस लोग पाइ, झुठे परचा सिवाय, हान
हुरमति जाय, यामें चलति न यारी की।
तलबी भअेपं, जात मुसक बंधति, हवाना–
यति में रहें सहै आच दरबारी की।
गवाहन[1] सहिति पून स्याबति[2] भअे, हाल
जेलपानी होत, वान सुनत यझारी की।
'सुकवि गुपाल' यामें होनि मारमारी,[3] यान
नालसि न कीजे कभी भूलि फौजदारी की॥

दीमांनी : पुरुष उवाच

दीमानी में जायकें, जब कोऊ अरजी देत।
स्याबनि[4] गवाह गुजारि कें, जोनि मामलो लेत॥

कवित्त

परचि के पाच करवावन पचास पर्चे,
करि कें अपील, जिन्चिय[5] करत हिरानी में।
श्गप सुपचार, दापलावनि करत, मुगतायों
करें काम, घर बैठेही जवानी में।
'सुकवि गुपाल' मुकदम्मा मे मुद्दई सों
जीतें जग स्याबनि गवाह गुजरानी में।
अैन कौं न जानी, जानें[6] फरेब की बानी, करें[7]
आपनी–बिरानी, देत अरजी दिमानी[8] में॥

१ मु ग्वाहन २–४ मु साबुत ३ बड़ी रुवारी ५ चु जि‍न्‍च ६ मु बासि ७ मु होन ८ मु दिवानी

स्त्री उवाच

सोरठा

कछू न आवै हाथ, सांचो न्याय[1] न होइ कहुं।
पांय[10] पाल लुड़ि जाति, या दीमांनी के गये ॥

कवित्त

महु[1] नहि देपे, जाके[2] चाटने परत पांय,
घूस–परचा के दाम, वहि जात पांनी में।
पायन की पाल लुडि जाति जात–आवत
मुकद्दमा कों हारें ज्वाव दई की जबानी[3] में।
'सुकवि गुपालजू' मुकद्दमा में मुद्दई सों
जीतें जंग ल्यावति गवाह गुजरानी में।
औगन कौ जानी जानें फरेब की बानी, करें।
आपनी बिरानी देत अरजी दिमांनी में ॥

अपील : पुरुष उवाच

नाम होइ जग में, न कोऊ जिदि सकै वहु
आमें दाय धाइ, घर भर्‌यों होइ रीते तें।
परचा समेत ताकौ दाम मिलें परे, होइ
मुद्दई पराव, सब डरें जाकी भीते तें।
'सुकवि गुपाल' अमला के लोग राषे हित,
नित पुस रहें, होइ काम चित चीते तें।
वैधम्‍नि मल्हीन, पोटो फूलि होत डील, होत
पौन कौ सौ चढ़िबौ, अपीलहि के जीते नें।

१. न्याव २. मु. घाउ ३. मु. नहें ४. मु. ताको ५. वृ. मलामी
६. यह प्रसंग है मु. में नहीं है।

स्त्री उवाच

कवित्त

भील सौ कुचील चील सग मडरानों फरै,
घर में न कील, रहै दुख में पगतु है।
लगें वहु ढील, हारे पील न मिलति, परी
करनी सफील, हारें भूक्तु जगतु है।
'सुकवि गुपाल' हील-हुज्जति के होत, लागें
लील कौ सो टीको, दिनरातिहिं भगतु है।
जात सब सील, दुख पावें निज डील, यातें
पील कौ सौं परच, अपील कौ लगतु है॥

तिलगा[1] पुरुष उवाच

यात तत्व निव माल कौ, रहिं पलटनि के सग।
तिलगान के हुकम कौं, कोउ न करि सकं भग॥

कवित्त

बांधत सगीन सो सगीन रहै रण बीच,
लरत सगीन सग रापे फौज रगा की।
'सुकवि गुपाल' लेकें लापन की भूंजि डारें,
गढ़ें फोरि डारें, मारें फंड़ बोलि जगा की।
डरत कबीन, ज्वाब देत है फिरगीन कौं,
माफी होति, किती तकसीर वर्त्त दगा की।
करें राग रगा, तत्व होति नहिं भगा, यातें
सबही में भली यह चाकरी तिलगा की॥

---

१. यह प्रसंग मु. १ में नहीं है।

स्त्री उवाच

कवित्त

सीप मिलें कबौ न अुमरि बीति जाय, करनी
परति कवाज अँगरेजन के संगा कौ।
बढ़ि के 'गुपाल' ठाठ लै करि संगीन, वारि,
जोरि मुज्यौ करै फंड़ बोलत में जंगा कौ।
बुरे दुप पावें, अेक ठौर न रहन पावें,
देसन भ्रमावें अैरा जानत न रंगा कौ।
कसि करि अंगा, नरनौ परै जोरि जंगा, यातें
बड़ेई अडंगा कौ सु चाकरी तिलंगा कौ ॥

बंदीखाने[1] : पुरुष उवाच

मारि माल सुख सों रहै, दै जुवाव सो नांहि।
मुद्दई को भारे परे, दो आना नित दांहि ॥[2]

कवित्त

भलौ बुरौ[3] करै होति दादि न फिरादि, जाकी
चाहै ताहि लूटै, डर रहत न थाने कौं।
'सुकवि गुपाल' तन हृष्ट[4] पुष्ट होत, पाने-
दाने पुस रहै, नित लेके दोइ आनें कौं।
बोहरे' रु मुद्दई कौं करिकें हिरानें सो
निलान[5] बैठ्यौ रहै नित लेके दोइ आने कौं।[6]
होत है अमाने, माल मारि कैं बिराने, ठौठ
होवह निदानें, सुष पाइ बंदीषाने कौं ॥

1. मु. जेलखाने दो हथियार २. यह दोहा वृ. में नहीं है ३. मु. बुरो भलो ४. वृ. हृष्ट ५. मु. निराने ६. मु. में यह द्वितीय चरण है।

स्त्री उवाच

कवित्त

घूरि परै जनम, करम-क्रिया बने नही
आवति सरम पेट भरत न आने मैं[१]।
जाकौ[२] 'सो गुपाल' ह्या दुरमति जाति तहा
गरत है गात वहु गैरति कमाने मैं।
पोदत सरक, बेधरक न रहत, औ'
नजरिवद हैकै[३] रैनौ परै फंदपाने मे।
मार परै जानैं बैरी परै पाइ याने, अकिलि,
आवति ठिकानैं बदुआ की बदीपाने मैं॥

इतिश्री दपतिवाक्य विलास नाम काव्ये राजप्रबध वर्णन
नाम सप्तदश अध्याय॥ १७॥

---

१ मु आवत सरम भर भरे नहीं आनें म।   २ मु तारी
३ मु है के

अष्टादश विलास

वनज प्रबन्ध[1] : वनजप :

वैश्य रुजिगार[2] : पुरुष उवाच

धन संचय करिके बहुत, राखत बीच बजार।
याते सबही में भलो वैश्यन को रुजिगार।

संमत–कुसमत में राखिलेत लाज, राउ–
राजन की वाटैं बंद करत निसाको है।
या ही ते जगत मांझ मेवा को कहत वृक्ष,
ताते सदा होत प्रतिपाल दुनिया को है।
'सुकवि गुपाल' काम परै सबही सो सदा,
घर भर्‌यो रहत कुवेर को सो ताको है।
बनिज को पाको, धन जोरन मजा को, काज–
करनो को बांको मो बनाया बनिया को है।

स्त्री उवाच

दोहा :

पहिले नरम, पाछे नरम, काम भये करराल।
याते यह बनियान की, शिशन तुल्य है जात।।

कवित्त

जानिके निकस, चाहे सोई [illegible] लेइ,
मानत न नेक कानि–कानि कोऊ ताकी है।
साहू बन्यो रहै अरु चोरी को करत काम,
दिन ही में काट्यो करै गांठि दुनिया की है।

---

१. मु. अथ वैश्य रुजिगार २. यह प्रसंग वृ. में नहीं है। मु. से यहाँ दिया गया है।

'सुकवि गुपाल' बहु जानते को मारे बीन,
काम भये पाछे फिरि जाति आँखि जाकी है।
लार गिरै जाकी, जानि सिडिविडिन ताकी इरै—
—पोकनी सदा की, यह जाति बनिया की है।

वनिज : पुरुष उवाच

दोहा

अबै वनिज कौं जायकैं, उद्यम करिहौं राम।
सब जग जाके करैते पात पियत निज धाम[१]॥

कवित्त

वेद यों कहत, सदाँ लक्षमी रहति बडे
मुपन लहत, बात बनी रहै धज की।
सारत गरज, परजा के दुपी दीनन की
समन-कुसमत, म रापै लाज ?? की।
बडे धनमानन की, कमेरे[२] किसानन की
बिगरि ईसान नफा लेतहू अपज की।
भरे रहै माल, रिन माँग्यौ मिलै हाल, याते
कहत 'गुपाल' बडी बानह[३] बनज की॥

स्त्री उवाच

दोहा

वनिज-वनिज सब कोउ कहै, वनिज करो मति कोइ।
जाकी हानी मार की, बनज करैगो गाइ॥

---

१ है मु जाम जातें मुर मदा न म करत बखान।
२ है म सुकवि गुपाल पर बैठे ही—।
३ मु बात है।

कवित्त

उटि जाय[1] माल तौ रकम रुकि जाय पुनि
घुनि सरि जाइ[2] वहु दिनके भरत[3] मैं ।
होइ जोप्यौ ज्यांन, चैयै टाटरु[4] पत्नांन, घनी
देर न लगति, व्याज भारे के चढ़त मैं ।
आगि पाणी डीम मूसे ससे फौज–फाई डर
चोरन कौ रहत दुकान के भरत[5] मैं[6] ।
कहत 'गुपाल' कछु हाथ न परत वहु
पचि पचि मरत या वनिज करत मैं ।

बहुवनिज[7] : पुरुष उवाच

ब्यापारन के वीच में, वनिज समान न कोइ ।
जो कछु होत किसान के, सो घर याके होइ ॥

कवित्त

रुई के वनिज नफा मिलि जात हाल, नाज–
वनिज अकालन में खोलि देत कोठो है ।
धातु के वनिज में न घुने–सरै माल कोऊ,
पट के वनिज में बिचारत न खोटो है ।
वनिज किराने में ब्योसत अनेक जीव,
तेल–घृत वनिज में धन्यो रहै मोटो है ।
'सुकवि गुपाल' कोऊ कहत न खोटो बहु,
बनिज के करिबे में आवत न टोटो है ।

---

१. मु. है. वूडि जात २. मु. है. सरिजात ३. है. धरत ४. है. मु.—
है. मु. औ' ५. है. धरन ६. मु आगि, पानी, दीम, मूसे, शसे,
फोजफाई डर चोरन को रहन दुकान के धग्त मे ७. यह विषय
केवल मु. में है ।

स्त्रीउवाच

दोहा

रुई, नाज, घृत, तेल पट, धातु किरानन लेत।
ब्याज'र भारे के चढे, यामैं टोटो देत॥

कवित्त

रुई के बनिज पानी–आगि को रहत डर,
नाज के बनिज में नरक बास लेते हैं।
तेली से रहत तेल–घृत के बनिज माझ,
बनिज किराने में प्रदेश डरा देते हैं।
धातु के बनिज माझ जिय को रहत ज्यान,
पट के बनिज में कपट–झूठ केते हैं।
'सुकवि गुपालजू' कहे न जात जेते कहु,
बनिज के करिबे में होत दुख तेते हैं।

नाज बनज[1] : पुरुष उवाच

यौं पत्ता[2] भरि नाज कौं, करत बनिज जो कोइ॥
ता ब्योपारी कौं सदा बतने सुख[4] निन होइ॥[3]

कवित्त

ब्यौमैं जीव–जन्तु, औ' अनेक जीव जीवैया सौं
दूनी होनि नफा कोठे–धाम के भरैया की।
बोहरे–किसान, औ' बिपारी-धनमान जाके
दुवार ठाडे रहैं, यौ खुसामदि करैया की।

---

१. मु मण्डी का रजिस्टार। २ मु धाना। ३ मु नाका नहीं मूल
४, इतन सुख निन होइ।

रहत 'गुपाल' यह अन्न में अनेक धन
संमत-कुसंमत में बात न टरैया की।
पंज को परैया, दीन दुःखको हरैया, याते
सबही में सिरैं बात, नाज के भरैया को ॥[१]

कवित्त

देसन में आढ़ति बिसाहत जिनसि सब,
कोठा पास-पत्ती भरि लेत भाव झंडी के।
अन्न-गुर-चामर-किराने आदि सौंज बहु,
महँगे भजे पर निकासैं राह डंडी के।
जोरि-जोरि धन करैं परच, बधाई-व्याह
ब्रह्म-भोज, नाम, हनुमान-हरि-चंडी के।
'सुकवि गुपाल' प्रजा पालत हैं हाल, याते
दया-धर्म-धारी अपकारी[२] होत मंडी के ॥

स्त्री उवाच

दोहा

बेचन काजैं नाज कौं, बनिज न कीजे कंत।
जीवत देत धिक्कार नर, नरक जातु है अंत ॥

कवित्त

भूपौ-प्यासी देपत में दया नहीं आवै सस-
पेंज में रहत, बेचि सकत नहीं फुरती।
'सुकवि गुपाल' सो अकाल ही कौं देप्यौ करै,
माल घुनैं-सरैं जब रोयो करैं भरती[४]।

---

१. यह पूरा छंद मु. और है. मे नहीं है। यह वृ. मे एक अतिरिक्त छन्द ही है। २. मु. उपकार ३. मु. भरती

बरपा न होइ, भूपे[1] गामन के लोग पों–
उपारि पाय जाय, जब पोंचौ करैं घरनी।
मरनी कपत में नरक जाय, मखनी सो,
यान नहिं कीजै कबौ नाजन की भरनी॥

घी–तेल वनज : पुरुष उवाच

बनिज करत घृत तेल को इनने सुप निन होत।
'कवि गुपाल' नितने गुनौ, हममों बुद्धि अदोन॥

कवित्त

सबते सरस नफा लीयो करे नित प्रति
करि के मिलाजु वेच्यौ करे भड़मारी कों।[3]
'सुकवि गुपाल' जिम्मि कटअू कौ[4] लेन-देत,
मार्यौ करें[5] मजा सो विमानन की नारी कों।
दादत में माल, लाल बने रहे गाल, पान–
पान[6] को मरम सुप होत घरबारी कों।
देह होनि भारी, रप रापन विपारी, याते
होत सुप भारी, घृत तेल के विपारी[7] कों॥

स्त्री उवाच

दोहा

तेल रु घृत के वनज में रहत कुचीलें गात।
लेन देन कटअू जिनमि, निसदिन होजन[8] जात॥

---

१ मु मिनि २ मु घृत
३ मु छाँटि को मिलाय बेच्यो करें नर-नारी को। ४ मु र
५ मु लोलो करे ६ मु दरसान ७ पु धारारी को। ८ मु हैरान

कवित्त

तेली के से पट जामें चीकने बनेई रहे,
मैलौ[1] होत गात सो करत यह पेल कौं।
'सुकवि गुपाल' पैलें दैत परै दाम, पाछे
जिनसि के देन में, लगावत अबेर[2] कौं।
गिरे पैर पाछे, कछू हाथ नहिं आवै, नप
फाँस लगि रहै घेरा नाझ लौं सवेल कौ।[3]
लगन झमेल, मन रहै उरझेल, यातै[4]
कबहू न कीजिये बनिज घृत-तेल कौं॥

नौन बनज[5] : पुरुष उवाच

बिगरै न कबी, सुधरे,—सुधरें मन होइ रहै सुअधौ नहिंकौं।
बहु पाय सकै नहिं कोऊ कहू, परौ पर्न रहै नहिं गौनहि कौं।
सु उजागर है सर आगर मैं, नफा नीयौ करै भरि भौनहि कौं।
कह 'रायगुपालजू' यातै सदा रुजिगार भलौ यह नौनहि कौं॥

स्त्री उवाच

दोहा

छीजि छीजि कैं रहतु है, मन कौ जबै अधीन।
बैठि रहै जब मौन गहि, नौन बनज करै तौन॥

---

१. मु. मैले २ मु. झमेन को। सम्भवतः यह झमेल है।
३. मु. लग्यो रहै याम सदा मांझ लौं सबेल को ४. वृ. उरझेल।
५. यह प्रसग मु. मे नहीं है।

कवित्त

नोन पै न बिक, परै पौनिनते काम महसूल,
लगै घनो, ताप बावै बड़ा बौन को ।
दैनो परै तोलि पै अधीन कौ पचीस सेर,
पानी होन हाल, पुरवाई लगै पौन को
'सुकवि गुपाल' बुरी मौन को रहत नोन
बेचाही कहावै नेक रहनि न गोनकौ ।
गरे गान गौन, बुरो रहै हाट भौन, याते
मत पै नहोन को बनिज यह नोन को ॥

गुरखाण्ड बज[1] : पुरुष उवाच

मीठो मुप सबको रहै मीठो रहै न कोइ ।
भरि दुकान, गुरपांड को, बनिज करनु है मोइ ॥

सवैया

सदा द्योस्यो करै निनरा, गरहो, मुप मीठो रहै मुहजारन को ।
बढ़ै आढ़ति दैत विदेसन मे, बोरे थैला बचे घरबारन कौं ।
हलवायन सौं रहै प्यार घनो, नफा होनि उठै बिचवारन कौं ।
यह 'गयगुपालजू' बजन में सदा बज भलौ गुरपाइह कौ ।।

कवित्त

हाथ-पाॅंउ बगन चिपकनै रहत, माषी
भिनिरि-भिनिरि करि पाजे जात उर कौं ।
धरन अुठावन मे, पाजे जात लोग जाट,
बानिजोन हो में सीधो जात लोग सुर कौ ।

---

१ यह भी मु म नहीं है ।

'सुकवि गुपालजू' दिसावर कों लेत प्रान,
सासन ही जात भाउ ताउ लेत धुर कों।
वड़ो रहै डर, जाय मर्के नहि घर, याते
भूलि के न कीजिये, बनिज पाउगुर कौ ॥

रुई बंज : पुरुष उवाच

सकल किसानन बजई,[1] आवत कबहुँ न लंज।
करत रुई के वज मे, दामन के हौंइ गंज ॥

सवैया

व्यौसत है जासों ओटा अनेकन,[2] होइ कबौ पटकौ न सुई कौं।
काटि कपास किसानन तेऽहि, डाटिके लेत नफा सबही कौं।[3]
(कवी)लादिचढावै दिसावरकों,तब[4] बेचत बज लगै न कोई कौं।
'राय गुपालजू' बजन में[5] सबही मे भलौ यह बंज[6] रुई कौ ॥

स्त्री उवाच

दोहा

याके बदलत भाव में, टोटौ आवत हाल ॥
याते भूलि न कीजिए रुई बनिज विष हाल ॥[7]

कवित्त

व्यौपारी अटैयन कौ रापनौ परत रुप
आगि-पानी-डर नेंक नहीं कहुं छिज में।
'सुकवि गुपाल' पप जोबनी कहत, भाव
बदल्यौ करत, नफा मिलै नहीं रिज में।

---

१. मु. बचई २. मु. जीवत जात है ओटा अनेकन ३. मु काढि किसाननतें मों कपास, हेडायकें लेन नफा सबई कों। ४. मु. तहाँ ५ मु, रान गुपाल है याते मदा ६. मु. रुजिगार ७. यह दोहा वृ. मे नहीं है।

बैठें ठौर धनी, डाटैं जौपै होइ धनी, भाव
जब बढ़ि जाइ लोग आय आइ पिजमें।
जमा जाय छिजि जूती देत भिजि भिजि, दुख,
होत हिये निज, जेते रुई के बनिज में॥

किराने : पुरुष उवाच

दसन में आढ़नि रहनि[१] बादन है बहु दाम।
जीव-जतु न्यौसें बहुत, भरत किरानें धाम॥

कवित्त

आटनि के लोग मान भेजिबौ करत, मिलै
मनमे मरस नफा,[२] माल के किराने कौ।
सुकवि गुपाल जीव ब्यौसन अनेक तिन
जामों दन्यौ करें लोग गफल रखाने कौं
अेक की नफा लै, टोटे अेर पै में देत, हानि
आवनि न बहू,[४] सदा आछे मिलै पाने कौं।
आपने-पिरानें, दाम रहत परानें, वौ
अघाने-पाने होत, घन करत किराने कौ॥

स्त्री उवाच

दोहा

देस विदेसन जाइ यै भरत किराने सोइ।
मंदवारे के किरत में टोटो पामें होइ।

---

१ मू रहै २ मू दाम ३ मू म। ४ मू बहूं

कवित्त

आढति विगरि, कांम सरत न धेक, भाम्रु
रापनी परत, यादि सकल मकाने कौं।
'सुकवि गुपाल' जानौं परें परदेस, माल
भलौ बुरौ दीयें, धूरि परत जमाने कौं।
भेजत में भाल, माल मारत गुमास्ते ही,
आस्ते ही पटै दाम सकल रकाने कौं।
रहत मलाने, वस परत विराने, वड़े
होत है हिराने काम करत किराने[1] कौं॥

वस्त्र वनज[2] : पुरुष उवाच

नअे पुराणे ते सरस, जामें मिलि विकि जात।
वडे वस्त्र के वनिज कौ, याते मन में बात॥

कवित्त

वकुचा लगाइ, वटी सज कों वनाइ, रहै
सीतल सुभाय, कवी रापै न मिजाजी कौं।
'सुकवि गुपाल' सदां संमत कौं चाहै, ड्योढ़ि
धरम के नेकै सदां सारें परकाजी कौं।
छीपी रँगरेज रूप रापत रहत, व्योमै
दरजी–रजक रापैं कोरिया की वाजी कौं।
होति वुद्धि झांसी, जाने मन रहै राजी, याने
वड़े मुप मांजी कौ गुवनज वजाजी कौं॥

---

१. वृ किराणे
२. यह प्रसग मु. में नहीं है।

स्त्री उवाच

दोहा

आप लाभ नी परतु है, देस बिदेसन जाइ ।
ताते पट के बनिज कौ, ऐसौ है दुपदाइ ॥

कवित्त

गरि-सरि जात, बहु धरें भइमरि जात
काटि जात मूसे, मसे देषि पट नाजी कौं ।
सुकवि गुपालजू' बजाजन कौं देत कछू,
मिलनि न नफा रापै गाहक की गाजी कौं ।
सौगंद कौं पाप नफा धरधम ते लेनी परें,
दैनी परें जमा, पाछें आधी गनि साझी कौं ।
लेन राजी-गाजी, पाछें देन यलराजी, करें
यातें बुरी पाजी, यह बनज बजाजी कौं ।

धातुब्रज[1] : पुरुष उवाच

रांग, जस्त, पीतरि, कसौ ताम्र, लोह के गज ।
चांदी, सोनो रहन घर, बरन धात की ब्रज ॥

कवित्त

होत बड़ो धनी, चहियें न ठौर घनी, कैंहूँ
चोज मिलें बनी, भरौ भेस रहै गात कौं ।
'सुकवि गुपाल' मात नगद सो रहै, कोऊ
मागन न आइ सदा मानो रहै हाथ कौं ।

---

१ यह प्रसंग मू. में नहीं है ।

रारे सरे टरे, धरे, जरें, बिगरें न, नफा
मिलति इकट्ठो सो दिसावर के जात को।
होत बड़ी घात, सोनी कसेरे व्यौसान, बड़े
होतहू विष्यात, सो बनज किये धात को ॥

स्त्री उवाच

दोहा

आप लामनी परतु है देस-बिदेसन जाय।
ताते धातु के बनिज को, पैसो है दुपदाय ॥

कवित्त

देत-लेत, धरन-अुठावत, गहावत में
डर रह्यो करै, टूटिबे को पांय-हाय कौं।
'सुकवि गुपालजू' दिसावर के लावत में,
भरत भरावत में, करें प्राण-घात को।
कसेरे-लुहारन, रापने परत रुप, छाति
डिगि जाति है, अुठाअे बोझ राति कौं।
कोअू न व्यौसात, कारे रहें वस्त्र गात, याते
बड़े अुतपात को बनज यह धात कौं ॥

चूनावंज[1] : पुरुष उवाच

राज, कुम्हार, दलाल, पुनि कौंकर-लौंमन-हार।
व्यौसत बहु जन करत में, चूने को बिवहार ॥

---

१. मु. मे यह प्रसंग नहीं है।

कवित्त

प्रीति बढि जाति, यामें राउ उमराउन सों,
चाउन सौ मिले दाम, करै यह हट्टी कौं।
'सुकवि गुपाल' लोग चलन अनेक, याकी
बिक्री लगै पै, हाल सोनौ होत मट्टी कौ।
लेवै-देवै काज को, दिसावरन जानो परै
चोरें पार्यो रहै, याकी बिगरै न गट्टी कौ।
होत झटपट्टी, नफा मिलत इकट्ठी जामें
दाउ-घाउ घट्टी, वज करतहि भट्टी कौं॥

स्त्री उवाच

दोहा

हट्टी घर की छोडि मन, रह भट्टी क माहि।
जमा चकट्टी चाहियै, या भट्टी के दाइ।

कवित्त

बच्चे रहै जौपै, तोपै मारे जाइ दाम,
असवारी है सबै न, रज चढनि मगज कौं।
'सुकवि गुपालजू' न पावत भरावन मैं
पेय पायौ करैं, वस्त्र रहत न गज कौं।
होनि-होनि रहै, हत्या हजारन जीवन की
कौम नीच जानिन सो रहै जिय झमको।
जानि रहै धज, होनौं परै निरलज यातैं
सबही मैं वज कौ बनिज तन पज कौ।

---

१. मु में यह प्रसंग नहीं है।

लीलवज : पुरुष उवाच

बीज गादि कौं काटि कें, नफा घनेरी लेत।
करन लील कौ वज, होइ अँगरेजन सौं हेत॥

सवैया

कबी ढील लगै नहि बेचन में, सदा देस-बिदेसन जात चल्यौ है।
अँगरेजन सौं रहै प्यार घनौ, करे कोठी ते दीसें प्रताप बन्यौ है।
काढि कें गादि, दिसावर ते, भरि बीज में लेन नफा सगरो है।
'राय गुपालजू' याते सदा सबमें, यह लील कौ बज भलौ है॥

स्त्री उवाच

दोहा

देत-लेन छूवत-छुअन, पाप लगत तन मंजु।
वेद पुराणन में कह्यौ, अधम लील कौ बंज॥

कवित्त

स्वपच, गमार, जिमींदारन ते काम परै,
बड़ौ पाप लागै पेत हैकें जो निकरियै।
'सुकवि गुपाल' रुपै पैलै-पाय बैठे लोग,
बाकी रहै जिनसि किसानन ते डरियै।
कूबा-यह बच्चा, कोठी करिबे कौं चाहै दांम,
नफा मिलै जबही, दिसावर कौं भरियै।
कारे कर करियै, औ' बामन ते मरिए, न-
याते भूलि लील कौ बनिज कहूं करियै॥

---

१. म. में यह नहीं है।

बौहराके[1] : अठवरिया : पुरुष उवाच

जुर्यो रहतु है जोहरा, सारि सोहरा काम।
ब्याज चौहरा आवही बौहरन के धाम॥

कवित्त

पान लब्ब माल, नित देह रापै लाल, बने
लाल र गुलाल, रहै रापि आनि-कानिया।
'सुकवि गुपाल' बहु जानि को ज चाहै दाम
उछतन न देइ ब्याज चौगुनी के पानिया।
हिये दया, दान, सदा रहत अमान, जैसे
बौहरे दलेल अठवारी नदवानिया॥[2]

स्त्री उवाच

सोरठा

लेन आपने दाम, तिरिया वपत न देहपी॥
पारिन पानी राम, कबही अठवरियान सों।

कवित्त

दया नहि जाई, सो कमाई करि लेन दाम,
डोलै गाम-गाम, दरि रहै बडी मोटी है।
'सुकवि गुपाल' नित कुटन के सग बैठि
तिरिया-वपन, पाय सपनु न रोटी है।
बोलै-बुलराये डरै पटन है दाम तन,
सिर को पसीना आवै येडी नख चोटी है।
सब कहै पोटो, दूरि होउ किनि रोटी, सदा
याते यह जानि अठवारिया की छोटी है॥

---

१ यह प्रसंग मूल में नहीं है। २ यह छंद खंडित है।

बौहरे[०] : पुरुष उवाच

मनैं करे तैं वनिज ते, करै बहुरगति नारि ।
ताकौं अब बरनन करूं, सुनि प्यारी सुकमारि ॥

कवित्त

जोनि सुप होति, बिन कर्मेई कमाई होति,
जग में उदोत होत भरम अपार है[१] ।
आनिकानि मानें, सब जन सनमानें, धन—
मानें रहै यातें, सुप यांनि कौं सदां रहै ।
कहत 'गुपाल' बूझें[२] होइ सब आगें पाछें,
लोग बहु लागें, घेरें रहै घरबार है ।
रापें सब प्यार, कबौ आवति न हार, यानें
सबमें अगार, बौहरे कौ रुजिगार है[०] ॥

स्त्रीवाच

सोरठा

पहले घर धन देअु, पुनि[३] घर घर मांगत फिरौ ।
मोते सुप सुनि लेउ[४] कबहुँ न कीजै बहुरगति ॥

कवित्त

भारी करैं घेर[४] जाइ देइ न उधारी, जाइ
मरम ते मार्यो चोर भैं ते तन छीजियै ।
चित में न चैनौ होत, पर हाथ दैनौ होत,
नैनौ होत मन-धन देषि देषि जीजियै ।

०—मु. बहुरगति को रुजिगार
१. है. मु होत/होति
२. है. मु. यह पंक्ति इस प्रकार है
"आवत न हार धन बढ़त अपार यानें
सब ते अगार बौहरे को रुजगार है।"
३. है फिरि ४. मु. चौर

बोलनो परत बुरे, डोलनो परत घरे,[1]
बहुत 'गुपाल' याते काहू सों न धीजिये ।
दीजे न अुधार, होत मागत में रार, याते
भूलि रुजिगार बोहरे सों नहिं कीजिये ।

ग्रामबोहरे[2] : पुरुष उवाच

आसामिन की बजई, भरिकें निज घर नाज ।
गई गाम के बोहरे, करत रहत हैं राज ॥

कवित्त

नअे औ पुराने[3] नाज भरे रहें जाके,[4] औ'
हजारन असामी आय परे रहें पास में ।
लेन-देन जिनमि में, परत सवायो, परै
धरम के दूने, दाम भयो करैं धाम में ।
'सुरति गुपाल' कभी पामी न परनि,[5] सदा
नाम बर हैरें बैठ्यो रहत अराम में ।
आय निज धाम, सोग करैं रामराम, होत
अैसे सुप-धाम, बोहरे की गई गाम में ॥

स्त्री उवाच

दोहा

छाती पै चढ़ि लेतु है, दाम सरेन को[6] मारि ।
अैसे जो बोहरेन[7] सों, जीवो है धिरकार ॥

१. मू. परै २ मू गामन को बहुरगति । ३ मू पुराने ४ मू नारे
५. मू सुरति गुप न जाएं पामी न परनि कभूं । ६ मू नामी-नर
७ मू ... घर भर करि लेत है, दाम नरम को मार । ८ मू
बहुरन का ।

कवित्त

ब्राशु हाशु करि लाशु–लाशु में लगेई रहैं
पाइन–पवामें, गहै परच कौ पाछौ है।
सादी औ' वधाई में निपट रापें नैनौ मन
पुन्य के वपत कौ भगर भेप काछौ है।[1]
कहत गुपाल जोरि–जोरि धन धरे, अेक
कौडी काज मरे, मरें परें जब वाछौ है।
पात गर्यौ–सर्यौ, पर्यौ पौन के तरे कौ नाज,
अैसे वौहरेन ते कँगालपनौ आछौ है॥

आसामी[3] : पुरुष उवाच

पोता के परे पे, पटे सबते पहुत रुपे,
परच औ' पादि, पामी परति न कामी कौ।
देवे औ' कमायवे कौ, लालौ अेक रहै, और
रहत न डर, काम चलत हरामी कौ।
'सुकवि गुपाल' बोझ याही के रहत सिर,
सादी औ' वधाई वर बाहर औ' गामी कौ।
होत बड़ौ नामी, कवि परति न पामी, अेते
सुप होत मामी वौहरेन की असामी कौ।

स्त्री उवाच

दोहा

देत में सवाअे, व्याज लेत में सवाअे, जिसि
पेत में सवाअे, सो सवाअे पादि गनियैं।
और कौ 'गुपाल' लेन देत नहिं माल, दूजौ
लैवे कौ उधार, हौन देत नहिं धनियैं॥

---

१. मु में यह पंक्ति इस प्रकार है—'बड़ौ धन जोरि कै जगत में अजस लहै, जिकिर फिकिर बीच मन जाय काछौ है।' यह पंक्ति मु में तीसरी है। २. बृ. बीज। ३. यह प्रसंग मु में नहीं है।

बिमो–बेल–डारौं–द्रुम–रुप, घर–घर नीगें,
पात–पियन में (जाकी) छाती जगी जाति घनियै।
दाम इटे पामी, हाल परिजात साम्ही, याते
भूनि कै असाह्‌मी, बौहरे की नही बनियै॥

लदैनो[1] : पुरुष उवाच

ब्योहरेन के दुख कहे, प्यारी चतुर सुजान।
अब सु लदेने के कहै, सुख सुपान गुणमान॥[2]

कवित्त

आपनो–परायो धन रहयो करै हाथ, मग
माथ हा में परत पराउ सदा डैने को।
नायक कहावै, औ' किराने लादि लावै, भारी
भरम बढावै ओ' रहै न डर देने को।
खाय न ठगाई, चतुराई तै कमाई, द्रव्य,
आवै माल बिकरी खरीदि करि लेने को।
कहत 'गुपाल कवि' मेरे ज्ञान मेना याते,
सबही ते भलो रुजिगार है लदैने को।

स्त्री उवाच

सोरठा

कबहुँ न रीझे नाह, भूलिहु या रुजिगार को।
निशि दिन चार्वराह, सबते दुखी लदैनिया॥

---

१. यह प्रसंग ग्रं० में अलग विभाग (दुकान प्रबंध) में है। पर विषय की दृष्टि से इसे यहीं रखना चाहिए। ग्रं० प्र० तक इसी विभाग के अन्तर्गत है।
२. ग्रं० में यह सोरठा इस प्रकार है—
'प्यारी चतुर सुजान दोउन के सुख कहे।
सुखद वनिज गुन आन, करत लदैनो आन कै॥

कवित्त

भूमि मे शयन, निशि-रयनि खराब होति,
बोलनो परत झूंठ-सांच लैने दैने में।
चिता नित रहति, जिनमि घटि वढ़िवे की,
जिय जोख्यो ज्यान को रहत डर टैने में।
देश-परदेशन में डोलनो परत, मैले
भेस ही सो सहनो परत नैव धेने में।[1]
कहत 'गुपाल' कवि आढ़ति विना तो होत,
दिन-दिन दूनो दुख दुसह लदैने में।

काठकौवंज[2] : पुरुष उवाच

लगी रहै विकरी सदां, होत दाम के गंज।
सब वजन के बीच में, भलो काठ कौ वंज॥

कवित्त

लट्ठा-सोठि-पठा नये आवत दिसावर तें,
मिलें जमां भारी कारषांने ते अरज में।
'सुकवि गुपाल' जामों ब्यौंसें वेरे वारे, वहु
बढ़ई-मजूर, कांम करत भरज में।
जग के किमांमी, रुप रापत रहत, होत
सबही कौं सुष जाकी सहज जरज में।
मिलत करज, जाते सरत गरज, कहीं
होति न हरज, कवी काठ के वनिज में॥

---

१. वृ. टैने में
२ यह प्रसंग मु. है. में नहीं है।

स्त्री उवाच

दोहा

दामन में पामी परै, घुनें-सरै जो माल ।
रहत सदा बेहाल ते, करत काठ की टाल ॥

कवित्त

हाथ रहै दाम को निपारिन ते काम परै
घुनें-सरै धरैं जमा याम हाल छीजियै
रातिदिन यामें कर्णी परैं रखवारी धर-
थामन-अुठावन में नित तन छीजियै
तोलत-तुलावन में, गिनत-गिनावत में,
व्यापारी मजूरन ते मन न पतीजियै ।
बुरो रहै हाल, औ' पुमीसी रहै पाल,
याते टाल को 'गुपाल' रुजिगार नहीं कीजियै ।

पत्थर वज[1] : पुरुष उवाच

गरै, सरै, न घरै, कहूँ, डर न चोर को होइ ।
याते वजन में भलौ, यह पत्थर कौ जोइ ॥

कवित्त

रापै हित भारे पानवारे गाडवारे होत.
कारपाने शारन सो वूम भोर-गज मैं ।
'सुकवि गुपाल' कबौ बिगरै न माल, हाल
होतु है निहाल, राअु राजन के रज मैं ।

---

1 पत्थर...(अस्पष्ट) मु है भ नगे है ।

चाहो तहाँ रहो, माल कहूँ परयौ रहो कछु
नालो न रहत, मज रहैं तन मंजु में।
मिटै सनपज, कबी आवति न नज, होत
दामन के गज, नदा पत्थर के धंज में॥

स्त्रीउवाच

दोहा

इनअुन इनन होन निन मदा भो मंज।
याही ते सबमैं बुरो यह पत्थर को बज॥

कबिन

पानि, गटमांन, कारपांनन पै जांनो परै,
होन जिय ज्यान, याके देत नेन छोजे तें।
राजसो 'गुपाल' कारपाने बहु चर्ने तब,
पावै नफ यामें, घूम अुस्तन के दीजे ते।
हरयौ रहै मन, माल भरयौ रहै जहां, मूड़
मारनौ परन मोल तोल माझ बीये ते।
नगरि के मिन्दि पै बहत्तरि को पर्चे मन
पत्थर सो होत बंज पत्थर को कीजे ते॥

इनिश्री दंपनिवाक्य बिलास नाम काव्ये यतज प्रबंध बर्णन नाम
दष्टादश बिलास :

ऊनविंशति विलास

दुकान प्रबंध

दुकानदारी : पुरुष उवाच

दोहा

करि दुकानदारी अबै बैठूं जाइ बजार ।
धन कमाइ सुख पाइहौं प्यारी या संसार ॥

कवित्त

राखन समान यामें, घटनि जमा न, करै
सबही जखान साचौ जानि न जबान को ।
आवन न हानि, भनौ पात पान पान, करि
सिवजू को ध्यान, सुखै हरि चरनान को ।
कहत 'गुपाल,' जानै मान अभिमान बहू
पायकै नफान, नाम करत जिहान[2] को ।
भिक्षुक दान, बहु आवत मयान यामें
होत धनमान पैसो करत दुकान को ॥

स्त्री उवाच

दोहा

मत दुकानदारी नफा, जाको[3] यामें जानि ।
करत दुख भारी रहै, बैठक करि दिन रानि ॥

---

१ [यह पूरा प्रबंध मू में नहीं है। इसमें से कुछ दुकानों का उल्लेख] 'वनिज प्रबंध' के अन्तर्गत है। २ है मू [illegible] ३ मू [illegible] ४ है [illegible] ५ है मू [illegible]

कवित्त

मारी[1] मार करें दिननानि सिरकारी लोग,
सौगुनौ भरम धरें आमदि की बारी में ।
मारी जाय रकम, बिना लियें सुधारी देन
बाकी रहि जातु है, लवारी नरनारी कौ ।
कहत गुपाल चौकीदारी, जिमींदारी कौ
भिषारी लोग लाइ प्यारी करत लिवारी कौं ।
आवन अबारी, पैंडौ देवें घरबारी, सो
कह्यौ न जाइ[2] भारी दुष या दुकानदारी कौ ।।

सेठ की दुकान : पुरुष उवाच

दुज दीनन दीबौ करै, देनि दछना दान ।।
सेठन के धामें गुनी, साध संत सनमान ।।

कवित्त

देसन में नाम, जीव जोमें धाम-धाम, गाम-
गामन में कोठी राखें राजा रहें दब ते ।
मंदिर-मकान, कुआ-बावरी बनावें लाल,
मंद्र-सदावर्त्त, पुन्य दान होत दबते ।
'सुकवि गुपाल' राखें राजन के त्यौर, गादी-
तकिया लगाय, बैठे रहें सदा छबि ते ।
बनजें करोर, आई-गई कौ न छोर, सदा
याते सरबोर, बात सेठन की सब ते ।।

---

१. है. मार २. है. नु. आय धनवारी नाही बर बिपारी (नु. ब्यापारी) कौ । ३. है. नु. जात

स्त्री उवाच

दोहा

कवि–कोविद, द्विज दीनजन, जाचिक लोग अनंत।
सेठनि कों घेरें रहें, भिक्षुक संत–महंत ॥

कवित्त

चोरी–डाके परिवे को डर रह्यो करै, नित
चढ़ते भरम चिंति पावत न चितहीं।
सेठि कों बिगारि, बनि जात हैं गुमासते
अनेक रोग लगें, भावै भोजन न हितहीं।
'मुकवि गुपालजू' दिवाने निकरे पैं, कोठि
होति बरबाद धन जात जित–तितहीं।
चितहीन भयें, कोऊ कितहीं न बूझें, ऐसी
बिद्‌दनि रहनि, सेठ–साहुन की नित हीं ॥

गुमास्तगीरी : पुरुष उवाच

मारयौ माल करै सदा, सब सों करि घुसपैठ।
सेठनि के सुगुमास्ते, होत सेठि के सेठ ॥

कवित्त

मनके बढ़ै पैं बनिजान हात यामें, आप
हुकम चलाइ काम करयौ करैं औमनें।
जेती जमा जावे, सब हाथ में रहनि, काम
निकरें अनेक, सदा रहत हुलास नें।

'सुकवि गुपाल' रहै धन की न कमी कहूँ
जाकों सदा धनी दर माह्यों मिलै पास तें।
रहै विसवास नै, 'औ' टरै नहिं पास तें,
सु यातें भोगैं सेठ साहून के गुमासतें॥

स्त्री उवाच

दोहा :

रचि-पचि सेठि' र साहू कौं, कितौ करौ किनिहित्त।
तऊ गुमास्तन कें रहति, सिर बदनांमी नित्त॥

कवित्त

आढती अनेकन कौं लिपने जवाव परैं,
होतहू पराव धन देत लेत चाहू कौं।
'सुकवि गुपाल' रजनामे अरु पातन मैं
करि जमां पर्चे समझाये होत दाहू क।
पैठ पर पैठ वहु हुंडिन सिकारत्त मैं,
जात दिनरैनि लेपे में सब जाहू कौ।
सेठि अरु साहू, केती करौ क्यों न चाहू, यातें
भूलि कें न हूजियै गुमास्तै सुकाहू कौ॥

जौहरी पुरुष उवाच

सोरठा :

जौहरीन कौ कांम, सेठ वने वैठे रहैं।
भरे रहैं धन-धाम, वढ़त[१] भरम यामैं घनौ॥

---

१. है. वढै; सु. भरम बढ़त यामे घनौ।

कवित्त

पन्ना, पुषराज, मोती, मूगा, मनि नाना भाँति,
हीरा, लाल, चुनी[१] नगर वान सुघाट के ।
सौने अरु चादी के गराअु जरे जेवरन
जगर-मगर जोति[२] जहा होनि बाट के ।
जौहरी कहाय, अुमगाय बनि बैठ रहे,
अैस करि सदा, सुप लीयो करें पाट के ।
'सुकवि गुपाल' रहे सपति के ठाठ, याते
कहे नहिं जात, सुप जौहरी की हाट के ।।

स्त्री उवाच

सोरठा

जौहरीन की हाट, बातन ते नहिं होनि है ।
करे श्रोर की बाट,[३] तब पावै यामें नफा ।।

कवित्त

देपिकैं सुकम्मा [illegible] पाय जात हाल, पर-
पत जवारायति मे नजरि के सामहे ।
गरज न करें, नित विकरी न करें, घनी
गाहकी न करें,[४] घटे ज्यौं के त्यौं न दाम है ।
मोल लेत-देत यामें जोप्यो रहै बडो सदा,
'सुकवि गुपाल' यह कहियत नाम है ।
रहनि न माम, सुस्तो रहै आठो जाम, याते
मन में निकाम, यह जौहरी को काम है ।।

---

१ मु चुन्नी २ मु ज्योति ३ मु करि ओरन की काट ४ मु
है करै

कलावत्तू : पुरुष उवाच

बने ठने[1] बैठे घने, लेत दाम निज धाम ।
कलावतू के बटन कौं, है अुमराई काम ॥

कवित्त

बड़ो तौल–मोल, अुमराई रायें डोल मोल,
नेन–देत माल धरि देत हाल हत्तू कौं ।
'सुकवि गुपाल' यहु करत कमाई, नफा
मिलत सवाई जमि बैठे अगर-धत्तू कौं ।
आपने[2] अधीन बने रहत अमीन बीन
होई' के मुखीन, खायो करै भात सत्तू कौ[3] ।
होत मदमत्तू औरें करि देत अुत्तू, आप
होत बड़े वत्तू, काम करि कलावत्तू कौ ॥

स्त्री उवाच

दोहा

देह सकल रहि जाति है, सदा आठहू जाम[4] ।
याते कठिन 'गुपाल कवि' कलावत्तू कौं काम ॥

कवित्त

जाति जिय सत्त, याको महनति अति, देह
लटति घटति भाव माल के डटत में ।
इत–अुत चलत में हारि जात हाल हाथ,
होत नहि आछो कांम चित के बटत में ।

---

१. मु. बने २. मु. अपने ३. मु. [किवी कमी न रहनि, जमि बैठे मगर घत्तू कौ । ४. मु. याम

'सुकवि गुपाल' चलि चूतर औ' रग जानि
नारि रहि जाति, ऊँचे नीच के उठत में।
रोम श्रुपटत, दाम हाल न पटत, जोति
नैन की घटत, कलावन्त के कटत में॥

हुंडीभारौ : पुरुष उवाच

हुंडामनि लै हौं बहुत करि हुंडी की हाट।
आढति देस विदेस करि, धन के करि देउं ठाट॥

कवित्त

नगरौं करै आढ, देस देस की खबरि, औ'
भंडार भर्‌यौ रहत कुबेर के समाने कौं।
बाढत भरम जमा डारत अनेक¹ दाम,
सिकारत हुंडी दाम पटत जबान² कौं।
'सुकवि गुपाल'³ दाम दाम लेइ हुंडामनि,
ब्याज पाइ दाम गनि देय मता धान कौं।
होत⁴ धनमान, सुप पावत निदान कह्‌यौ
जान नहिं आन, सुप हुंडी की दुकान कौं॥

स्त्री उवाच

दोहा

रातिदिना यामैं घनौं, रहत परच कौ काट।
हुंडामनि की हाट में, धन होइ बारह बाट॥

०—यह प्रसंग मु में नहीं है।
१ है अनेक २ है जबान ३ है गुपाल ४ है [illegible] ५ [illegible] है
म मार्गों के रूप में है।

कवित्त

चाहियै गुमास्ते' रु आढनि अनेक ठौर,
दैनी परै चिट्ठी लिपि रगडे जिहांन के।
करिकैं फरेबी, झूठी हुंडी लिपि लावै, तब
मारे जात दाम, बिन दीजे ते जमान के।
'सुकवि गुपाल' देस देसन में फैलै दाम,
बडी कठिनाई तै, यकट्ठे होत आनि कै।
रहै न यमांन तो दिवाली कढै हानि, कहे
जात नहिं आन दुप हुंडी की दुकान के॥

हुंडाभारौ° : पुरुष उवाच

आढ़ति देस-विदेस मैं, धन के रहतह ठाठ[1]।
भरम धरम बाढ़त घनौं, करि हुंडामनि हाट॥

कवित्त

देसन में आढ़ति औ' बाढ़त है दांम नांम,
होइ गांम गांम कांम करत इमांन में
'सुकवि गुपाल' बहु बेचत में बीमा, सो
बिपारिन ते माल, मारयौ करत जबान में।
आवत सयांन, देइ दैव मनमांन, होइ
हियैं हरि ध्यांन, मति रहै दया दांन में।
चाहियै जमांन दव्यौ करति रकानि[2] सुप
येते मिलें आंनि, हुंडा-भारे की दुकान में।

°— मु. हुंडाभारे की दुकान
१. है. मु. रहत मुठाठ २. है. मु. रकान

स्त्री उवाच

दोहा

वहु बीमन के बीच ते, धन होइ बारह बाट[1]।
हुंडा-भारे की कबहुँ, करो न याते हाट[2][3]॥

कवित्त

ठौर ठौर कर वहु रापने परत नर,
बिद्दति की भर है तलामी जोमबारे[4] कौं।
बीमा के करत होत धक्कर-पक्कर[5] जिय,
चिंता रहयौ करें, नित[6] सांझ लौं सवारे कौं।
'सुकवि गुपाल' नाव डूबिबे की भय, चोर
लूटि औ' पगोटि डर अगिनि के जारे कौं।
मन जाय[7] मारे, माल पहुचे न द्वारे, तौलौं
रहै भय[8] भारे सदा हुंडाभारे वारे कौं।

दलाल : पुरुष उवाच

बातन को रुजिगार, दाम लगै नहिं गांठि को।
याते 'सुकवि गुपाल,' करहु[9] दलाली जाइकैं॥

कवित्त

नहीं रगै-दगै, दाम गाठि को न लगै, जाहि
जानें जगै-जगै, यामें भागि जगै भल को।
जान जित-जित, नित-तित नित प्रति हित[10]
करत रहत मेल सदा ही बजाल[11] को।

---

१. है. मन, मु. बैनन धन हो बारह बाट। २. है याते कबहुन कीजिए हुंडामन की हाट ३. मु कीजै कहूँ न हाट। ४. है. मभारे की ५ मु. धुकुर पुकुर ६ मु निज ७ मु है रहे ८ है मु दुख ९. मु. करहुँ १०. मु. जात नित-हित नित प्रति मान मेनहित ११. मु बजार को।

मनमानें जिनमें, मजे में मजा मारें औ'
मुल्यामत[१] में मोल मह[२] मागयौ मिलै माल कौ।
मुकवि गुपाल[३]' यामे बन्यौ रहै लाल, होत
हालहो निहाल, ऐसौ करत दलाल कौ॥

स्त्री उवाच

दोहा

'राय गुपाल' दलाल की मोते सुनौ हवाल।
चाल-चलै अलादली, भूम्यौ करत बेहाल॥

कवित्त

रहत बिहालौ, औ' जजालौ में परत मन
लागै इदजाम बिन करत हुल्यालो[४] कौ।
सौदा के लिवावत-दिवावत हिरान होत,
आदिमी कुचाली ते खराबी फेरा-फालो[६] कौ।
'मुकवि गुपाल' दाम देत आजकाली करें,
गारी[७] दे, बिपाली[८] कांम करें, छलछाली[९] कौ।
चलै चल-चालौ, कबौ रीतौ कबौ पालौ, यह
होत नहिं हालौ, कांम कठिन दलालौ कौ।

आढ़ति : पुरुष उवाच

निसदिन ब्योपारीन की, आढ़ति काढ़ति कांम।
माल मारि लावै घनौं, लहरि अुडावै धांम[१०]॥

---

१. मु. मिल्यावत २. मुहै ३. मु. है. 'चहत गुपाल'। ४ मु. और जालौ मे परत मन ५. मु. हुल्यारी कौ ६. मु. फिराकारी कौ ७. मु. है. गारौ ८. मु. बिपारौ ९. मु चलचालौ कौ।
१०. है. कै लाल बनि रह्यो नर्दनिसा करत निजधाम।

कवित्त

तोलन मे जाकें सब चीज आय रहै भाउ
नाउ की पवरि लाग्यो करे आठो जाम मैं।
थान को जु माल मो वलायति में विकै रह्यो
मह्यो सस्तो लेकें भरि लेत निज धाम मैं।
सुकवि गुपाल[1]लेत देत में बिपारिन सों[2]
मार्यो करै माल नित[3]बैठ्यो निजग्राम[4] मैं।
सरै सब काम होन देसन में नाम वहु
बाटत है दाम सदा आढति के काम मैं॥

स्त्री उवाच

दोहा

लेपे के ममझाव ते, मूड मारनों होइ।
आढति वारे की[5]सदा, बहुत परावो जोइ॥

कवित्त

माल लिपवाइ, पटवाइ दाम देनें परें,
भरवाये माल दाम मारे परें किननें।
भंगें औ' बिपारिन को चैये ठोर घनी, लोग
पान-पान-मिस्री-भाज[6]घेरे रहें तिननें[7]।
भलो-बुरो माल, आप रापनो परत, हाय
पाव रहि[8]जात, जिस्मि[10] तोलन है जितनें[11]।
'सुकवि गुपालजु' कहे न जात जिननें
मदैनिया की आढ़ति मैं हैन दुप तिनने॥

---

१. है वेंचें २. है. कहत ३. है गुपाल ते ४ है. सदा ५. है निज ग्राम ६ है का ७. है घेरें सु मेत ८ है जितने ९. है. टूटे १०. सु है. माल ११ है सु इतने

तमोली : पुरुष उवाच

पाइ–पांन परिधान सजि, बैठूं[1] पान–दुकान ।
करि मयांन, धन मांन बनि, सबको रापौं[2] मांन ॥

कवित्त

राच्यौ रहै मुप, बहु पावै जामें सुप, बड़े
लोग रापैं रुप, वात बनी रहै तोली की ।
ग्रादर ते आवै, जामें आमदि अधिक, ब्याह
सादी औ' वधाइ, वरपोत्सव औ' होली की ।
'सुकवि गुपाल' बनि ठनि मेला[3] ठेलन में,
देप्यौ करै सैल कौं, लगाइ ग्राड़ रोली की ।
पोलि आगें ढोली, वानि वोलि कें अमोली, नफा
लेत महुँ वोली, हाट बैठि कें तमोली की ॥

स्त्री उवाच

दोहा

'कवि गुपाल' याते अबै, करि न तमोली हाट ।
रहिहौ जोवत राति–दिन, गाहक ही कौ बाट ॥

कवित्त

देपे बिन, पान गरि जात, सरि जात, जामें
जात जमा जोपै न समार[5] करैं ढोली कौं ।
डूबि जात इस्क में, मुहात नहीं घर जाकौं,
लागि जाति द्रष्टि, कहूं काहू मिठबोली की ।

१. है. बैठों २. है. रापन ३. है. मु मेले ४. मु. मुहैं ५. मु. संभार

'सुकवि गुपाल' वाकी पटति न हाल जाकी,
मानें न बजार में उधार नेंक ताली की।
मगन की टोनी,[1]डारयौ करैं बाली-ठोली याते,
करियै न हाट पिय कबहू तमोली की॥

गधी : पुरुष उवाच

गधी कौ रुजिगार यह, आछौ है जग मांझ।
सबहू सुगधित करतु है निसदिन भोर' रु सांझ॥

कवित्त

राजु-अुमराअुन सौं, बडे सेठ साहुन सौं,
होन[2]पहचानि, कर ज्वाब मलमधी कौं।
गनी औ' गरयारैं, हाट-बाट, पुरद्वार, हरि-
मंदिर बहारैं करैं, करिकैं सुगधी कौं।
'सुकवि गुपाल' दाम कैंधू गुने हाल होत,
माल के बिके पै, नफा लेत बहु-धधी कौं।
काहू के न बधी, निन रहत अमधी, याते
सबही में'भलो रुजिगार यह गधी कौ।

स्त्री उवाच

दोहा

गधी के रुजिगार की, मदी बिकरी होनि।
फरक्की होइ जो पचहुँ[5]करैं धनहिं[6] सुहोन॥

---

१ डारी २ मु. सूनि ३ मु. रहै ४ है नें ५ मु. तो कद
६ मु. सुघन

सवैया

हालहि जाके परै नहि दाम औ' काम परे न सुधार को धीज ।
काहू के हाथ बिकाइ नहीं औ,' अकाल-दुकान जमो सब छीजे ।
'राव गुपाल' बड़ी कठिनाई ते, यामे कछूक नफा जब लीजे ।
होत नहीं बिकरी वहु धधी की. गंधी की याते दुकानन कीजे ।

अतार[1] : पुरुष उवाच

बैदन सों रिलि-मिलि. मार्यो करै माँगि आप,
होति है हकीम, जानें बैदक की सार कौं ।
चूरन-मुरब्बा, रस-औषधि, अनेक भांति
नीज मचि-रुचि धर राषत बहार कौं ।
हाल ही 'गुपाल' रुपा कौड़ी कौ करत, तन
रहे रुष्ट-पुष्ट प्यार रहे नरनार कौं ।
सारहि सँभारि लेत, नुपन को सार, चैत
क्वारहि में तार भलौ लगत अतार कौं ।।

स्त्री उवाच

सवैया

बिकरी नित जाकी न होवि घनी, पर दुःष्पहि में मन पागतु है ।
गभ पांनीं परै, वहु बैदन ते, दिनराति नुयाहीं में लागतु हैं ।
यह कांम रसायन कौ 'गुगुपाल' सुधार को कोजु न जागतु है ।
दिनराति कुतार-कुतारहि कौ, कबौ तार अतार कौं लागतु है ।

बदनी : पुरुष उवाच

बैठहि लेत घनी नफा, बनी रहति तन जोति ।
करि बदनी के बंज में, निधनी धनी सु होत ।।

---

१. है. और ने २. यह प्रसंग मु. है. में नहीं है ।

सवैया

दैनौं' रु लैनौ परै नहि मान, सु ज्यौंसें दलाल अनेकन जी में।
देश–विदेसन जानौं परै, कवि जोग्यौ' रु मिवपुक आवै न सीमें।
चौठी सगाइ विनाही जमा, नफा वैठ ही लेत जबान की ता में।
नीमें जमें सब बजन की, इतने सुप होत सदा बदनी में॥

स्त्री उवाच

दोहा

दैनी लैनी करत मे, चैन रहै नहि जीन।
धनी होत निधनी तियें, बदना की बदनीन॥

कवित्त

नित–प्रति यामें घर होतु है दलालन कौं,
घटि–बढ़ि सुनत ही तन धन छीजियै।
भाजुन की फवरि, लगावत ठिगावर त,
लिपत लिपावत ही चौठि।त सौं हीजियै।
देत मजरानौं, हलबाजन के सग वैठि,
नफा जानि सब, टोटौ आवै जब पीजियै।
'सुकवि गुपाल' यामें बदनीनि हानि, यातें
भूलि बहू मालन की बदनी न कीजियै॥

तोला : पुरुष उवाच

बोलन सबही प्रीति सौं, अति सनमानत जाइ।
तोलत में तोलान की, छौज मिमें सब आइ॥

कवित्त

जाके त्रिन तोलें, सत्र रुकी रहै रासि, बहु,
बिनिकें बिपारिनतें मार्यौ करै दाम हैं।
'सुकवि गुपाल' माल सस्तौ परि जात हाय
काम परें सब कौ, मुरापें साप गाम हैं।
दोऊ साह बीच, जिस्सि लेत–देत साहन कौं,
महत बढ़ायो करै, निज निज धाम हैं।
बन्यो रहै तोल, जिस्सि आवति अतोल, याते
सब में अमोल, यह तोलन को काम है॥

स्त्री उवाच

दोहा

बिना माल के होन कहुँ, कोऊ न बूझत बात।
डांडी झोला देत में तोला गारो पात॥

कवित्त

घटि बढ़ि दीयें, दोऊ ओर कौ रहत बुरो
कंजुन कौं लेत–देत, रहै डर मोला कौं।
'सुकवि गुपाल' तन रहै घूरिघाना, हाय–
पाऊ थकिजात मुप बोलत में बोला कौं।
भोर ते लै सांझ लग, मिनै छुटकारो नहीं,
लागत है पाप घनों गारैं डांडी, झोला कौं।
कहै बुरबोला, तन नूपि होन कोला, दुग
होतहू अतोला, जिस्सि तोलत में तोला कौं॥

इतिश्री दपतिवाक्य विलास नाम काव्ये बनज प्रबंध वर्णन नाम
ऊनविंशति विलास :

सवैया

चोर सदां नरमें, घरमै नित जोर्यो ते देह छिनों छिन[1] छीजै।
देत'रु लेत वड़ी न नफा, दमरी पर टोटो रुपैया को दीजै।
ब्योसे न जीव' रु जंतु 'गुपाल,'मिले विधि जो नपरो तन छीजै[2]।
देषत ही कों लिफा फो रहै, पिय फाको भलो पै सराफो न कीजै।

वजाजी : पुरुष उवाच

वनिज सराफी कौ तिया, करन न दीनौ मोहि।
करहु वजाजो, तास सुष, वरनि सुनाऊं तोहि॥

कवित्त

वसन हजारन के राषत दुकानन में,
तरह तरह रंग सूत पट साज जे।
दुसमन जाड़े के, गरीवन उधारे देत,
होले-होले लेत दांम, राषत हूं लाज जे।
मिवपक को उपगार, करत उगाहि रास-
लीला करवाय, वहु जोरस समाज जे।
जगके जिहाज, वड़े वड़े करें काज, अति
हिंमिति दराज, सब जग में बजाज जे।

स्त्री उवाच

दोहा

आजी आजी करत दिन, हांजी हांजी जाहि।
या वजाज के वनज सों मेरी राजी नांहि[3]।

१. मु. छिनों दिन २. है. तहां कहा नाम पवाद के बीसे; मु. छीजै
३. है. मु. परन्यो वनिज बजाज को सो सुनि लीनो कान।
कवि 'गुपाल' ताके सुनी औगुन मोते जानि॥

कवित्त

जीव को न पान, सनमान काहू दीन को न,
　　धन के अधीन काम यामें दगाबाजी को।
मांनत न सांच, वाकी वर्क लगै लांच, सौदा
　　लेकें तीनि पाच, नोग करें यतराजी कों।
'सुकवि गुपाल' नित आगे लाय-लाय वहु,
　　डारने परत थान गाहक की राजी कों।
आवत में आजी, घर गये लाजी-माजी करें
　　याते यह पाजी, रुजिगार है बजाजी को॥

परचूनी : पुरुष उवाच

बरन्यौ बनज बजाज को बहुत बात करि बाल।
परचूनी की हाट को, बरिहैं 'सुकवि गुपाल'।

कवित्त

अन्न, गुड़, तेल, बूरो, चामर, घिरत, नोपे
　　लै लै वहु जिनसि, दुकान में भरत है[२]।
चून गिसवामें जाश्री[३] आमें रुद्द आम, परे
　　दाम लं कें देत, पूरे बाट न धरत हैं।
यनतो चहुग मोमा पावत बजार, दया-
　　धर्म-अपकार, भूप मवरी[१] हरत हैं।
धावनि न ऊनों,' मादो करत है दूनों, ऐ
　　'गुपालजू' दुकान परचूनी की करत हैं॥

---

१. ई. बहु
२ मु. धरत
३ मु धात्री

स्त्री उवाच

दोहा

परचूनी की हाट के, कहे बहुत तुम ठाठ ।
ये याके[1] दुष होत हैं, तिनके बरनूं पाट ।

कवित्त

तोलें दिन राति धूरि–धूसर रहत गात,
    दूपे दिनराति चित्त रहै सौज सूंनी[2] की ।
फौज के परें पै, सौदा नांही के करै पै, जहां
    सहनी परति बात, बहुत कपूंनी की ।
'सुकवि गुपाल' बहु माल भरिवे में दीन,
    दुप कौं न देषें, लगें बरषा न शूनी की ।
पात धूनी चूनी, करि महनति दूंनी, याते
    सबही[3] में ऊनी है दुकांन परचूंनी की ।

पसरट्टौ : पुरुष उवाच

परचूंनी करन न दई, करहूँ पसारट जाइ ।
जामें जे सुप होत हैं, सुनि प्यारी चित लाइ ।

कवित्त

सौंज बहु रापें सरय भापें मोल गाहक सौं,
    मांगें सोई देइ, रापै सब की संभारी है ।
रोगी, भोगी, सोगी, जोगी, सबकौ परत कांम,
    महेंगी जिनसि कौडी कारन निकारी है ।

---

१. दु० जे जाके २. है नु० रवि पर्यं हाट दान कहे नव नूनी को
३. है० सबहू ते

कन-कन जोरै धन, जतन अनेक करि,
परचत आज धरनी में पसा१री है ।
अति हितकारी, दया धर्म उर धारी, ऐसे
अति उपकारी, सब जग के पसारी है ।

स्त्री उवाच
सोरठा

सुनहु सीप दै कान, भूलि न करहु पसारहट ।
होउगे[२] बहुत हिरान, अनगण चीजन गणत ही ॥

कवित्त

दावत ढकत ही निहात दिनराति, नित
प्रात ही तें यामें, घर होत है भिखारी कों ।
कौडी की 'गुपालजू' निकारनो परति चीज,
राजी करि, भेजनो परत नरनारी कौं ।
भूलते उदासि होत, धामन ते पास बहु,
सौंजन में हाथ, काम परत नैनारी[४] कौं ।
देह परे हारी, बहु चहै यादिगारी, याते
बडी दुखकारी, यह पेसो है पसारी कों ।

हलवाई : पुरुष उवाच

हलवाई की हाट में [illegible] सब नित, हाट ।
'कवि गुपाल' हमसों अबै, सुनौ सुख्य सब ठाट[५] ॥

---

१ हे मु ढकमार।
२ है उपकारी ३ मु हाग
४ मु सवारी
५ हे मु यह सोभ है पसारे के बरन म [illegible] नाहि।
हलवाई की हाट के गुण सुनाऊँ तोहि ।

कवित्त

नाना पकवांन, सांक, पाकन, तयार करै
स्वाद नित नयो लेन मेवा औ' मिठाई कौ ।
सिरका मुरब्बा बहु सोंजन बनाइ, चाइ–
दूध–दही–घोवा, चोपौ रवड़ी[1]मलाई कौ ।
देसिन ते धरो, नृप देत परदेसिन कौं,
: राषत चहुल सोभा करिकें[2]कमाई कौं ।
'सुकवि गुपाल' करें देह में मुटयाई, याते
बड़ौ सुषदाई यह काम हलवाई कौ ।।

स्त्री उवाच

दोहा

हलवाई की हाट में, घटत द्रगन की जोति ।
छैरकांन के बीच में, बहु दुष यामें होंति ।।

स्त्री उवाच

बालु होवि छीन, यामें रहे बलहीन, नित
देषत मलीन, भेस दीसै तेलियाई कौ ।
भौर धपते में, लेन–देन की रहै न सुधि,
रैनिहू न चैन, डर अगिनि धुआही[3]कौ ।

---

१. मु. दापरी
२. मु. करत
३. मु. है. धुआई

गरज परे पै हाल बिकाइ न माल, पिय !
'सुकवि गुपाल' ऐसी करत कमाई कों।
नैंन हीनताई, करै बस्त्र चिकनाई, याते
बड़ी दुपदाई यह कामहलवाई[1] कों।

कसेरे[2] : पुरुष उवाच

हलवाई की छोडि कैं, करहु कसेरट जाइ।
जामें जे सुष होत हैं, सुनि प्यारी चित लाइ॥

कवित्त

रापत अनेक चीज, चोखी सब धातन की,
थारी, बेला, लोटा, भरे भौन बामनन के।
पूरी तौलि देत, मागि लेत दाम वाजिबी
गामन ते आवत परीदिबे कों जिनके।
बदलिहू लेत, बदलाई लेत बाजिबी ही,
कहत 'गुपाल' ते भरे धाम धन के।
संपति समाज, बड़े [illegible] [illegible] [illegible],
याते भले धवटा ते, पैसे कसेरन के॥

स्त्री उवाच

सोरठा

जहां पान नहिं पान, जनाकु कौं कहा दीजिये।
याते 'सुकवि गुपाल,' करहु न कीजै कसेरट॥

---

१. है मु. रुजगार
२. मु. कसेरट को रुजगार
३. मु. बार बैठि दुकान

कवित्त

सहर अनेकन में आढ़ति कौ कांम परै
दाम बिन बात ताम रहति है अटकी।
मोल-तोल बीच, नीच चातुरी करत कौसू,
टटकी न जानें, बात करत कपट की।
होइ जौ असाल, वेगि बिकै जौ न माल, नफा
पाय जात हाल, भुसी मिलै नांहि बटकी।
'सुकवि गुपाल' झटपट की न बात, याते
भूलि कै न कीजियै दुकांन कसेरट की।

इतिश्री दंपति वाक्य विलास नाम ग्रन्थे दुकान प्रबंध वर्णन नाम तीसो विलास :

---

१. मु. बहू

एकविंशो विलास

अथ जाति प्रबध

कायस्थ : पुरुष उवाच

सवैया

अर्ब रु खर्ब के लषन कों, अुमरावन कों समझावतो को तो !
कौन छुटावतो बंदिन कों, पुनि दान दै दीनन को दुष पोतो !
चित्रगुपित्र को बस बढाय' गुपाल,'यों जातिको पोषतो योतो !
धर्म्म की नीम जमावतो कौ, कहूँ जो जगमें नहिं कायथ होतो !

कवित्त

होफ कौं नरेस, अुतराधि को विधेस, प्रजा–
पाल नर भेस, पुनि ओध को अुमस सो।
विभो को सुरेस, रनभूमि मे नगेस, भारी
बल कौ पगस, सत पानिप जलेस सो।
'सुकवि गुपाल' राजे रिपु कों फनेस, धर्मधारी
धरमेस, पुनि तेज को दिनेस सो।
ज्ञानको धनेस कहूँ [ईन ~] सेस, गाजे
कायथ हमेस बुधि ह्वै को गनेस सो ॥

---

१. मुद्रित प्रति मे यह प्रसग नही है।

कवित्त

लेत बुग्वाई वजे कलम कसाई मुष छाई
रहै स्याही जाकौ देपत दरस है।
जहां कर डारै व्हा करोरन कौ मारै टोटौ
हाल ही निकारै नहिं आवत तरस है।
वेश्वन सौं यारी मांन मदरा अहारी नीच
सवही मैं भारी आंखें रापत परस हैं।
दया नहि रापे मीठौ कवही मैं भापे याते
कायथ की जाति पोटी सवते सरस है॥

सुनार : पुरुष उवाच

सव रुजिगारन मैं भलौ यह सुनार कौ कांम[1]।
दांम रहै निज हाथ में जगर–मगर होइ धांम॥

कवित्त

काम परयौ करै सदा जाको याणिमांनर तें
रह्यौ करै हाथ धन याके विवहार कौ।
नित नई नारिन सौं निब्रह्यौ करत नेह
निलैं परे दांम गढ़ि गहने सुढार कौ।
मुकदि गुगल सौंनी सुमेर कहाइ कैं
अुजगार[3]है माल मारयौ करै नरनारि कौं।
रतन मनादि जानें किम्मित अपार याते
सवमें अगार रुजिगारह सुनार कौ॥

---

१. है. सुजन कौ यह २. है. गार्ड
३. है. मु. उज्जगार ४. मु. जार्में

स्त्री उवाच

दोहा

बनें नहीं वहू वपत पै जव सुनार कौ काम ।
दामन में पामी परै नाम होन बदनाम ॥

कवित्त

जुरत न स्वास, हफ-हफी आइ जात औ
कपोल वढ़ि जात टटो रहै नरनार को ।
कहावत चोर, जात आगिन की त्यौर, जोर
वरनौ परत, डर रहै चोर-चार कौ ।
'सुकवि गुपाल' गोप्यौं रहति पराई, पर
धन के अधीन काम याके विवहार कौ ।
देह परै हारि, रहै अगिनि अगार, याते
सवमें उवार, रुजिगारह सुनार कौ ।

दरजी : पुरुष उवाच

मरजी सवकी राखिहू, करि दरजी को काम ।
गरजी अपनी मारि कै, लहरि अुडाअ धाम ॥

कवित्त

¹रहै निज धाम वहु जोर की पर न काम,
ताते आठौ जाम [illegible] परै [illegible] ।
भेस भलौ धारै, माल व्यौसन में मारै, नाना
भाँतिन सँभारै, काम सूत [illegible] कौ ।

१. है. वने न जौ वहु वपन मे । २. [illegible] मु. है पट

'सुकवि गुपाल' कछु गाँठि कौ न लगै, महँ
मांगें सोई लगै, हाथ करि अरजीन कौं ।
रार्ख मरजीन, पट ब्यौंतत नवीन, याते
सबमें अमीन, यह काम[1]दरजीन कौ ॥

स्त्री उवाच

दोहा

सीमत पोअत होत निन, सदा भोर ते संज ।
दरजी के रुजिगार में, देह होति है सुंज[2] ।

कवित्त

काम पर्‌यो करै सिरकार की बिगारिन कौ,
सदा नरनारि को तगादो रहै जीको है[3] ।
कहूँ पट[4]चोर, जात आपिन को त्यौर,[5] जोर
तोर के लगावन जँजार रहै जीको[6]है ।
'सुकवि गुपाल' जब पटत न काम, तब
परतन्त्र काम, कछू बिना मरजी कौ है ।
सीमत में हीकौ, डर रहत सुई कौ, सदा
यातें बड़ो भीको[9] यह काम दरजी कौ है ॥

छीपी[10] : पुरुष उवाच

भजनानंद सुसील सन, नामदेव के अंस ।
याते यह छीपीन को, जग में बंस प्रसंस ।

---

१. है. रुजगार
२. मु. है. . सीमत पोवत जात दिन सदा आठहू जाम ।
याते यह दरजीन को बड़ो कठिन को काम ॥
३. मु. जाको ४ है. मु. पहरावन ५. है. जँ औजिन पै जोर ६. है. टीको ७. मु. है. हाथ परत ८. मु. है. जोपै बने ९. है. अति भी कौ
१०. मु. कौ भीको

सवैया

अपने घर आठहू जाम रहे, मुख दीनो करें सो समीपन कौ।
हित साधि बढाय बजाजनते, सो करयौ करे काम महीपन कौ।
पठ नाना प्रकार के छाप्यौ करे ठगि सौदा मे लेत हरीफन कौ।
कहू 'राय गुपालजू' या जग में रुजिगार भलौ यह छीपन कौ।

स्त्रीउवाच

दोहा

कूरौ घर बाहर रहै करत ग्राम में वास।
याते यह छीपीन को सब ते काम उदास॥

कवित्त

चूतर-हायन मे, छेक परि जाति पुनि,
देह दहि जाति, माम रहनि न चाम मैं।
रँगत रँगावन में, धोवत मुखावत मैं,
रहनो परत ठाढौ, जाड़ मीत घाम मैं।
पहले 'गुपालजू' लगावत है जमा ताकी,
दरवयौ करत जाको छानी देत दाम मैं।
रहति विराम, वास आयौ करै घाम, दुख
होत आठौ जाँम, सदा छीपन के काम मैं।

रंगरेज : पुरुष उवाच

रंगरेजन कौ जाट कैं, बनू भली रँगरेज।
देखू मैन बजार कौ मन मे गाय मजेज॥

कवित्त

होति पहचानि जानि राव सिरदारन सों,
लेत दांम चौगुने, सुरँगि रँगिरेज कौं[1] ।
बैठि कैं बजार में, हजारन छिनारिन में,
करि-करि[2] प्यारन को लेत सुघ फैज[3] कौं ।
'सुकवि गुपाल' भाग जगत बिसाल हाल[4]
अजरो रहत बेस वकसत[5] फैज कौं ।
बढ़ै तन तेज, सब कर्यौ करै हेज, याते
सब में अमेज रुजिगार रँगरेज कौं[8] ॥

स्त्री उवाच

दोहा

लगे आइ जब साहलग, अरु आवत त्यौहार ।
भीर परे, जब आइ कें, रँगरेजन कें द्वार ॥

सवैया

बुरे लीलं में कारे रह्यौ करे हाथ,
सो हारि परं रंगिरेजन कौं ।
बिगरें कहु रेनी चढ़ावत में, जब
ज्यौं कढ़ि जाय करेजन कौ ।
बिनत दांम के काजे फिर्यौई करे,
मुजरा नहि पावें मजेजिन कौं ।
यह 'राय' 'गुपालजू' याते सदां
रुजिगार बुरौ रँगरेजन कौं ।

---

१. है. दिपत मांग रैज वो मु. रंगरेजो को। आगे की तुको मे भी फैजो को आदि है। २. है. मु. मी ३. है. मु. लीरि जोरि ४. है. मु. मेज ५. है. माल ६. है. महा ७. मु. रजनत
८. है. मु. रहत मजेज गाज्यो करें सब हेजत याते
सबमें दिपेप रुजगार रंगरेजों को ॥

मालिन : पुरुष उवाच

अंकुर नव[1] फल फूल दल, सब की लेत बहार।
यातें यह सब में भलो, मालिन को रुजिगार॥

कवित्त

देष्यौ करैं बाग फुलवारी की बहारन कौं,
पायौ करैं फल-फूल मूल[2] जो बहाली[3] कौ।
बैठि देई-देवन के देहुरे पैं सदा, कथा
कीरतन सुन्यौ करै बेचि फूल पाली कौ।
'सुकवि गुपाल' सिन्दारन दिपाय माल,
लेत महूँ मांगयौ फल फूलन की डाली कौं।
रापन[4] बहाली, राजी रहै घरवाली, याते
सबमें पुस्याली कौ सु पेसौ यह माली कौ।

स्त्री उवाच

दोहा

फूल फलन के बेचते, जोरु होंनि छिनारि।
परयौ रहत नित[5] बाग में, सदा छोडि घरवार॥

कवित्त

कलम करत पेड, लागत मराप-पाप,
जोर परै सदा,[6] रौसपट्टी की सँभारी की।
'सुकवि गुपाल' मारौ डटि न सकत मार,
बैचतो परत हाल [illegible] पाली कौ।

---

१ मु जब २ है मानों ३ है मु सदा फल फूल ४ है मु रखानी या ५ मु देख्यो ६ है है ७ है बडो

फूल–फल फलें, छोटे पौधन के हूलें¹ पशु–
पछी दलमलें, डर रहै ग्वपाली कौं।
कबही न ठाली,² देह परि जानि काली, याते
बडोही³ बिहाली⁴ कौं नृपेसो यह माली कौं॥

मालन : पुरुष उवाच

सजिकैं सिगार, रापैं चटक मटक, हरि–
मंदिर भवन द्वार, बैठी ले घनी रहै।
राजु–उमराजु, सिरदार–बडी प्रीति करैं
बिसई अनेक वस जिनकैं घनी रहैं।
'सुकवि गुपाल' फल–फूल–मूल बेचि करि,
मैलन कौं देपैं, सदा सुष में सनी रहै।
धारि फूलमालन कौं, राजी रापि मालिन कौं,
पाय नलमालन कौं, मालिन बनी रहै॥

स्त्री उवाच

दोहा

बैठनौ परतु है निलज्ज हैं बजार बीच,
बेचै साग–पात, फूल–फल–मूल संग में।
रहत 'गुपाल' संग छिनला–छिनालि, कुल–
धरम न सधे, रह्यौ आवै रोग अंग में।

---

१. है. मु. पौधा हूलें चलें २. मु. ढाली ३. है. दुखाली
४. है. मु सबमें

रहत बिहाल, मो मुचाल न चलन, सदा
जापै मब बाली–ओरी डार्‌यो करें मग मे।
पात बुरे मालन, बटायो करें गालन
मु याने धरकार, जन्म मालिन को जग मैं।

कुजर : पुरुष उवाच

बिकरी को करि के सदा, लेत चौगुने दाम।
याने यह सब में भलो, कुजरेन को काम॥

कवित्त

चचन लगाय डाली, मालिन के पास जाइ,
बोलि के गलीन में, जगामें नगरे को हैं।
कम तोलि देत, हान राजी करि देत, पुनि[3]
करि अंल-फंल, मोल लेन झगरे कों है।
'भुवनि गुपाल' हाल नगद पटाइ दाम
करि निज याम मजा मारत दरें को है।
चेचत हरे को, नहिं जात मुजरे को, याते
सब में परे को, '[1]जगार कुंजरे को है॥

स्त्री उवाच

दोहा

साक–पात नै कै मदा, बैठत बीच बजार।
याहीं तें कम तोल को, कुजरन को रुजगार॥

---

१ है मु मे २ है बैठन ३ है मु फिर ४ है पर्द का
५ मु गरप्ट ६ है यात यह। मु यात सबहीं म बुरो, कुजरन
को रुजगार।

कवित्त

गनी औ' गर्यारन कौं ,गाहुत रहत नित,
बोझ अुतरै न जाके सिर तें धरेन कौं।
'सुकवि गुपाल' हाल सरि–गरि जात माल
चाँदी लगे कौड़ी होति, बिकरी परेन कौ।
डाँडी–झोला मारत में, पायो करै मारि–गारि,
बड़े डर रहै पेत क्यार के करेन कौं।
रहै अुजरेन, आछी होइ गुजरेन, यातें
बडो दुप दुप देन, रुजिगार कुँजरेन कौ।

भटयारे : पुरुष उवाच

आय मुसाफिर नित नये, अुतरत जाके द्वार।
भलौ भट्यारन कौ सदा, यातें यह रुजिगार ॥

सवैया

नित रापन राजी मुसाफर कौं, घरबार सँभारि हजारन कौं।
दिनराति तँदूर चढ्यौई रहै, पुप लीयौ करै हैं बजारन कौं।
बहुतै हँडियान के स्वाद कौं लै, मजा मारै यजार[२] निजारन कौं।
यह 'राय गुपाल' सराहि के बीच, भलौ रुजिगार भट्यारन कौ।

स्त्री उवाच

दोहा

होइ मुसाफिर और कौ, दूजी लेइ बुलाइ।
तवहू भट्यारन बीच में, परहू ेलराई आइ ॥

---

१. है. लेन २. है. मु. भारी दुप ३. है. रम ४. है मु. मार्यो कोरे है ५. मु. परे

कवित्त

भिनिरि भिनिरि मापी कर्यौई करत, फैन्यौ
रहत भट्यारपानौं, माझ[1]लौंमवारे कौ ।
परोयन पोटें, नित आपुस में हौंटें, करयौ-
करत तमासौ, देन लेत घर भारे कौं ।
सुकवि 'गुपाल' मिरदार में निपाओ विन,
लगैं यलजाम मुसाफर के अुतारे कौ ।
वम्न रहें कार, लगैं डरारे, याते
सवही ने मारे दुप होनह भट्यारे कौ ॥

कड़ेरे : पुरुष उवाच

डर में बैठे रहें, लेत घनेरे दाम ।
याते भलो 'गुपाल कवि,' कडेरेन कौ काम ॥

कवित्त

जानौं न परत हनिगार कौं पराअे द्वार,
मार्यौ करै मजा, निन[3]साझ लौं मन्नेरे कौं ।
जायकें 'गुपाल' मजा देख्यो करै पैठन कौ,
दाम घनेरे लेकें, लिख्यौ पुयो रापें डरे कौं ।
धुनन रुई कौ, जाडे-पाले कौ रहन मुप,
छैल बन्यौ बैठ्यौ रहै, दाबि निज बेरे कौं ।
अुटन, सबेरे मान मारन कडेरे, बडे
होनह कमेरे, काम करन कडेरे कौं ॥

---

१ है गति २ है लगाई ३ है लागिन म मजा मन ४ है मु मर
५ है म्ना ६ है पगा ७ है उटर

स्त्री उवाच

दोहा

ताय ताय करिवौ करैं, कान दई न सुनाय[1] ।
दुपी कड़ेरन कौ सदा, रुई धुनत दिन जाय ॥

सवैया

मुप स्वास रुकै, बढ़ै—पांसीपई, सदा मारत जोर बडेरन कौं ।
डिग कान दईहू सुनी न परै, न बरक्कति होति कमेरन कौं ।
सब देह पै रूम जमेई रहैं, लगैं टूटत वाँधि अरेरन कौं ।
यह 'राय गुपालजू' याते बुरौ सब में रुजिगार कड़ेरन कौं ॥

कोरियाकौ : पुरुष उवाच

करत कमाई कांम की, करि कोरी कौं कांम ।
गांम गांम की पेठ करि, लहरि उड़ाऊं दांम ॥

कवित्त

देष्यौ करैं सैल, गांम गांमन की पेठन की,
लीयौ करैं लहरि सुकत्तिन की छोरी की ।
बिरहन गाइ कै, मृदंगन बजाइ, नैन
करि हाव चाव,[2] गावै झूमरि दै मोरी की ।
'सुकवि गुपाल' करै देवी की भगति, चाल[3]
चलत मैं मांत करि देत थोरा धोरी की[4] ।
रहै मकठोरी, बहु होत[5] छोरा—छोरी, याते[6]
सबही में मोरी, यह जाति भली कोरी की ॥

---

१. बु. सुहाय २. मु. हाव चाव ३. है. रार्ग ४. है. कौरिन नदीन चाल चल्यौं करे घोरी कौं । ५. है. होय मु. करै ६. मु. मदा

स्त्री उवाच

दोहा

नफा नहीं यामे कछू, भूष मरत दिनरानि ।
याते यह मतमें निमक, कोरियान की जानि ।।

कवित्त

गज धमकायो करैं, जानि के निमक जानि
पान है सराफ, औ' बजाज नफा जोरी को ।
सुकवि गुपाल' बुरी'बैठक रहति, सदा,
पूरत म तानौं, काम परैं दौरा दौरी को ।
रहन'संगात, इतराय चलें हाल, जाको
रहत जंजाल दिन राति जोरा तोरी कौं ।
होत है अघोरी करि सूतन की चोरी, बुरो
मगही में ओरी को मुकाम यह कोरी को[3] ।।

बढ़इयाः पुरुष उवाच

ताकौं[4]काठ–कवार गौकाम परत दिन[5]राति[6] ।
बढ़इन के रुजिगार को, यातें बड़ी सुवान[7] ।।

कवित्त

बड़ी–बड़ी ठौरन बनामें नाना भाति काम,
महल मकान औ' मकान मढई की है ।
'सुकवि गुपाल' जीम रहनिहू बडी याते,
नित प्रति परैं काम घडा घडई की है ।

---

१ है बडी २ है देगत
३ है पान लबने म बुरो रजगार यह कोरी को ।
मु दान बडा निरजोरी को मुकाम यह कोरी को ।
४ है जान मु जाता ५ है कौ ६ है दिन आर ७ है यह दान
है सुखदाद

रहैं परवस्त, औ' किसानन पै दस्त, बड़े
मस्त है कै बातन के दावे[1] गढ़ई[2] कौ है।
रहैं ब्रहही कौ, माल मारि गठई[3] कौ,
सबही मैं बढ़िही कौ यह काम[4] बढ़ई कौ है॥

स्त्री उवाच

दोहा

छोलत सबदिन छीपटो, रहत पराअे द्वार।
याते यह बढ़ईन कौ, पराधीन रुजिगार॥

कवित्त

पेड़न के काटत मैं, लागत सराप-पाप,
दर्व-पिर्व हाल, प्रान जातु है गढ़ैया कौ।
रहै पर द्वार, चाहे 'काठ' रु[5] कवार, नित
रहै मार-मार. कमजोर[6] के करैया कौ।
'सुकवि गुपाल' यह करत मैं काम बड़ो[7]
भूप बढ़ि जाति तोरि जातुह अढ़ैया कौ।
दूपत करैया, कहैं लबार-कसैया, याते
बड़ौ दुप दैया, यह करम[8] बढ़ैया कौ।

लुहार : पुरुष उवाच

परे दाम लैके सदा, रहत आपने द्वार।
याते बड़ौ बहार कौ, लुहार कौ रुजिगार॥

---

१. मु. थावै २. है. मु. गढ़ही ३. है. मु. रुजगार मु. होत दू कौ, सबही मैं बढ़िही कौ याते, सबमें सुखारी रुजिगारी बड़ई कौ है।
४. है. मु. चैयें ५. है. मु. औ ६. मु. काम और ७. है. यहु
८. है. मु. रुजगार

सवैया

जिन हाथन होत हैं काज घने,[1] सब विश्व के कारज सारन कौं ।
कुस औ' पुरषा पितिहारन कौं, रिपु मारन देत हथ्यारन क[2]
निस-वम्मर ही सनते जिनकौं, सदा काम परै है उदारन कौं ।
यह 'राय गुपालजू' याते भलौ, सब में रजिगार लुहारन कौं ।

स्त्री उवाच

दोहा

हाथ-पाम्भु कारौ रहै मह्नूँ कारौ परि जात[3] ।
या लुहार के काम ते,[4] निस दिन हीजत जात[5] ॥

कवित्त

महनति भारी, देह नयैजनते कारी होत
याकौ काम जारी, घेरा[6] साझ लौ मवार कौ ।
धौकनी के धौंकत में, धूपत रहत औ'
भुरसिवे कौ रहै डर, अगिन अगार कौ ।
'मुकवि गुपाल' सदा लोह ते परत काम,
रंग छूटि जाति है अुठाअे बाज भार कौ ।
देह पर[7] हारि, बुरौ रहै घरबार, याते
बडौ दुषकार, रजिगार है लुहार कौ ॥

सकतरास : पुरुष उवाच

महल मवास तराम करि, नाम करहु परकास[8] ।
बनि कैं सकतरास वहु, घन माअूं तो पास ॥

---

१ है मु कामधना २ है नूर ३ है जिन्गौ मु जिन। ४ है मुहशा माल ग्दाद। ५ है मु म ६ है धूप्त जाद। ७ है परगो मु पेर ८ मु करा दरकाम

कवित्त

बहु मंदिर और मवासन कौ, सो सुतार यों करिहै तरासन कौं।
घरे दामनि 'राय गुपाल' सदा, सो कार यों करै काम करामन कौं।
मजालै करि गैल गार यारनको, मुगदर्यों करे लै कें अरामन कौं।
[1]यह 'राय गुपालजू' याते भलौ रुजिगार सो मंकतरासन कौं।

स्त्री उवाच

दोहा

मेलमिलापी आय कें, बैठि सकत नहिं पास।
याते कबहुं न जाइ कें, हुर्जे मकतरास ॥

कवित्त

पत्थर ते पर्रे मारतौ मुड़ सदां[2]तन बस्तर ते लगि छीजै।
कान दईऊ सुनी न परै डिग बैटन-बारी नहीं तहां धीजै।
जोरत जोर जँजार रहे, दवि जात मैं प्रान अकारथ दीजै।
राय गु न पवासी भली, परि भूलिकै मंकतरासी न कीजै।

राज : पुरुष उवाच

सबही ते ऊंचे रहैं, मंदिर महल मँभार।
याते भलौ 'गुपाल कवि,' राजन कौ रुजिगार ॥

कवित्त

[3]होत बड़ौ नाम धनी मिलति यनांम, औ
बनामत मैं धाम, कांम परै राज-काज कौं।
रहत 'गुपाल' कारपाने पै हुकम, सदां
मुपिया कहावतु है, मद्दति के साज कौं[4]।

---

१. है. नित यांते भलौ रुजगार सदा मदर्गे भलौ मकतरासन कौं।
२ है. परी ३. है. नु. होत ४. है. म. धनी पावत

माल गड्यो–दयो हाथ जब परि जाय, तब
होतु है निहाल सो बनाइ कें लिहाज को।
कहूँ राज राज मिलें रहु मुग माज यात
सब में दराज रुजिगार यह राज को।

स्त्री उवाच

दोहा

चारि पहर बैठक रहति छुट्टी पावत साँझ।
रगर-झगर रहत बहु या रजई के माँझ॥

कवित्त

फटि जात हाथ धूरि धूसर रहात गात,
दूर्षे दिन राति, कहूँ टटन की भीरी को।
सुकवि गुपाल सदा रहनो हजूर औ'
कहावत मजूर, पाय मवत न वीरी कौं।
कान–चत्र तासे सिर पर फिरयो करै, कोऊ
गिरै परै मरै पै धरैया नहिं धीरी कौं।
देह परै पीरी कोऊ जानत न पीरी यात
बडो निर्मंगीरी की सुनाम राजगीरी कौं॥

चित्रकार : पुरुष उवाच

चित्रकार कौं चित्र ये, निपन सुष्य सरसात।
ऐसो सुनि लीजै चित्त दै प्यारी गुण अवदान॥

---

१ है मजूर क समाज का मु मुदृदनि सु गमान का २ है कहूँ
जब मिन जाय ३ है म गिन्न मु पग्न वह ४ फर र ५ है ओ
कहावत मजूर लिप रहत हजूर पार मवत न वीरी है। ६ है
मवहीं म बुरो रूजगार राजगारी को ६ है मु न

कवित्त

निसदिन हरि के चरित्रन में रहै चित,
होत है पवित्र चित्र–चित्रत विचार कौं।
'सुकवि गुपाल' सो [1]निहाल होत हाल, सो
हजारन हौ लेत है रिझाय रिझवार कौं।
चतुराई आवै, विश्व करमा कहावै, देस
देस नाम पावै सो सँभारि घरवार कौं।
रापत बहार, लट्टु होत नरनारि, याते
बड़ौ मुपकार, [1]जिगार चित्रकार कौं॥

स्त्री उवाच

दोहा

धन ठहरै नहिं पास बहु जाति नैन की जोति।
पावत कितने दुःप नित, चित्र चितेरे होत[2]॥

कवित्त

लापन कमाइ, तऊ पापन रहाइ, यामें
सीता की लाप–पाप लागत अकेरे की।
'सुकवि गुपाल' देई देव को लिपत चित्र,
पावें कष्ट भारी सदाँ सांझ लौ सवारे कौं।
त्यौरी फटि जाति, औ' कमरि रहि जाति, मरि
जात, ऊँचे नीचे गिरे लगें ढके ढेरे कौं।
परे चित्त फेरे, कोऊ सुहातु न नेरे, दुप
होत है कितेरे, चित्र चित्रित चितेरे कौं॥

---

१. है. मु. जू. २. है. सोरठा के रूप में है।

भरभूजा[1] : पुरुष उवाच

बहुत जमा चहियै न कछु, लैनो परै न मोल ।
याते भर-भूँजान कौ, गब में नाम अमोल ।

कवित्त

आयत औ' पायत में नाज पर्‌यौ रहै, न
अकाल औ' दुकाल रुप व्यापे या विपार तें
'सुकवि गुपाल' धनी लोगौ करै नफा, सदा
भूजिकें नवेंनी कारपानै मपत्यार तें ।
जानौ न परत, पानपान कौ रहत सुप,
ब्योमें जीव-जतु, हित रहै जिमोदार तें ।
बैठत बजार थाय रहै सब द्वार, सुप
होनह अपार, भरभूजन कौ भार तें ।

स्त्रीवाच

दोहा

जीव करोरन की सदा, निसदिन हत्या लेइ ।
भरभूजा-भूजत, भुजत भार द्वार कौ भेइ ।

कवित्त

रोअन रहत, दिनराति धूम-पान, भार
सेंकत रहत जानें मगनि न पूजा कौं ।
घर अरु बाहर में, बूरो परयौ रहे, देह
भूजन भुजें, ऐसो दुष-नहिं दूजा कौं ।

---

१. यह प्रसग मू में नहीं है ।

धूरि–धूमसे सौं किचि पिचि रहै देह, वस्त्र–
हाथ रहै कारे, नुप रहत न सूजा कौं।
'सुकवि गुपाल' कोऊ दुप कौ न वूझा, सदा
याते यह वुरौ रुजिगार भरभूजा कौं ॥

कहार[1] :पुरुष उवाच

निकट रहै सिरदार के, प्यार करें सिरदार।
दूनौं मिलत कहार कौं दरमाह्यौ र' अहार ॥

कवित्त

अंग में अुमंग, दस–पांचन कौं संग, कर्यौ
करै रागरंग, देप्यौ करत वहार कौं।
'सुकवि गुपाल' रहै राजन के द्वार, कीयौ
करत जुहार, राजी रापि सिरदार कौ ।
वैठ्यौ घर रहै, कांम कवी आय परै, सदां
जान्यौ करें सव असवारिन की सार कौं।
रहै अपत्यार, दूनौ मिलत अहार, याते
वड़ौ सुपकार, रुजिगारहू कहार कौ ।

स्त्री उवाच

दोहा

मोई सब कोई कहै, दुप वूझै नहिं कोइ ।
ढोवत वोझ कहार कौ, राति दिनां दुप होइ ॥

---

१. यह प्रसग है. मु. मे नहीं है।

कवित्त

भारी परै देह, नेह घटै सबही सों सदा,
    राह चल्यौ करै, दुप देपत न नारि कैं
'मुकवि गुपाल' मग भजनौ परत, चल,
    नौ परत अगार कौं अुठायबो झमार कौं।
मोहू जमि जान, पग कटि–छिदि जात,
    दिनराति पपकी कौ डर रहै सिरदार कौ।
देह जानि हारि, दूनौ चाहियै अहार, याते
    बडो दुपकार रुजिगार है कहार कौ।

तेली : पुरुष उवाच

घर घर बेचूं तेल कौ, करौं हवेली त्यार।
तेली कौ रुजिगार करि, दौलति करै अपार॥

कवित्त

जिनकी रहति घर घर में प्रकाम जोति,
    बेचि परि[5]–तेल रुपा करत अधेली को।
तोलि तोलि रामिन, किसानन के पास, नफा
    नीको करैं बहु, वास बसि कैं गमेली कौ।
सुकवि गुपाल,' निन बन्यो रहै लाल, अेक
    रापत हूं आगरौ सदा हो पुदा–बेलो कौ।
भरी रहै मेली, ऊंची रहति हवेली, जोनि
    रहति नवेली, काम करतिह तेली कौं।

१. है मं २. है बेजा म नेन ३. है. पाम ४. है. मु. सुरौ
५. है. मु. या १ मवही मे भयो रुजगार पर तेली कौ।

स्त्रीउवाच

दोहा

मैलो भेस रहै सदा, रहत कुचीले गात ।
फिरत चक्र लौं रातिदिन, काल–चक्र मँडरात[1] ॥

सवैया

पट चीकने धारे मलीन रहै, बुरी रंग रहै सु हवेलिन कों ।
बहुआवतिआंधि फिरयौ करै जी, लगि कोल्हूनकेचक फेलन कों ।
डर लाठिके टूटिवेहू कौ रहै, नदां[2] बेच्यो करै परि डेलिन कों ।
यह 'राय गुपालजू' याते सदा रुजिगार बुरी इन तेलिन कों ।

सेक्का : पुरुष उवाच

पक्का रहैके पीठि कों[3] लेइ नक्का मुप जाइ ।
याते यह सक्कान कौ, पेसो है सुपदाइ[4] ॥

कवित्त

देप्यौ करै मैल, पनघट पनिहारिन कौ,
गली औ गरयारन में, मार्‌यौ[5] करै मस्ती कौं ।
'सुकवि गुपाल' भिस्तिहार[6] जिमनदारन कै,
भरिकै पपाल, काम करत दुरस्ती कौ ।
घर–घर जायकै, कमाय पाय पाय,[7] माल
हस्ती सुप रहै, सो चढ़ाय करि अस्ती कौं ।
दबत गृहस्ती, वस्ती करै परवस्ती, याते
सबमें दुरस्ती, कौ सुपेसो यह भिस्ती कौं[8] ॥

---

१. है. मु. होइ चीकने २. है. मु. याते सवही में बुरो तेलिन कौ यह जान यह बात । ३. है. मु. नित ४. है. मु. याहो ते रुजगार यह सक्का को सुपदाय । ५. है. मु. झार्‌यो ६. है. मिरदार ७. मु. धाय माल हाल ८. सबहीं ते भलो रुजगार यह भिस्ती कौं ।

स्त्री उवाच

दोहा

निसदिन ढोवन मुसकको, पीठि पाव रहि जाय।
यातें यह भिस्तीन कौ, पसो है दुखदाय॥

कवित्त

घटि जाति उमरि सम्हरि पै न रह्यौ जात,
करिहाल लफत जैसें कबूतर लक्का कौ।
ढोवत रहत बोझ, पोवत रहत दिन
रोवत रहत, जिमिदारन के अक्का कौ।
'सुकवि गुपालजू' बिगारि करि आमिल की
गिरे परे हाल कुआं ताल चगि टक्का कौ।
पान उतारि मक्का, सहनीन दत ढक्का, यातें
सबही मैं लुक्का, रुजिगार यह सक्का कौ॥

बारी कौ[1] पुरुष उवाच

बारी कौ बैठें नफा, घरबारी कौ होइ।
याग्नि के रुजिगार सम, और न पेसी कोइ॥

सवैया

सदा सादी—गमी औ' बधाइन मैं, बडौ काम परै पनवारन कौ।
हित राख्यौ करें सबही जिनसौं, भलौ नेग मिलै नरनारिनें कौं।
पनवारन दै, पनवारन कौं, सदा पायौ करें पनवारन कौं।
सदा 'रायगुपालजू' नेगिन में रुजिगार भलौ यह बारिन कौ।

स्त्री उवाच

दोहा

कूरी करकट रहत बहु, जाते घर अरु द्वार।
याते यह बारीन कौ, महा बुरौ रुजिगार॥

---

१ मु है गहिजान कमरि २ मु है चलो ३ है मु आमदार
४ यह मु है म नहीं है।

कवित्त

तुप्यो करै हदे, दोना पातरनि सीमत,
बुलावत—चलावन मैं पायौ करै गारी कौं।
सादी—गमी माझ, जब परै कछु हाथ, तब
बनि कै कमीन, कांन परै नरनारीं कौं।
'सुकवि गुपालजू' विरनि रहै हाथ, अमी
गाठि की लगाइ, करैं महतनि भारी कौं।
फिरै द्वार—द्वारी, रहै रानि दिन ध्वारी, याते
बडी दुषकारी, रुजिगार यह बारी कौं।

नाऊ : पुरुष उवाच

दोहा

जिजमानन के मान निन भले मिलत है दान।
सब रुजिगारन में भलो, यह नायन[1] को कांन।

कवित्त

सब जिजमानन कै मालिकी करतु रहै[2]
करिकैं टहल पुन रापै नवकाई कौं।
बेटा—बेटी हाथ जाके बेचे विन्त्रि जात, भले
भोजन न[3] पात मिलें विरति सदाई कौं।
'सुकवि गुपालजू' सिरोमनि है नेगिन मैं
लेत महैं मांग्यो नेग[4] व्याह रु बधाई कौं।
मिलै ठकुराई, होइ जीवका सवाई, याते
बड़ौ सुषदाई रुजिगार यह नाई कौं॥

---

१. है. नाऊ को यह मु. यह नाऊन को काम २. है. सदा ३. है. मु. भले भले ४. है. मौज

स्त्री उवाच

दोहा

अग्र पाऊँ बाहर रहै, अेक रहै घर माझ।
[1]निद्रनि ही में होति नित, सदा भोर ते गाझ॥

कवित्त

फूटत रहत सिर, टूटत रहत पाँउ,
राति–दिन जातु है गईजन में जाई को।
गाफिल सों होतु है मसाल के लगावत में
आवै बडी टहल ते माल हाय याई को।
'सुकवि गुपाल' बढती जो नेग लावै,
जिजमान दुप पावै,[2]करवावन मगाई कों।
सिर बुरबाई रहै, मूतक सदाई याते
बडो दुपदाई रुजिगार यह नाई को।

कुम्हार : पुरुष उवाच

नितप्रति सादी ब्याह में, परत सवन को काम।
याही ते जग में भलो, यह कुम्हार को धाम[3]॥

कवित्त

[4]निकरी सगीही रहै, वारौ मास जाको,[5]मोल,
नैनो न परत कछु याके कारबार को।
'सुकवि गुपालजू' प्रजापति कहावै, घर–
घर मान पावै,[6]काज परें नरनारी कों।

---

१. है मु घरत हजामति २. है छूनिया कहावन मु. पूग्ग कहावत
३ मु धमकारै ४ है मु थान पान मेरें पनै नर्तर उडावनि
धाम। ५ है. गव दिन मु गानिदिन ६. है. मु. पुनि नित्र प्रति
घाते। घाम

जाके घर जाइ मन पूजै चाक-थास, जाय
डर न रहाय, कछु यामें चोर-चार कौ ।
सबते अगार, है किसानन कौ प्यार, यातें
सबमें बहार कौ, य कामहु कुम्हार कौ[1] ॥

स्त्री उवाच

दोहा

लिप्त रहतु है राति दिन, गदहा बाँधन द्वार ।
यातें[2] बुरौ कुम्हार कौ, पराधीन[3] रुजिगार ॥

सवैया

नितमाटी में देह सनी ही रहै, सदा[4] मारन जीव हजारन कौ ।
वह पोदत माटी रुंदे जो कहूँ, तब कोऊ नहीं है निकारन कौ ।
अपवित्र अवा कौं चढाय रहै, औ' रहै डर आगि-अँगारन कौ ।
यह 'रायगुपालजू' याते बुरौ, सबमें रुजिगार कुम्हारन कौ ॥

धोबी[5] : पुरुष उवाच

आप रहत नित ऊजरे, करत ऊजरो भेस ।
धोबिन कौ रुजिगार यह, सब में भलौ विसेस[6] ॥

सवैया

सो बन्यौ रहै ऊजरी भेस सदा,सी कमीन कहै कही को बिन कौ ।
परी पाय पुरानहि रापत पाक, बनाओ रहै तन ओवन कौ[7] ।
जल मांझ कलोल करयोई करै, सियोराम कहै अघ पोमन कौ ।
[8]यह 'राय गुपालजू' यातें भलौ सबमें रुजिगार सुधोबिन कौ ॥

---

१. मु. बड़ो सुखकार रुजिगार है कुम्हार कौ २. मु. सबसौ सदा
३. ह. सबते ४. ह. याते यह ५. ह. पुनि ६. मु. रजक ७ मु. अगेन
८. औदेह जो धोरे है सो उनको ९. ह नित

स्त्री उवाच

दोहा

जीव्यो पानी परति है, नव इक गिनत छदाम।
याते यह मग्रमें वुरो, यह धोविन को काम ॥

सवैया

मदा सीत'[1]धाममें धोयी करे, दिन पोयी करे मदा देत'[2]' लेते।
सब जाति में नीच कहावतु है, घर लागे बुरो गदहान बँधेते।
घर मैंन घुसैओ' छुवैन कोऊ, जाके[3]धानको लेत नही मन सेते।
'[4]यहते यह 'रायगुपाल' सदा नित धोविन कों दुप होत है अेते।

मलाह : पुरुष उवाच

वाहन में वस वड़त पुनि,[5]गाहन में बढे गाधि।
या मलाह के काम में, हित नर रापत लाधि ॥

कवित्त

अुतग्न देन जय, पैले दाम लेत, सब
कोअू रापै हेत, यामें वडो रापै पाहको।
'सुकवि गुपाल' पार आवन औ' जान जिने,
राजा अरु राना बात पूछत मलाह की।
रजमें[6]लपेटे, जे नवारनु में बैठे, नीयो-
करन लहरि गंग-जमुन प्रवाह की।
रहै 'चेतप्रवाह, जाके रोके रुके नाह, याते
गवमें मवाय, यह बातहू मलाह की ॥

---

१ है ताः २. है. ओ ३. है. नाते ४. है गाय गुपाल विचारि कहै गदा। ५ मु. म; ६. म रज को।

स्त्री उवाच

दोहा

जल-जलचर[1] रुमिजाउ डर, गिरत–परत हरि पोत[1]।
या मलाह के कांम मैं, बहु दुप होत अुदोत ॥

कवित्त

प्रांणन कौं सांसौ, पचैं–खिचैं लगैं लांचौ,[2] पुनि
डूबै–डटै[3] नाव, रिन बढि जात साह कौ ।
देषत ही जात दिन, थाह औ' अथाह, ल्हाव
पेंचत ही जाकौं सीत पाअे जात माह कौं ।
ऐसे,''कौ 'गुपालजू' लगावत मे पार जोर
मारि–मारि हारि जात चढत प्रवाह कौं ।
ताअे विन आह, पाय, जाइ भोटि–गाह, मेरी
मानि कै सलाह, कांम कीजे न मलाह कौ ।

गड़रिया[5] : पुरुष उवाच

दूध पिवैवन में बसैं, जानत नहि अरु बात ।
भेड़ बकरियन ते गडरियन मुनुप्य सरसात ॥

कवित्त

व्यावरि लगीहीं रहैं, वारो मास जाकी, सो
निरोगिल रहत. दूध पी कै भेड़ छिरिया कौ ।
'सुकवि गुपाल' कर्‌यो करैं राग–रंग, लैकैं
वन की लहरि, झूल्यौ करै गहि डरिया कौं ।

---

[1] मु. गिरत परत की पोत २. मु. दिनराति लगैं लाचौ ३. मु. बहै ४. मु. खेबो ५. यह प्रसंग है. मु. मे नही है ।

मोल लेनो परत न, मवो दानो–चारो, धनी
लेत है धिराई, वास वसि कै गमरिया को।
.य छाछि–दरिया, वुन्यौ करत कमरिया,
सव ही में सव वरिया, भलो करम गडरिया को।

स्त्री उवाच

दोहा

सूपि पडुरिया जात वहु, स्याह हडरिया हानि।
गडरियान की देह ज्यौं, स्याह लकरिया होति॥

कवित्त

मेंमें भयो करै, धर माझ दिनराति सदा,
सोवरि रहति रार्प, मेंड र वकरिया की।
गुपाल' वन बेहड में वास देह
कारी परि जानि डर रहै सिघ–लरिया की।
हाकिम दिमान तसवर जिमिदार जेते,
गोम्त के पवैया कर्यौ करें गैरि किरिया की।
ओढत कमरिया, मिलै भोजन न बिरिया,
सबही में मव विरिया, भलो करम गडरिया को।

चमार[1] : पुरुप उवाच

महतरि रहै माडिलो गाम की, करिकै बैठि बिगार।
गमई गामन में भलो, महतरि को रुजिगार॥

---

१ है. मु मेहतर

सवैया

भलोपेतकियारमें नाज मिलै, सिलो[1] रामिओ' पैरके झारन कौं।
परे[2] दाम सो पावौ[3] किसाननते, भलौ प्यार रहै जिमीदारन कौ।
घरमें घुसिगारी जो देइ कोऊ सगरे[4] मिलि जात है मारन कौं।
"यह[5] 'राय गुपाल' गमारन में, सुभलो रुजिगार चमारन को ॥

स्त्री उवाच

दोहा

टहल करत, पचिपचि मरत, पिटत रहत दिनरातिन
याते सबही में बुरी, यह चमार[6] की जाति ॥

कवित्त

सिरपै[7] ते कबहीं न उतरत बोझ जाको
नित प्रति रहै ताको पेत बगार कौं[8]।
'सुकवि गुपाल' जाकी टट्टयो करै पामू बौ
बजामनूँ परत है हुकम जिमीदार कौ।
आजे औ गजे की बड़ी विद्दति रहति सदा
जापैं[9] कांम रहै वहु बेठ रु बिगारि कौ।
देह परै[10] हारि पायौ करै मारि गारि[11], याते
सबमें उतार, रुजिगारहू चमार को ॥

---

१. है. सवा २. है. वहु ३ मु. पाउ ४. है. सबरे ५. है मु. सदा राय गुपालजू थाते भलो सबमें भलौ रुजगार चमारन को। ६. है. चमारन को यह ७. है. मूढ़पै ८. है ताको कष्ट रहै सदा बड़ो पेत प्यार कौ मु. काम रहै सदा वड पेत पान बगार कौ। ९ है. ता पै
१०. है. मु. राति दिन ११ है. रहै मार मार

चूहरे[1] : पुरुष उवाच

सोरठा

नरकिं मान हलाल, लाल बन्यौ नित प्रति रहै।
याते यह रुजिगार, चुरहेले[2] कौ अतिभलौ ॥

सवैया

दरप्यौ करें जाते सदा सबही यकबाल गुजारत जगिन कौं।
सो मिजाज के मारे किहू न गनै पनसामा कहाय फिरगिन कौ।
धरकाय के लेत है माल घनो, नित शादी गमी की अुमगन कौ।
यह[3] रायगुपालजू[4] याते भलौ, सबमे[5] रुजिगार सो भगिन कौ।

स्त्री उवाच

दोहा

भोगत चौरासी जहा,[6]घर घर झारि बुहार।
याते यह भगीन कौ, महा बुरौ रुजिगार ॥

कवित्त

करनी परनि नीच टहल अनेक भांति,
बिददति में डोलें देपि सकत न मेले[7] कौं।
सबरे महुल्लन की सदा पैरिमलना, बैनी
परनि अदालति में, सांझ औ[8] सबेरे कौं।
झूठनि कौ पात, दिन झारत ही[9]जात, याते
बहुत गुपाल, यह काम न अकेले कौ।
रापत कमेले, तऊ परे रहे हैले,[10]याते
बड़े पाप पेलें, कौ मुपेरौ चुरहेले कौ।

---

१. है. मु भगी २ है है। ३ है नित ४ है अब तो ५ मु सदा
६. है डोल्यो करें साझ कौ सबेरे कौ। ७ है. औ कमात दिन
८. है परे रहे हेले सगे रहत कमेले
मु रापत कै मेले तऊ परे रहे हले

मन्यार[1] : पुरुष उवाच

होति नफा गहरौ सदां, रोक नहीं किहु ठौर।
यातें यहै मन्यार कौ, कांम बड़ौ सरवोर॥

सवैया

निन कौं परे देनहू दांम सबै, बहु प्यार रहै नरनारिन कौं।
सोचुरी नप बोलिके द्वारनपैं, नफा लेन रिझैं रिझवारन कौं।
सदां मादी–गमी[2] रु निहार[3] रु वार, बुलामैं सुहाग सँभारन कौं।
रुजिगारन में 'सुगुपाल' भलौ, सबमें रुजिगार सुहारन कौं॥

स्त्री उवाच

दोहा

भांति भांति कौ माल जब, घरमें राखै त्यार।
गर्जी होइ मन्यार कौ, देउ प्यार नरनारि॥

कवित्त

राखनौं परत बड़े जावते ते माल, गर्ज
परे पै बिकै न माल, होइ जौ हजार कौ।
'सुकवि गुपाल' जिय कढ़ू–कढ़ू हौत, जब
सौरन में, चूरो पहरावत गमार कौ।
मारनौं परत मन जाइ कै जनानन मैं,
नर कौ परे न कांम, रहै कांम नारि कौं।
झोरी डारि नारि, फिरनौं परैं द्वार द्वार, यातैं
बड़ौ उपकार रुजिगारहु मन्यार कौ॥

---

१. यह और यहां से आगे के प्रसंग मु. में नहीं है।

हीजरा : पुरुष उवाच

तागे पटकामें, सब गातहू दिपामें, नैन
　　मोहू मटकामें, औब ताग, गामें तार को।
'सुकवि गुपाल' काहू सों न नपे, हीन
　　वड ज्यावसाली, नाच नचामें जिहान को।
काहू सों न दवे, रहे अकड सों सबे, लाग
　　लेत में न दवे, राजी रापि राजरान कों।
पावन है मान, आछो पात पान पान, याते
　　सब में निदान, यह काम हीजरान को।

स्त्री उवाच

दोहा

मिनि मब जानि इकठोरी पान पान करे,
　　रहे परावीन, रूप हीन तारिका को है।
यों ही दिन भरे वेमरममई को धरे, गाम
　　गाम फिरयो करे, नाम चलत न ताको है।
'सुकवि गुपाल' पीछे तारी पीट्यो कहे लोग,
　　देपत सुनन बुरो जनम सु याको है।
पीट्यो मुप ताको, औ' गुदावन गुदा को,
　　सबही में हीजरा को, यह काम हीजरा को है॥

भांड : पुरुष उवाच

कर्यो करे ज्यों की त्योंनकल सब लोगन की,
　　अकली के पुतरा रहत गब धाम है।
'सुकवि गुपाल' सबही कों जे हँसामें, राऊ
　　राजन रिझाम, पामें गहरो यनाम है।

सदा रहैं मस्त, सब जातिन पैं दस्त, बड़ी
होनि परवस्त, सो गृहस्तन के सामहैं।
राज–सभा माडन कौं, गामन के डांडन कौ,
मूमन कों डाडन को, भाडन कों कांम है ।।

स्त्रीवाच

सभान में छोटे बड़े सब मिनि आपुस में,
जूती औं पैजार करयौ करें आठौ जाम है।
'सुकवि गुपाल' ढीठताइ अुरधारि बड़े
बेसरम ह्वैकें लेत लोगन सौं दाम है।
बुरे–भले बोलि, सदा मूंड–गात पोलि जे
अगारी करि गोल ठाडे रहत विराम है।
पाय के हराम, बदनामी महि गाम, याते
सब मे निकाम, यह भांडन कौ कांम है।

नटके : पुरुष उवाच

करि डिठबंद, जे दिषावत चरित्र घने
बाजन बजाइ, माल मारत लिहाजी कौ।
करि कै 'गुपाल' निज इष्टहि कौ ध्यांन जे,
हजारन की लेत मौज जुरत समाजी कौं।
देस–परदेसन कौं, गाहत फिरत, बड़े
होत गुनमांन मांन पावत समाजी कौ।
तन रहे ताजी, पट भूषन न साजी, करें
राजन कौ राजी, करि काम नटबाजी कौ ।।

स्त्री उवाच

सोरठा

टूक टूक तन होत, तऊ न बदल कलान कौ।
दुष जिय होत अकौत, नट बाजी के करत में।

कवित्त

बांस पै चढाय कै, नचामनी परति तिय,
इप्टो है कै रापनों, परत बडो पटको ।
पलन कलाम, कान फूटिवो करत, डेर
गिरत न लागै, होत प्रानन की चटको ।
'सुकवि गुपाल' ऊंचे नीचे कौं चढत प्राण
मुठी में रहत डर रहै गटपट को ।
श्रम होत लटि तन, ठहरै न पट, याते
सब में निपट, कर्म कठिन है नट को ॥

कजर हवूड़ा : पुरुष उवाच

शृंगी को लगाइ जानें ओषधि अनेक, बहु
तिलन कौं काढै, नाना मिश्रारन पात है ।
छीकें, रसोई, ढई औ' सिरकी, सहत, सूप,
बेचि नाचे-गामें तहि फूले गात मात है ।
'सुकवि गुपाल' मौं जलावत अनेक चाहै,
तहा चले जांइ, नहिं गनें दिनराति है ।
जेक राखें बात, माल मारें भांति भांति, याते
कजर हबूडन की भली यह जाति है ॥

स्त्रीउवाच

दोहा

चारे कृसगात, बहुभांति दुख भोगें तन,
कटिमें न पट, पेट भरत न मूंडा कौं ।
चागे जारौं करि, लूटि लेत बाटवारन कौ,
पान जोय-जन, फूल्यो रापे सिर जूडा कौं

'सुकवि गुपाल' बन बेहद भ्रमत, घर
सिर पर रार्वे, रहटानि करि भूड़ा कौं।
परन न पूड़ा, जात जहां पात हूड़ा, यह
याते कांम डूडा, बुरी कजर हबूड़ा कौ।

तुरक : पुरुष उवाच

चढ़ौ रहत करमांन कर, सब मिलि रहत समांन।
मुसलमान की पान की, चार्यौ दीन जवान॥

कवित्त

मुअे होत पीर, धन पाअे ते अमीर, पुदा
मिले ते फकीर, हौत रापत समान हैं।
'सुकवि गुपाल' करैं निमक–हलाल, कबौं–
ब्याज नहि षात, नहि पलटैं जवान हैं।
पढ़त निवाज, रोजे ताजिये निकासि, सदां
उज्जल रहत आछौ, षात पांन पांन हैं।
मानत कुरान, सदां दियौ करैं दांन, नैक
सबमें निदांन, बड़े हौत मुसलमांन हैं।

स्त्री उवाच

दोहा

तुरक कहायें, सदां उलटी चलामें चाल,
राति–दिन करयौ करै, जीवन कौ घात हैं।
'सुकवि गुपाल' किया करमे न जानें, गोत-
नात नहि मांनें, ब्याहे कुल ही में जात हैं।

मिलि सेख-सैयद, औ' मुगल-पठान, ऊंच
नीच सब जानि, मिलि मदमास खान है।
सुन्नि करें गात, चोटी राखें नहि माथ, याते
सबमें कुजाति, मुसलमानन की जाति है।

जाट : पुरुष उवाच

बड़े परिवार, औ' कहामें फौजदार राखें
द्वार पै कहार रीति जानें राज-पाट की।
सबही गुपाल जुरें जगन के जेंवनार,
जोर, जदुबंसी, जमो पूरें आस भाट की।
राखें नहीं कबहूँ सुकाहू सों विरोध मन
सोधि कै रहत, सील साधुता सुघाट की।
बड़ दरबारी, सब राखत सवारी, सबही
में सुखकारी, भारी भारी जाति जाट की॥

स्त्री उवाच

दोहा

कारे हैं गमार, राखें घर में चमाग्नि, नेंक
जानत न सार, चतुराई के सुघाट की।
रहै हर मान, औ' कहामे परमाल, पायो
करें मानामाल, चाल चलें गैरि घाट की।

'सुकवि गुपाल' घरी बिन न रहत घरी,
परी छोड़ि देत, घेरि रापैं राह बाट की।
नदि गय-तुरी, राज पाय करें धुरी, याते
सबही मे बुरी, यह जानो जाति जाट की ॥

इतिश्री दंपतिवाक्य विलास नाम काव्ये जाति प्रबन्ध वर्णन नाम
एकविंशो विलास ।

द्वाविंशो विलास

प्रथम प्रबन्ध

चुगली कौ : पुरुष उवाच

दोहा

[1]कलूकाल में अति भलो, चुगली कौ रुजिगार ।
[2]मारै माल हराम कौ, सदा रहत हुसियार[3] ॥

कवित्त

आय आय लोग, घर बैठ ही सिरामैं हाथ
टूटे औ' फिसाद के सुभुठत सुगल कौ ।
'सुकवि गुपाल' मन-सुन में छिपाय भय,
करिके फरेबी माल मारत जुगत कौ ।
रातिदिन बूझ सिरकार में रहत, डर-
मान्यौ करैं लोग जैसो-जैसो न मुगल कौ ।[4]
जामें छिद्र छल, कबौ परत न कल, यातें,
सबही[5] में भल, यह कामहू चुगल कौ ।

स्त्री उवाच

दोहा

चुगली कौ रुजिगार यह, खोटो है जग माहिं ।
'राम गुपाल' बिचारि यह, यातें कीजै नाहिं ॥

---

१. मु. कली २. मु. मेरे ३. है. तामे डरपै लाग मत गहरी नजर तयार । ४ मुगल ५ है मु. कछु ६ है मु. मर ७. है म. रुजगार ८. है मु. कीजत

कवित्त

सबही की, यामैं, पोटी, कहनी परति बांत,
कहै बुरवार, बैर बँधै तन छीजियैं ।
गारी–गरा दैके. बहु कोसत रहत लोग,
मामले में जाई को बिगारि काम दीजियैं ।
जाहर भअे पै, मुंह बिगरत हाल, याते
कहत गुपाल मेरी बातहू पतीजियैं ।
[1]'कहत गुपाल' कवि मेरे जान में तो याते
भूलि रुजिगार चुगली को नहिं कीजियैं ।

चोरी : पुरुष उवाच

लावै गहरो वित्त, सैंतिमैंति को जाइ के ।
लहरि उड़ावे नित्त, चोरो के रुजिगार में ॥

कवित्त

कम्यौई कमायो धन, धर्यो परै हाथ, यामैं
सदा सुमिरन मन रहै भगवान को ।
परन्त धन याको, दरको न लागे नेंक,
अैस कर्यो करै लाला रहै न कमांन को ।
माल मिले आछे, कैऊ[2] साल को निहाल होत,[3]
होट[4] पुन्य दान, देई–देव सनमांन को ।
कहत 'गुपाल कवि' मेरे जान में तो आंन
दूसरो न पेसो कोऊ चोरी के समांन को ।

---

[1]कवि र. है. मु. नृप रहि जीजियं कि दिल लायपीजियैं ।
[2]४. मु. होइ

स्त्री उवाच

धुगधुग जीवन जास, है ठगिया ठगई कर ।
यह न रहै धन पास, आवत दीसैं, जात नहि ॥

कवित्त

भरनी परति सिरकार में सदाई चौधि,
रहै डर मार्में, चपरासिन के दक्का कौं ।
'सुकवि गुपाल' थाको ठहरै न माल, नित
करम विसाल, यह कांम बड़े तक्का कौ ।

मानम भये पै मार परै जेल-पानी होत,
बेरी परे पायन में, पोदत सरक्का कौं ।
होइ धुकधुक्का, नित डोलै भयो फक्का, याते
सबही में लुक्का, यह कामहु अचक्का कौ ।

लबार : पुरुष उवाच

बार न लगत लबार के करत लबरई कांम ।
मान मारि नावै धर्नों, लहरि उड़ावै धांम ॥

सवैया

चाहै तहाँ ही [illegible] लावै उधार, बनायकै बात सुतारि तरासी[१] ।
मारि कै बैठि [illegible] घरमें, गुलछर्रे उड़ायौ करे पुनि तासौं[२] ।
'राय गुपालजू' [illegible]री लगै कहुँ नीलो दिगायौ करै पुनि पासौं[३] ।
जानौं परे, न [illegible]नौं परैं, सबमें रुजिगार लबार कौ पासौ[४] ॥

०हे० पु० मे [illegible] छंद की तीसरी पंक्ति दूसरी है और दूसरी पंक्ति तीसरी [illegible] । १ हे० स्वत २ हे० मु. रुजगार ३ हे. मु. बिरची ४ हे. मु. [illegible] ५ मु. पाछो है. छाछो ६ हे. मु. साछो

स्त्री उवाच

दोहा

दरि बिगरनि सब गाम में, बात न मानें कोइ
पकरे पर मु लवार की, बड़ी पगवी होइ ॥

कवित्त

दिन के समें में न बजार मे निकरि सकें
बेरि बेरि देष्यो करें, मुह दरबार कौं ।
'सुकवि गुपाल' फर्जदारन के डर, नित
दबक्यौ रहत सदा, साह लौं^1सवार कौ ।

कहि दुरबार लोग, घेरे रहें द्वार, हितू
यारन में जब लाज लागे परिवार कौं ।
लावन उधार, जाकी पात मार गार याते
सबमें अनार, रुजिगारह लवार कौं ।

"मसपरा" : पुरुष उवाच

राज-सभा दरबार में, कहूं मसपरी जाय ।
सब सौं जानि पिछानि करि, लाऊं धन्नहु^1कमाइ ॥

कवित्त

होइ सिरदारन में सबते पहल बूझ
पास जाय बैठें करि बातन सौं हरावी ।
देस-परदेसन में जाहर-जहूर होत,
म.नत न बुरी कोऊ जाकी रग्गा-मसखरी कौ ।

---

१ मु. मानत २ है ने ३ है. मउक

रापत बहुल, याते¹राजी रहैं लोग सब
कहत 'गुपाल' इह कांम पुसकरा को ।
राजन के घरा, मिलें मोती माल परा, यातें—
सबही में परा, रुजिगार मसपरा को ।

स्त्री उवाच

दोहा

है मसपरा मु ममपरी, कबहू कीजे नांहि ।
अैसे काम मु होत²हैं, भाट-भगतियन मांहि ।।

कवित्त

दरि न रहनि, औ' अुपाधि है परनि, यामें
नकल करत जाकी सोई ज्ञात पीजियै ।
ठठ्ठा कन्वाय, येक येककौ सिपाय देत,
माथे कों झिकाय के बकाय प्राण लीजियै ।

'सुकवि गुपालजू' सदा कों परिजानि चिर³
नितप्रति यामें गारी पात्र गारी दीजियै ।
जानियै न न्यरो, मेरी बात मानि परी, यातै
है के मसपरा मसपरो नहीं कीजियै ।।

हरामजादे : पुरुष उवाच

देह रहति आराम में, सरत सकल मन कांम ।
यातें बड़ी अराम को, है हराम को काम ।।

---

१ है. यामें २ है मुहाते ३ मु. चिढ़

कवित्त

लगै न छदाम, औ' कमात घने दाम नारी
पुष्ट होनि चाम, सुष रहै आठौ जाम कौं ।
'सुकवि गुपालजू' निकस्त है नाम, सदां
बैठ्यो निज धाम, भोग भोग्यो करै भाम को ।
दौलति हरति, काम सवरे सरत, भली
बुरी के करन, डर रहै नहिं रामकौ ।
करो बिसराम, देह पावनि अराम, सदा
याते यह काम को सुकामह हराम को ।

स्त्री उवाच

दोहा

फलदायक नहिं होत है, याके कबहो दाम ।
याते भूलि न कीजियै, यह हराम को काम ॥

कवित्त

धरम कों हारि, अधरम उर धारि-धारि
डारि नीची नारि, बात तजत सचाई की ।
मूतत को तानो, करै मन को गुहानो, मारि
हानो तर्क दौलति जे भाई कों कमाई की ।
भूषन मरत, कछु काम न सरत, तऊ
उतन न करनी करत अधमाई की ।
कहत गुपाल' कोऊ नैनिक उपाय करो
टरति कोढ़ी कीम नहँ कौ कमाई की ।

वेसरम : पुरुष उवाच

कहि न कछू कोऊ सकै, जानिक की होइ ओत।
वेसरमाई के घरें, धन को परचन होत॥

कवित्त

नापन ही मिलि, बुरी लाप कह्यौ करो होतो
होइ नहीं आपै कवों भेदत मरम कौं।
बेसरमई के आर बुरपा कौं ओढ़ें, जब
चौकने घरा लो, पानी छुवै न भरन कौं।
सुकवि गुपाल आपै ठीकरी धरे पै हाग
पैसा बचि जात मादी गमी औ' धरम कौ।
होत न नरम, घने रहत नरम, याते
सबमें परम है करम वेमरम कौ॥

स्त्री उवाच

नरम छोड़ि के वेसरम, जीवें बुरे हवाल।
बदाबदी करिबौ करै, झूठे करि वकवाल॥

कवित्त

जांनी परै निन्दिति, हजार मन पांनी परै,
हांनी परै सकल कटुंब मून ती की है।
'सुकवि गुपालजू' सुरावन में आपै ह्या—
दया न रहनि, लागै कुअस की टीको है।

होनहू निलज्ज सो, बनाय झूठी सजुज, झूंठी
करिकें तबजुज, सो कठोर होन जी को है।
रहै मुख फीको, कोऊ कहतु न नीको, याते
जीवो धरकार बेसरम आदिमी को है।

सेखीखोरा : पुरुष उवाच

कौड़ी लगै न गाठि की, मन के लाड्डू होत।
सेखीखोरन को सदा, मद्दैं ही बैरी होत॥

सवैया

स्वर्गहु में हर जाके चलैं, अनजान ते आगै सा सपि न मारैं।
सो गुनों झूंठ बनाइ कहैं, तऊ साचौ सी बात बनाइ उतारैं।
गाठि को मामें न लागै कछू, मद्दैं बैरी रहौ काहे सो कहि डारैं।
याते 'गुपालजू' या जगमें सदा गाल कौं जीतैं औ दामकौं हारैं॥

स्त्री उवाच

दोहा

औरन की निंदा करत, सेखो मारत आप।
याते सेखीखोर की, बुरी जगत में दाप॥

कवित्त

नीचो करैं लोग, जाय हुक्क न भोग, ब्याह-
तौ न करि सकै कोऊ जाके छोरी-छोरा को।
जायकें 'गुपाल' बढ़ मारैं जब सेखी, तब
जूती सी दै मुख कौं बिगारत ठिगोरा को।
सुजस की पूजी, एक बात न बनति कोऊ
जाति कौं न गनैं, काज करनी या जोरा को।
सदा रहैं कोरा, सब लोग कहैं रोरा वाने
बड़ो कुलबोरा है करम सेखीखोरा को॥

हरामजादे : पुरुष उवाच

सब रुजिगारन में भलो, हरमजदी को कांम ।
थर-थर कांपें, लोग सब, करत कमाई दांम ॥

कवित्त

टेढ़ी धरि पाग, डोल्यो करत बजार बाग,
मांगत में स्वाल, पाली परै न यरादे[1]को ।
अैस करि दाम, पाय परचै पचावै औ'
डिमांक वन्यो रहत[2]है जैसे मलजादे को ।
'सुकवि गुपाल,' चाहै ताहि[3]धमकाइ लेइ,
जाअुते[4]न डरै सो कुमर सहजादे कौ ।
रंदिके[5] अवादे, मास मारत ढकादे,[6]याते
सबही में जादै, रुजिगार हरामजादे[7]की ॥

स्त्री उवाच
दोहा

याते यह सबमें[8]बुरी, हरमजदी को कांम ।
भलमुनसायत के करें, हाथ परत नहिं दांम ॥

कवित्त

लोक कुवड़ाई,[8]परलोक दुपदाई, दाग
लागत सदाई, बापदादन की गद्दी कौं ।
'सुकवि गुपाल,' सुनि पावें जो मुसद्दी लोग,
देषिकें जुमर्द्दी,[9]हाल झारि डारैं मद्दी को ।

---

१ है. मु. इरादे २ है. मु. रहतु ३ है. जाय ताय ४ मु. वाऊते ५ मु. रका ६ है. हरामजादा मु. हर्मजादे ७ है. सब रुजगारनमें । मु. प्रति में दोहा है—"सब रुजगारन में बुरी, जादे है जु हरान । परलोकहु निकरत बनत लोकहु में बदनाम ॥"
८ मु. लोक में बुराई ९ मु. जुमर्दी

राजा के अगारी छाय जाति है गरद्दी लोग,
कबहू पत्यारो न करतु है चहद्दी को ।
होत बेदरद्दी, लोग कर्यो करें बद्दी,
सबही में बेदरद्दी यह कांम हर्मजद्दी को ।।

पाषडी : पुरुष उवाच

डिम्मदारी

धरिकैं बड़े पषड कौं, डिम्म धरें जो कोइ ।
आजकालि के नरन में, बडो जीवका होइ ।।

कवित्त

राजा अरु रानी सबही कौं परमोधि लेत,
कथा को प्रसग कहि कहि कें अगारी को ।
'सुकवि गुपाल' बडी जागति है जोति, बडी
महिमा अधिक होति, ठगै धनधारी कौं ।
पार नही पावैं, सब सिद्धई बतावैं, देस-
दुनी चली आवै, तार टूटत न जारी को ।
नवैं नरनारी, सदा पूजा होति भारी, जे
पढावत अतारी, काम करें डिमधारी कौ ।

स्त्री उवाच

दोहा

मेरो सिष कौं मानि अर, डिम्म धरौ मति कोइ ।
बिगरैगो परलोक अरु, नाम धराई होइ ।।

---

१ है. मु. नृप २ है. मु दरबार ३ मु है करिके । ४ मु और ५ है. मु. प्रबध ६ है. जामे ७ है. जग ८ ठगिवो अनारी को ९ है. मु. माते बडो गुनकारी मजगार डिम्मधारी को ।

कवित्त

मान¹होइ जब देख्यौ चाहै करामात, अड़ि जात
करामाति दिनराति पर्च जारी कौ।
पड़ी जानि बात, जब कहत पपड़ी, ताकौं²
फैनि जाति मंडी, पोलि निकरै अगारी कौ।
'सुकवि गुपाल' और दौसत न ओक,³ बिगरत
परलोक, यह बात बड़ी ख्वारी कौं।
देह परै हारी, कष्ट करत⁴ में भारी, याते
बड़ी दुपकारी, जीवका है डिम्मधारी की।

नंगा : पुरुष उवाच

कबहुँ न कोऊ करि सकै, तासौं दगा बाय।
याते यह नंगान कौ, काम बड़ौ सुपदाय॥

कवित्त

चौरे में मवासौं, पातसाह डरैं जासौं, लरि
लेइ कहा तासौं, कोई जोरि करि जंगा कौं।
'सुकवि गुपाल' सो अड़ंगा देतु सबै कौ,'
लगावत पतिगा ह्वाज बीच देकैं गंगा कौं।
भलौ-बुरौ कोऊ कहि सकतु न जाय, सदा
निडर कहाय, मेलै सबही के चगा कौं।
होइ बहु रंगा, रापै जिय में अड़ंगा, याते
दुनी में नगा रुजिगार यह नगा कौ।

१ हैं. मान २ है. वारौ ३ मु. ओक ४ है. सदा कहै कष्ट भारी।

स्त्री उवाच

दोहा

लाय अुदार बजार को जब नगा ह्वै जाइ।
तबै सकल नगान के, अे हवाल होइ आइ ॥

कवित्त

जाति के न पाति के, न कोअू भली बात के, न
मात के, न तात के, न दीनन की भीर के।
सील के सहूर के, सरम के, न मरधा के,
भाव के भगति के भलाई के न तीर के।
मित्र के मिलाई के न, साधु हरि गायो के न,
पापी के प्रसंगी नित पापक सरीर के।
कहत 'गुपाल' बाजे काजे लोग नग देपे
गग के न रग के, न गुर के न पीर के ॥

ज्वारी : पुरुष उवाच

या जूवा के खेल की, चसकी जब परि जाय[1]।
ताय सुहात न और कछू, याही म दिन जाय[2] ॥

कवित्त

आवनि फिरग, पेच पेचन की बात घनी,
लगी मन रहै, 'जैसें मिलै न्द सूवा को।
'मुणि गुपाल' अक दाव पै 'निहाल होवे'
मार दो करै मात, चटि नवको कर दूणा को। —

१ है भ्रा र है गी रहे बात है है गई न ज र हे म है है

दौलति लहत, भूप प्यास न रहति, याकी
बात के कहत, बांधि देत गढ़ घूआ को
जागि परै सूआ,[1]आमें केते मनसूआ, याते
सबही में[2]भलो रुजगार यह जूवा को ।।

स्त्री उवाच

दोहा

झुलके लागै दाव पै, धरि आवै मति मोहि[3] ।
राति दिना डरप्यौ करै. नित ज्वारी की जोइ[4] ।।

कवित्त

आवत औ' जात में न दीसत है दाम, याके
बड़ोई निकाम काम पाछै बड़ी ख्वारी को ।
'सुकवि गुपाल' झूल लागनि है जब, तब
हाल अड़ि देत घरबार, सुत नारी को ।
काहू के छुटाये, फेरि छूटि न सकत, यहु
आवतु है लपक, झपक चोरी–चारी कौं ।
मीठी लगै हारी, झूठ बोलतु है भारी, याते
बड़ौ दुपकारा, यह पेल बुरो जुवारी को[5] ।

ग्वाल : पुरुष उवाच

मारत माल हराम के, जाइ होत मुपत्यार ।
भूर पाति गौदान में, ग्वाला गारी पात ।।

---

१ है- सूआ २ हं ने ३ है- मोइ ४ ई जोहि ५ मु- है रजगार यह ज्वारी को ६ है याते भलो गोपाल कवि ग्वालन को रुजगार । मु- याते भलो सु जगत में ग्वालन को रुजगार ।।

कवित्त

बनत बराती, कहू बनत घराती, मानि
मानईते सरस, बनावत बहाला कों ।
'सुकवि गुपाल' सैल करैं देस-देसन की,[1]
गाम-गाम व्याह के गुजारे पकवाला कों ।
कंभू बेर लेत, दाम बटत-बटावत में,
रिलि-मिलि[2] पानिन में मार यों करे माला कों ।
बने रहें लाला, ओढि साल औ दुसाला याते
सबही में वाला, यह काम मलोगवाला कौ ।

स्त्री उवाच

दोहा

द्वार अरे भूपन मरे, मार पर बहु ताइ[3] ।
याते कबहुँ गुवालपन, कीजे कबहूँ न जाइ[4] ॥

सवैया

आव रहै न हियामें कछू, मुनि गारी गरा घरबारहु छीजै ।
दूसरे लेत में मार परै यो,[5] काम दुकान ज्ना सब छीजै ।
अन्धे चढ़ेते गिरै जो कहूँ, तब नाहक प्राण अकारथ दीजै[6] ।
'राव गुपाल'की मानि कह्यो कहुँ जायकैं गुनानान्यों नहि कीजै ।

---

१ मु है सुकवि गुपाल छोर छोगन की सं- -- २ मु हिलमिल
३ है. मु. रुजगार पर ४ मु ताहि ५ मु -- -
६ है ओ दराइरो दन परो तन छीजै ।
मु. दवि जात मे प्रान अकारथ छीजै ।

सगाई के बिचौलिया : पुरुष उवाच

परिकै जे बाप बीच कर—बाय सगाई देत ।
जाति बिरादरी बीच में, जग में जे जस लेत[1] ॥

कवित्त

बड़ौ होइ नांव, औ,' कहे सो बनें कांम, भले
माल मिले गहरे, न कोंम बनें इतने ।
मांनत यसांन'होत आदर गुमांन, पुनि
सदा मनभाई मिजमांनी मिलै नितनें ।
जाति औ' बिरादरी, कुटुंब हितू यार, हाथ
जोरि के घुसामदि करत जितनें जितनें ।
'सुकवि गुपालजू' कहे न परें जितनें'सगाई
के बिचौलिया कों होत सुष तितने ॥

स्त्री उवाच

दोहा

ब्याह सगाई बीच है, करकरावत जो कोइ ।
पांनी लावत परच कौ, परी'परावी होइ ॥

कवित्त

आछौ बनें बात, बेटा—बेटी की बतामें भागि,
बिगरत बात बुराई देत घनि वे ।
"सुकवि गुपाल' दोऊ ओर कौ रहत बुरौ,
भेंड़ुआ कहावें गारी—गरा कानि सुनिये ।

---

१ बूंदा. मे नहीं है ।
मु. इसकी पंक्ति इस प्रकार है : पचपचायत बीचमे जगमे ते यता लेत ।
२ मु. गमान ३ है- मु. नितने । ४ मु. बढी ।

छोटे घर ग्राम, दाम खर्चन परत, होत
नाम बदनाम, काम भये पै न गनियें।
पायनु तुरावें, कछु हाथहू न आवें, माते
भूलि कें सगाई कौ बिचोलिया न बनिये[1]॥

गमारके : पुरुष उवाच

नित पासति जाकी सुलठ्ठ दई मुक्ही निठि जाति लवारन कौ।
जिदि कोऊ सबै न रुकै सो कहू, बदि बाद में जीतै हजारन कौं।
न भलीओ बुरीसो लगै तिहिकें, सुख सोवन गारिया भारन कौ।
मह 'राय गुपालजू' याते भलो सब में यह काम गमारन कौ॥

स्त्री उवाच

कवित्त

कैसो समझावो, अेक आवै न अकलि, सो
अुज्जडई की कहै सिष दीअे हू हजार ते।
भूषन बसन तन पहरि न जानें, आछो
लगत न नेक गयो रहन चमार तें।
बनि करि कुब्जा, बारे मनकी कहावें अति
चोदि पिटे आवै गाम परें जोमदार ते।
मानत न हारि, जिदि मरे करि रारि, पानी
पारें अेर बारहू न भूतिकें गमारते॥

---

१. है प्रति में दूसरी दूसरी पंक्ति तीसरी है और तीसरी दूसरी।

रसिया : पुरुष उवाच

चौपई बनाइ, छैल बनेई रहत, ढफ
ढोलक बजाइ, रांग नाचें तिरियान के।
मेला औ' तमासे, फूल डोल औ' बरातन मैं
करि राग-रंग दल जोरें दुनियान के।
जिनपै 'गुपाल' रीझि सुंदरी अनेक देखि
चटक-मटक हँसि बोलैं सुघ भांति के।
सुंदर सुजान, नैन होत जैसे बान, सदा
रस की रसान, हाय परे रसियान कैं।

स्त्री उवाच

दोहा

बपता हीरे रांझ अरु, अल्हा ढोला गाय।
करि अनेक स्वागन नचें, रसिया ढफहिं बजाय॥

कवित्त

गारी पायौ करें, मेला-ठेला फूल-डोलन मैं
बावरे से डोलें, मन फसि होत आन कौ।
आवत न हाथ, छाती कूटिबौ करत, वेस-
रमई कौ धरें हाल होत घसियान कौ।
'गुकवि गुपाल' नित बुरे बकयौ करें, घर-
नारी तक्यो करें, कांम करें घसियान कौ।
होत जसियान, नेक रहै न सयान, घसियान
के ते बुरो, यह काम रसियांन कौ।

अल्हैया ढुलैया : पुरुष उवाच

कवित्त

ऊँचि मिलै बैठक, औ' तोरयो करै मच, राजी
　　रापै नरनारि, मजा मारत लुगैया कौ।
'सुकवि गुपाल' वृक्ष होति गामगामन मैं,
　　निकरत नाम कोऊ छांटै न पलैया कौं।
रसिया कहाय, नसे पानी मैं गरक ह्वैकै,
　　पात नित पारि–पाड, दूध औ' मलैया कौं।
कहिके जुल्हैया, लागे रहत बुलैया, यातें
　　सबमे भलैया, कर्म अल्हैया–ढुलैया को॥

स्त्री उवाच

कवित्त

सरै न गर[illegible] पानी परत गरजि, होन
　　स्वान शौ मग[illegible], झूठ बोलनौ परैया कौ।
पाँसू चढि जान, दूर्यै [illegible]टि, गान. श्राय, लोग
　　धरै दिन राति, सुध जानें न लुगैया कौ।
आवै नहि टो[illegible], [illegible]गरत परलोक–लोग,
　　जोटिया बिगरि मजा आवै न पलैया कौ।
छोरत अढैया, [illegible] फूलि कैं तलैया, बडो
　　देह को [illegible]ंया, कर्म अल्हैया दुगैया को।

इतिश्री दर्[illegible] [illegible]राम शास्त्रे अष्टम रङगार वर्णन नाम
ग्रंथिगो विलास.

त्रयोविंशो विलास

अधमाधम रुजगार प्रबन्ध

गड़िया : पुरुष उवाच

गंडे, पट्टे, चाक करि, बने रहत महबूब ।
रापत राजी सवन कौ, माल मारि कैं खूब ॥

कवित्त

रापत मिजाज, संग लेकैं बच्चे बाज, जपि
करत न लाज, बाँधि देत झड़ियांन कौं ।
भोर अरु सांझ, डोलें गलियांन मांझ, करि
गरदनि मोटी, हाथ लीयें छड़ियान¹ कौं ।
'सुकवि गुपाल,' तन सजि सजि साज, मिसौ
अंजत कौं आँजि, माल मारें बढ़ियान कौं ।
वैठि दड़ियान, राजी²रापें जड़ियान, यातें
बड़ौ सुषदांनि रुजिगार गड़ियान कौ ॥

स्त्री उवाच

दोहा

रहै न काहू काम कौ, झीकें जाकूं नारि ।
गयौ होइ गनिकान तै, गड़िया कौ रुजगार ॥

---

१. हे. छड़ियान २. हे. राजा

कवित्त

जीवन नरक, देति गनिका धरक, कर्यौ
    करत तरक, लोग देपि कँ[1]जवान कौं।
आंपि न जुरनि, औ' कनामर्दी रहत, परे
    लाप मन पानी यामें दपत अचान कौं।
कहत 'गुपाल' कछु स्वाद न सवाद औ'
    कुराह को चलन गुदा फाटिवे कौ म्यान कौं।
रहै जीय ज्यान, लोग गाडू कहे आनि, याते
    बडो दुपदानि रुजिगार गडियान कौं।

भडवाई : पुरुष उवाच

भडवाई कै करत में, गहरो होत मिजाज।
बडे लोग आदर करत, बहुत मिलत[2]सुप साज॥

कवित्त

भामिन अभोगि, तन भागत रहत सदा,[1]
    पीयौं करे दूध, भरि भरि गडुवान कौं।
आदर ते बडी बडी ठौरन पहुँचे, कहू
    कबहूँ परे न कछू काम भडुवान कौं।
'सुकवि गुपाल' मेला-समला झुकामैं, बडो
    बानिक बनामैं, पंरि बाजू पडुआन कौं।
पाय लडुआन, राजी रापैं रंडुआन, याते
    बडो सुपदान, रुजिगार भडुआन कौ॥

---

१ हे कुर बानिके (यह प्रसग मु में नही है।)
२ है रहत ३ है मु भर्ले

स्त्री उवाच

दोहा

[1]बड़े बड़े जे आदिमी, आमन देत न धाम ।
याते बुरी 'गुपाल कवि,' भड़वाई कौ काम ॥

कवित्त

लोक बिगरत, परलोक बिगरत, नित
लाजन मरत, याकी करत कमाई कौं ।
'सुकवि गुपाल' मनि देखि लेई कोऊ कहूं,
राति दिन यामें डर रह्यो करे याई कौं ।
रहत न पाक, होत गरमी सुजाक, काम
भअे पै झराक, दाम पर तन ताई कौ[2] ॥
[3]आवे बुरवाई, औ' अजाअ जानि जाई, याते
बड़ौ दुखदाई, रुजिगार भड़वाई कौं ॥

कसबी : पुरुष उवाच

बिसय मांझ छाके रहत,[4]सब सुख रहत तयार ।
[5]यार पयार करें घनौ, राखे द्वार बहार ॥

कवित्त

परम प्रबीन–बीन बातन लगाय, हिय
कामहि जगाद, करि लेत बस जीन कौं ।
'सुकवि गुपाल' करि चटक–मटक तन,
लटक दिखाय राजी राखत[6]धनीन कौं ।

---

१. है. मु. भले भये २. है. मु. याई कौ ३. है. मु. होद ४. मु. है. रहै ५. मु. है. याते यह सबमें भयो कसबिन को रुजगार ।
६. मु. है. माल मारन

मुरि मुसिकाय, हाव भावन बताय, नाचि
तानन कौं गाय, राजी रापैं विसईन कौं[१] ।
ओढि पसमीन, बनै रहत अमीन,[२] याते
सबमें नवीन,[३] यह काम कसबीन कौं ॥

स्त्री उवाच

दोहा .

विसय करत सबसों सदा, है करि धन आधीन ।
कसबी कौ रुजिगार करि, होत पाप में लीन[४] ॥

कवित्त

बेचि तन-मन, जन-जन को हरत धन,
रापनों परत यामें राजी सबही को है ।
'सुकवि गुपाल' झूँठी पातरि कहावै, परलोक
दुख पावै, कोऊ कहतु न नीको है ।
टकि चलि जात, भग रग छिलि जाति,[५] देह
दलि मलि जात, न सवाद आवै ती को है ।[६]
रोग रहै जी कौं, काम बेसरमई कौ सदा,
याते यह फीको रुजिगार कसबी को है ॥

भभैया : पुरुष उवाच

पांन पान आछे मिलन,[७] बटे होत गुनमान ।
जान भभैयन कौ सदा, मिलन दान सनमान ॥

---

१. है नाच का दिखाद मुसिकाय मान गाय भाव भावन बताय राजी रावें विसयान कौ । २ है मु [illegible] ३ है मु अमीन ४. है सारठा के रूप मे है । ५ है देह मलि जाति झारे टारे चलि जाति भारग छिन जाति न सवाद आवै तोरी है । ६. मु दुष्ट रोग भरि जात । ७ मु करत

कवित्त

भावन बतैया, नैन भौंह मटकैया, कर
कटि लचकैया, यतभुत दै घुमैया कौं।
पग ठमकैया, झिझुकैया अुझकैया, झालौ
देकै गहि बैंया, लूटि लेत हरि लैया कौं।
'सुकवि गुपाल' मोहै मन मुसिकैया, तव
देकें मुरकैया, फिरि लेत फिरकैया कौं।
तन्नन गवैया, बडे होत नचकैया, याते
सुप दैया भलौ करम यह भभैया कौं॥

स्त्री उवाच

दोहा

गाय, बजाय, रिझायकें, मुरि-मुरि तोरें तान।
तवै भवैयन कौ कछू, मिलत दान, औ' मान॥

कवित्त

मरद है महरी के करते परत काम,
होत बदनाम जाति करत चवैया कौं।
कसवी कहामैं, निरलज्ज होइ जामैं,[1]रातिदिन
दुप पामैं, मुप जानैं न लुगैया कौं।
सदां ही 'गुपाल' परदेसन में रहैं, कछू
काम कौ न रहै हितू यार जाति भैया कौं।
टूटे जात पैया, दूपि परति करैया, याते
बड़ो दुपदैया, यह करम भभैया कौ॥

---

१. वृ. गुदा भंग जे करायें

जनानिया : पुरुष उवाच

कवित्त

नेह नित निबहै, लगो ही नव नरिन सौं
तियन में बैठें, न कलक लगे आने मैं।
सूरत सिकिलि, औ' सिगारन सिगारि बडो,
जुलम करत नैन भौंह मटकाने मैं
'सुकवि गुपाल' राग-रग में गरक रहै,
जाको दिन जात सदा गाने औ' गवान मे।
भाव के जानें, राजी राखत जनानें, सो
जनानिन-को होत भलो आदर जनानें म ॥

स्त्री उवाच

आवे न सरम, होत बडो बेसरम, घोवनी
में हाथ डारे सौच आवत सराने को।
'सुकवि गुपाल' सदा रहत तियान बीच
नीच मन रहै, रहै काहू न ठिकाने को।
बोलनि, चलनि, चितवनि, और हाति औ'
जनानिया कहावे वस जात मरदाने को।
निदत सयाने, न तिया को सुख जानें, याते
सबमे निराने, धृक जनम जनाने को ॥

छिनरा को : पुरुष उवाच

आछो तिय कौं देखि कें, जाय लगामे लाग।
भोग भोगि नित नइन सौं, गरक रहत अनुराग ॥

१- मु सगावत

कवित्त

है[1]करि सकांम, वने ठने रहें आठौ जांम,
परचत दांम, यामें भले[2]पांन-पांन कौं।
आंपिन पै आड़, मिसी नैनन पै वाड घरि[3]
मोहि लेत मन-तन करि के सयांन कौं।
'सुकवि गुपालजू' यसकही[4]में डूबि कें,
अभागि तन सग भोग भोगत निदांन कौं।
होत गुनमांन, वड़ी रापै सोप सांनि, याते
वड़ो सुपदांन, यह कांम[5]छिनयन कौ ॥

स्त्री उवाच

दोहा

गांम नाम घरिवौ करै, कांम रहै रिस नित्त।
याते नहि कीजे कबहुँ, जाइ छिनरयौ मित्त ॥

कवित्त

होत वदनाम, घने चाहियत दांम, नर्क
भोगत निकांम, कांम याके मन दअे में।
राजा लेत डंड, मारि वैठै वर वंड, जत्र
आव न रहति, कछू याके देंगि लअे मैं।
'सुकवि गुपाल' ढौंढं[6]ढूंढनौ परत,[7]रहै
घकर-पकर मन, लगतु[8]न यहे मैं।
विरह सौं[9]दहै, जीव[10]जात रोग भयें, दुप
होत नित[11]नअे, छिनराकौ छिनरअे में ॥

---

१. मु. हवै २. है. मु. भले जाय ४. है अंजन को आज के सगाय किलि आड मु. यौंहन पै आड मिली नैनन पै वाड़ घरि ४. है. मु. इसक ५. है. मु. रुजगार ६. मु. ठौर ७. है. ढूढत फिरत ८. मु. है. रहतु ९. है. तें १०. है. मु प्राण ११. मु. नये

छिनारि : पुरुष उवाच

राजी रापति मीत कौ, करिबे भलो सिंगार।
याते नारि छिनारि कौ, भलौ यहै रुजिगार॥

कवित्त

सौना सो सरुप, पाति सिन्निन के दौंना, भोग
भोगि कैं यकौंना सजै रहित सिंगार हैं।
'सुकवि गुपाल' आगें चातुरी अनेक, अेक-
अेक ते अनेकन रिझाय रिझवार हैं
भोजन-वसन पहुँचामें लगवार द्वार,
कैअून अुतारे पार, मानति न हारकौं।
राजी रहै यार, लोग कर्यौ करें प्यार, याते
बडौ सुपकार, रुजिगारहू छिनारि कौ॥

स्त्री उवाच

दोहा

सदा जाति को डर रहत, सब कोअू कहत छिनारि
याते नारि छिनारि कौं जग जीवन धरमार॥

कवित्त

देत धरमार, हितू यार नरनारि, डर
रह्यौ करें यामें जिमीदार सिरकार कौ।
पावत न यार, ढूढ्यौं करें ठौर-ठार, होत
आतम उपार, मोष नरक के द्वार कौ।

घर के 'गुपाल' दियो करे मार-मार, डर
रहयौ करै यामैं जिमीदार जमादार कौ।
लजै परिवार, औ' जमानौं हांत हार, याते
सबमैं उतार, हजिगारह छिनारि कौ॥

परनारि : पुरुष उवाच

याते नहिं कोऊ बच्यो, कांम प्रबल जग मांहि।
याते तिय की प्रबलता, जग में सदा सिवाइ॥

कवित्त

इन्द्र-चन्द्र मंद, मुनि पतिनी के फंद परे,
मोहे चतुरानन, स.प देपि जाया मैं।
लैमे हरि जिदा, हैके बिदा ते रमन कियौ
लक्षमी सी नारि अरु धारत हे छाया मैं।
देपत ही मौंहनी को मौंहनी ते मारे, परे
सिव पारवती अरधांगी घर काया मैं।
'सुकवि गुपाल' नर-जाया की कहा है बात,
विधि-हरि-हर से भुलाने तिय माया मैं॥

स्त्री उवाच

दोहा

इंद्र-चंद्र की चकवली, रामन बालि समेत।
बड़े बड़े मारे परे, पर नारी के हेत॥

कवित्त

गोतम की तिय ते कलानिधि कलकी भयौ,
इंद्र के सहस छिद्र सुने हैं अगारी ते ।
तारा काज हाल भयौ बालि कौ मुवाल, भीम
कीचक कौं द्रौपती ते मार्यौ क्रोध भारी ते ।

रावन अखंड ब्रह्मंड डंड जाकौ दंड
राम खंड-खंड कीनौं सीता सुकमारी ते ।
'सुकवि गुपाल' नर तुच्छ की कहा है बड़े
बड़े जौम-दार मारे परे परनारी ते ॥

कामप्रलय : पुरुष उवाच

कवित्त

सुर औ' असुर नर निसचर पच्छी पसु
कीटक पिसाच जच्छ बस मन ती के हैं ।
याते आठो लगें भगतन कौं भगति भाव
याके बिन पगत जगत, सुख फीके हैं ।

'सुकवि गुपाल' ऐसौ विधि के प्रपंच में को
जाके न हिया में मन भावै हौन जी के हैं ।
और हैं निकाम, काम साचौ यह काम, काम
प्रगति भजे पै सब काम लगें नीके हैं ॥

स्त्री उवाच

दोहा

बाहू जुग जलज सनाल, मुप कंज फूल्यौ
सोभा जल पूरन गभीर सरसायौ है।
कटि भाग पछिम, नितंब परवत नैन
मुफरी सिवार केस स्याम दरसायौ है।

भनत 'गुपाल' जुग कुच चकवाक जोड़ा
त्रवली तरंग नाभि कूप सो सुहायो है।
काम सर ज्वाल ते तपत जग जीवन कौ
नारि रुप विधना सरोवरि बनायौ है॥

विसैसुष : पुरुष उवाच

कवित्त

डारि गलबाहीं मीठी बतियाँ सुनीं न कांन
करि चतुराई हाव, भावन कौं चीन्यौ ना।
सैन के समै मैं कुच गहि कै अलिंगन दै
स्वाद अधरामृत आनंद में लीनौं ना।

'सुकवि गुपाल' सजि सेज औ' सिंगार, तरुनाजन
के मांझ यार हँसि रंग भीन्यौ नां।
वृथा पछिताय, यौं ही जनम बिहाय,
अैसी नर देही पाय, जिनि तिया संग कीनौं ना।

स्त्री उवाच

दोहा

जेई सिद्ध साधक महंत सत जेई बड़े,
जेई परम हंसरु, प्रसंस जग लेखो है।
'सुकवि गुपाल' जेई मायक विकारन ते
भये निरलेप काम-क्रोध-लोभ रेषो है।

जप-तप-नेम-व्रत तिनही को सांचो सदा
तिनही को स्वर्ग-सुष जनमें विसेष्यो है।
नरक को छेक्यो, पुन्य बढ़त अलेष्यो, जिन
घरनी में आय कै तिया कौ सुष देष्यो है॥

लगनि कै : पुरुष उवाच

कवित्त

दुहून के दुहुन में लागे रहे मन, तन, प्रफुलत
होत परि दरसन आगे ते।
भोगत 'गुपाल' ब्रह्मानंद को सो भोग हिय
हौंस लागी रहै उर कामहि के जागे ते।

यही प्रयो-सत्व, देह धारे को सुफल, हरि
याही ते मिलत पूरे प्रेमहि के पागे ते।
सदा सब जागे, लागे आछे राग-रंग
मेंहमाने सुष मिलें, नये नेहहि के लागे ते॥

स्त्री उवाच

दोहा

तपत रहत काम चिता बिरहागिनि मैं
भागिन ते भेंटे कबौ लागत चमक के।
रहै गुरजन, दुरजनन कौ भय लोक
लाज धर्म त्यागें होत दरस रसक के।

रापके 'गुपाल' दुनौ सदिन के मन-बन
गाहने पग्न मांन मारि कैं ठसक के।
सुनत धसक होत हिय में कसक, ऐसी
रहति ससक सदा लागत असक के॥

विरह कौ : पुरुष उवाच

कवित्त

सुमिरन रहै दिनरैनि रूप माधुरी कौ,
ध्यानहि में सदा लाग्यौ रहै प्रिय भोग मैं।
होतह 'गुपाल' दोऊ प्रीतम के रूप प्रेम
पूरन रहत हित बढ़त संभोग मैं।

टहन कौ दुहुन कै प्रेम की परीक्षा होइ,
जोति जग जगै मन लागै हरि जोग मैं।
मिटै सब सोग, कोऊ व्यापत न रोग, यों
संजोग ते सरस सुप होतह वियोग मैं॥

स्त्री उवाच

कवित्त

स्याम निसा बिता पीर बाढ़ै निन नई, अरु
　　विरह परेपे वान होन है गिरह में ।
कारे-पीरे तातें-सीरे, स्रम होत गान अति
　　सुपद-दुपद है जरावन जिरह में ।
सुप-प्यास सुधि-बुधि निद्रा-दुति अगन की
　　सुप घटि जान मन रहै न थिरह में ।
'सुकवि गुपाल' कहै गुथन में देपि देपि
　　दपनि के होन ऐते लछन विरह में ॥

लौंडेवाज : पुरुष उवाच

रहे अजरे-बाजरे, पेलत पेल अनेक ।
ल्डीबाजी की धमक, याते जग में एक ॥

कवित्त

देप्यो करैं रग, मदबूबन के सग, होइ
　　हिय में उमग, डर रहत न काजी को ।
'सुकवि गुपाल' सदा आसिक महाइ, सौक
　　सायनि बनाय पेल-पेलें दगाबाजी की ।
अब के लगावन, कलक न लगत, निन
　　लीबो करें मजा, राग भजन गमाजी की ।
आवे इस्कबाजी, दिन रह्यो करें राजी, याते
　　बड़ेई मिजाजी की धमक लौंडेबाजी की ॥

स्त्री उवाच

दोहा

धानु-हीन, वल-हीन तन, भोगी जाय न जोइ ।
लौंडेबाजी कौ यमक, याते कछू न होइ ॥

कवित्त

मारी जाय नम, जीअु परै परवम, होइ
 गरमी मुजाक, बढ़ै छीनता कुकाजी कौ ।
'मुकवि गुपाल' वहु आमिक के माथे, तीन-
 मोल न रहति, मन विगरै मिजाजी कौ ।
आवति गिलान, धन नैयै अप्रमान, मन
 रापनौ परत महबूबन कौ राजी कौ ।
रहत न ताजी, रुपै प्रानन ते बाजी, मदा
 याते यह पाजी, है यमक लौंडेबाजी कौ ॥

रंडीवाज : पुरुष उवाच

रहै नहीं डर राज कौ, भोगै राअुरु रंक ।
रंडीबाजी करत नित, रहत मदा निरसंक ॥

कवित्त

राअु अरु रंक भोगयी करत निमंक औ'
 कलक लगत दिल रहै राजी राजी मैं ।
'मुकवि गुपाल' रहै काहू कौ न डर, सो
 अुजगुगर है राग रंग देपत ममाजी मैं ।
रहै मुप पाइ कै, बजार की मिठाई पाय,
 पाइ के सिवाइ, मजा डूवै इस्कबाजी मैं ।
तन रहै ताजो, आगे होनि है निलाजी,
 रंडीबाजन कौं, मुप ऐते रहे रंडीबाजी मैं ॥

सवैया

नप लाल रहै छिगुनी मे छला, नित संग रहै नमे-वाजन का।
वहु पान मिठाइन पातें रहै, वहू राषे मिजाज निहाजन का।
'मानुपानजू' पातुरी से करि भाग सुन्यो करै राग समाजिन का।
सब मोपन में यह मोप भलो यहते यह रंडीबाजन का॥

स्त्री उवाच

दोहा

रहि मिजाज में नहिं वनै, करनी काज निहाज।
करि अकाज दुहूँ लाक होइ, रंडीबाज निनाज॥

कवित्त

धन रहै जौलौं, तौलौं आदर करनि फेरि
मुपहू न बोलै वहू मालन कौ पाट कें।
'सुकवि गुपालजू' पुराय परतीनि-प्रीनि
निरधन करै छिन मुपह दिपाइ कें।
भागन भुगयाइ, जग जूठिन पवाइ, निंदा
लोक में कराइ, देनि नरक अथाइ कें।
गननि न ताय, करै आनस मिनाइ, यानै
कबहूँ न कीजै रंडीबाजी वहूँ जाइ कें॥

कुटनी : पुरुष उवाच

दिन अरु रानि भर्यो रहै, नरनागिन सौं धाम।
याही तें सवमें मनौ, यह कुटनी कौ काम॥

कवित्त

छिनरा-छिनारि प्यार राखै, नरनारि, जुर्यौ
    रहै दरबार, ताकै मुधर गुनीन कौ।
रहति न दीन, बडी होति परवीन सदा
    पाय कै सिनीन जे मिला मैं परतीन कौं।
'सुकवि गुपाल' होति मनकी हरनि, वसी-
    करन कौं करि धन हरति धनीन कौ।
पहरति चीन, ठगि ठगि बमडैन, याते
    सबमें प्रवीन यह काम कुटनीन कौ॥

स्त्री उवाच

दोहा :

दयौ करै धरकार सब, ताहि आठहू जांम।
याते भूलि न कीजियै, यह कुटनी कौ काम॥

कवित्त

बिगरत जाकौ इह लोक परलोक रोक-
    टोक के करत दिन राति चैन लीजै ना।
'सुकवि गुपाल' जोराबरी के मिलायै सती-
    सीता के दुपायें पुनि याकौ बचें बीजै ना।
होत बेसरम, जात धरम-करम, हया
    हुरमति-वारे जे, परौस मांझ धीजै ना।
यड़े लोग पीजे, मार बांध तन छीजे, याते
    भूलि रुजिगार कहूं कुटनी कौ कीजै ना॥

धम्का के : पुरुष उवाच

ब्याह न गौने चाले कौं, परचत परत न दाम ।
यातें भलो 'गुपाल कवि' धम्कान को काम ॥

कवित्त

सदा ही निकार्यौ करैं सबमें कसरि-कार
जानि ते हरैं न कानि रहनि न भूखा की ।
आय गौन लालो, पानो परत न पालो, जाय
छाजै सब बात, धान आवति बिसूवा की ।
'सुकवि गुपाल' हाल बस बढ़ि जात, बिन
दामन ही मिलैं तिय सुघर मलूका की ।
रहत न भूखा, मार्यौ करत मफूका, सदा
यातें यह मिरैं बान सबमें धम्का की ॥

स्त्री उवाच

दोहा

धम्कान कौ धन धरत, घुन सौं लगत कलंक ।
जाति-पाँति के बीच में, बैठि न सकत निसंक ॥

कवित्त

बैठि न सकत कहूँ जाति पाँति बीच, सादी
गमी औ बधाइन में दीयौ करैं हूका सौं ।
'सुकवि गुपाल' धूम पायौ करैं लोग, बेटा
बेटी कौ न करैं काऊ सादी सुनि ऊका सौं ।

बोलि नहीं सकै, लगै कुल कों कलंक, पानी
पितर न पावै, तव मारै हिय मूका कों।
तन जात सूका, सुनि जगत की कूका, सदां
याते धरकार जग जीवन धम्मका कों ॥

इतिश्री दंपतिवाक्य विलास नाम काव्ये अधमाश्रम स्त्रृंगार वर्णन नाम
त्रयोविंशो विलास:

चतुर्विंशो विलास

प्रकृत प्रबन्ध

बाल अवस्था : पुरुष उवाच

सोरठा

नृप पदवी मे जोइ, कबहुँ, न सो सुख पाइये[1] ।
बालपने ते होइ, सब वैभव ते[2] अधिक सुख ॥

कवित्त

कहुँ अंबहु आन की लाली रहैन, खुसी दिन माझ फिरै अपने मैं ।
कितमैं दिन आयवैं, जुगै मितैं, नहि जानि परै कबहूँ सपने मैं ।
निन भोजन भूषन आछे मिलैं, मिठ बोलन और सम्पपने मैं[3] ।
'कवि रायगुपाल' विचारि कहै यतने सुख होनहु 'बाल-पने मैं ॥

स्त्री उवाच

दोहा

तुमसु कहत दुख नाहि, कवि गुपाल या वैस मैं ।
ते सुनियै मो पाहि, बालपने के जे अनूप[4] ॥

---

१. है प्राइय २ है सु मे ३ सु सनी लागन बातन वै सरस स
४. है. मरन सुख है पावनै मे ५. है. सै. म दोन वै स्थान है ।

कवित्त

जाकूं मचलत ताड़[1] करिके रहत होड़
चंचल सुभाइ तन धूरि में सने रहैं ।
भिष को लहैं न, भूप प्यास को रहैं न, औं
गहैं न गुण, पेल[2] ग्रौटपाइ के ठने रहैं ।
'सुकवि गुपाल' जो लराइ लेत मोल बौं
उराहने न लाइ ज्यान करत घने रहैं ।
मार–धार गारि–रारि और फोर–फार सदा
एतने विकार बालपन में बने रहैं ।

तरुनापन : पुरुष उवाच

बालपने में होति जे, तरुन पर्ने नहि होत ।
जोबन के गुण सुनहू अब, जितने[3] बुद्धि उदोत ॥

कवित्त

कोऊ रोग सरीर सताय सकै न, सदा बड़ो जोम रहै तन में ।
तरुणीन सौं भोग विलास करै, पुनि भारी भंडार भरे धन में ।
बहु दैस बढ़ाय कमाय धनों, रुपि रारि करै रिपु सौं रन में ।
'कवि रामगुपाल' विचारि कहै, एतने गुण हैं[4] तरुनापन में ॥

स्त्री उवाच

दोहा

तरुण अवस्था पाय, एतने औगुण होत हैं ।
तिनहिं सुनहुं चित लाय, कवि प्रवीन निज कान दै ॥

---

१. हैं. मु. ताहि २. मु. गहत गुण खेल ओटपाइ के ठने रहैं ।
३. मु. जितने ४. हैं. गुण होत इते

कवित्त

भगें गरवाई, निंदा करत पराई, लगत
न चित जाई कहूँ भजन भलाई में ।
मद रहै छाई, सिष सिपै न सिपाई, बम्यो
करत सदाई तन तरुनी पराई में[1] ।
करत लराई, मार देत जाई-ताई फिरें
अंद्यो डोलै भारी जिहि जोम अधिकाई में ।
करत बुराई, निस दिवस विहाई, ऐसी
अवगुनताई, सदा होति तरनाई में ॥

वृद्धावस्था : पुरुष उवाच

तरुनापन के गअे जब, वृद्धावस्या[2] होइ ।
जग के जीवन कौं तहा, नर यतने[3] सुप होइ ॥

कवित्त

बडो करि जानें, पुरिषतन[4] कौं मानें, मिलें
बैठे पान-पानें, ताकी सबही महत है ।
करत सहाय, दइ देन नहीं ताद, मन
हरि में लगाद, सुकरम कौ गहत[5] है ।
'सुकवि गुपालजू' कुटब सुप देपें सदा
कारे महँदे ते सुप अजगो लहत है ।
सातकी गहन, काम क्रोध कौं दहन, याते
येते[6] सुप सदा वृद्धनाई में रहत है ॥

१. मु. बगिनी करत सदा तरुणि पराई में २ मु. वृद्धावस्था ३ मु. तितनो ४. पुरषातनकरि ५ चहत ६ मु. एतो

स्त्री उवाच

दोहा

हाथ पाँव रहि[1]जाइ, कुटम कह्यौ मानत नहीं ।
वृद्धावस्था पाइ, बहुत भलौ नहि जीवनौ ।।

कवित्त

गात गरे जात, सब दाँत झरे जात, संग–
साथी टरे जात, बात सूझति न थापे मैं ।
हीन है निवल, जान रहै बुधि बल, वन–
अचलहि हीन, बहु भोजन के धापे मैं ।
भोग के करे पै, रोग दाबत है आय औ'
सुपेदी छाय जाय, मन रहतु न आपे मैं ।
सब सुख ढापे, रूप रहतु न नापे, थर–
थर देह काप्यौ करै, आवत बुढापे मैं ।।

दुरमति : पुरुष उवाच

दुर्मति जिय की जाति पुनि, दुरमति होत अदोत ।
कुरवति जाही की बड़ी, दुरमति ताकी होत ।।

कवित्त

बड़े बड़ी साथि, जाहि जाने लोग लाप, औ'
लजीली होइ आँपि, बचि जाइ दुरमति ते ।
'सुकवि गुपालजू' कलंक न लगाइ, जस
जग मैं बढाइ कै, बढ़ाय अुरमति ते ।

---

1. है. थकि. सु. थकिजाइ

अधिक कमाय चाहै, ताके पास जाइ, पाइ
दरजा मिवाइ, जाइ बैठे कुरमति ते ।
बैरी सुरमत, काज होत कुरमत नित
नई मुरवति, लोग रारै हुरमति ते ॥

स्त्री उवाच

दोहा

मांगत हुरमति जाइ कै सदा आठहू जाम ।
हुरमतिवारे की जबै, हुरमति गये राम ॥

कवित्त

आपना मरम जाइ कहि न सकत होइ
हिय ही में दहम, सो मांझ लोग बारे न ।
सरम की मेधा, गोहा धिग्नु रहन जब,
आइ कै सतावै लोग घरि घरि द्वार को ।
'सुकवि गुपाल' नाही परि न सकत तब
हरि ही मरम सदा गपन विचार को ।
मन जात मारे पाछे जान घरवारे याते
होत दुखभारे, सदा हुरमतिवारे को ॥

जसी : पुरुष उवाच

दोऊ लोक स सुख मिलत, हाथ सजन में मन्त ।
जिन के जस है जगत में, जीवन जिनके धन्य ॥

सवैया

घर में धनि-धन्य कहे सबही, कबहीं न तिनें दुख दीवत हैं।
सुर देह धरे, सुर लोकहि में, सुपहीं सों सुधा नित पीवत हैं।
भरि आनंद में यों 'गुपाल' कहै हरि के पद पंकज छीवत हैं।
जिनके जन फंसि रहे जग में सो मरेऊ सदा नर जीवत है ॥

स्त्री उवाच

दोहा

सहस कष्ट करिकैं सदा, लहस रहै जो कोइ।
रह सब हमते जगत में, सहजहि जस नहि होइ ॥

सवैया

करते इहि लोक ही में निघटे, परलोक मिलें नहि लोवन कों।
परचे धन, कष्ट करें तेई होइ, सो पूरबलेई नर्सावन कों।
सहजै यह होत नही कबहीं, पचिके सो मरी क्यों नर्कावन कों।
पुरिषान के पुन्यते 'राम गुपाल,' मिलैं जग में जस जीवन कों ॥

कुजसी पुरुष उवाच

ढीठ बड़ो होइ पंचन में, रुगि बाद करै सो दबै न किसी ते।
कोऊ न जाचिक आइ सकै ढिग, भोजन मांगि सकै सो त्रिनी नें।
होइ योरे किधेंहू बड़ाई बड़ी, बिगरै पै कोऊ के नर्क न किसीनें।
मुनि हांसोत मानों 'गुपाल कवी' जगमैहैं सुघी कुजसी गुजसी नें ॥

स्त्री उवाच

दोहा

जिनकों कुंबयो करत सब, घरघर में नर नारि।
याते कुजसी नरन कौं, जग जीवन धरवार ॥

कवित्त

जूक्यौ करै जिनकौं सबही, कोऊ जानै नहीं वँह कौन परे हैं।
भोगन नर्क न जाइ अहा, सु यहा दुष मैं दिन रैनि भरे हैं।
काहू के काम मैं आमे नहीं, जे व्रथां जग मैं विधना ने घरे हैं।
ग्वाय गुपालजू जे कुजसी नर, जीवत ही जग मांझ मरे हैं॥

सपूत : पुरुष उवाच

पितर त्रपति पावैं सकल, बढ़त धम्म धन सूत।
सुजस होत सब जगत मैं, जहँ घर होत सपूत॥

कवित्त

*कुल मरजादी, भारी करैं सदा सादी,
परमारथ को वादी, पास बैठ न गपूत के।
लोकहि सँभारै, परलोकन सँभारै पूरी
पैज-पन पारै मान वोनैं भलो कूत के।
मातपितु सेवै, नित सेवै हरि देवै, जाको
जग जस जैवै, दीनो जाचिक बहुत के।
अति हितकारी, उपकारी कविरायन को
भनत 'गुपाल' ऐसे लछन सपूत के॥

स्त्री उवाच

कवित्त

गढ़ पुरियान की सो निंदा करवावै अब
कौड़ी नहिं छोड़ै धन करत विभूती मैं।
चलन न गहै, आगैं पाछैं न निगाह करै,
रिन करि जाय, काज करि मजबूती मैं।

* १० म द्द कविता सुत गति के अंतिम कविता है।

'सुकवि गुपाल' बड़ो नांम नहिं पावे, सब
थोरो ही कहावे, जस करत बहूनी में।
करत कपूती, कुलके कौ करै जूती, याते
येते दुख होनह सपूतहि नपूतों में ॥

भड़वाई : पुरुष उवाच

सवैया

नहि काहू सों नेंक घमड करे, नमृताई सों शोस बितावतु है।
नित प्यारो रहै घरवारहू कौ, पितु-मातहि मोद बढ़ावतु है।
कोऊ नाम धरे नहि कारज में, करे थोरे ही में जस पावतु है।
मदामरुजाम अे पोटे दोऊ बड़े, कांम में कांम नुआवतु है ॥

स्त्री उवाच

दोहा

नांम धरन सबरो जगत कुजस होत हरि पोन।
कुल कपूत के ऊपजे, कुटुम अँधेरो होन ॥

कवित्त

बढ़िके हथ्यार रन भूमि में चलाअे नांहि,
दीयो नांहि पन, दुखी दीन की कमक पै।
भनत 'गुपाल' कबी ऊचो कर कीयो नांहि,
जाचक कौं दीयो नांहि जस की चमक पै।
कविनके मुख कविता को स्वाद लीयो नांहि,
रीझे नांहि कहूँ राग रंग के अमक पै।
बूड़ो मने कोऊ अबदिनतु दमेक ते ये
छैल बने डोलें कहो काहे की ठमक पै।

दानी : पुरुष उवाच

ऐते नृप दानीन कौं, होत देन में दान ।
देस देस में जाय जस, गावन कवि गुनमान ॥

कवित्त

बड़ौ धर्म-काम, औ' अमर होइ नाम, भोग
भोगै स्वर धाम, पुनि पावै राजधानी कौं ।
भोरहिं 'गुपाल' उठि लेत जाकौ नाम आठौ
जाम गुनमान, जस गावत समानी कौ ।
बड़े बड़ो धन, लागे मुक्त में मन, करि
दया उपकार उपदेसन अगुवानी कौं ।
दर्इ राजा रानी जग कीरति रमानी होति
जेते नृप आनी, सदा दान देन दानी कौ ॥

कवित्त

जाचिक कौ देखि कै, त हँसि मृदु बोलैं बैन
बचन सुनाइ देइ आनंद महान है ।
श्रद्धा करि देइ, रीझ माझ मन भेइ, पुनि
कवि के कवित्त की बहुनि करैं बान है ।
भनत 'गुपाल' रीति दानी जे दयालय की
थोरौई मौ देंनौं औ' बहुत मनमान है ।
प्रीति बिन देवौ, अनगण धन काम कौ न
प्रीति करि देवौ कन मन के समान है ।

स्त्री उवाच

दोहा

देनों करन कबूल पैं, भरनो परत कबूल।
दान देत दानीन कों, इतनें दुख के दूल ॥

कवित्त

धरम के संकट कों सहनो परत, घर–
आए राजी होइ नहीं याचक कौ जितनें।
'सुकवि गुपाल' कछू पाछे जो बनै न कहूँ
कुटुंबै कपूत कहुन्यौ करें लोग कितनें।
पुन्य बीच पाप द्विज–दीन कौ सराप आप,
बड़ो परताप ताप सह्यौ करें नित नें।
प्रभु गाढ़े सत बड़ी सूछम है गति तासों,
दान देत दानिन कों होत दुख इतनें।

स्त्री उवाच

दोहा

देखत म्यों ही रहै, पुनि बोलें मन मारि।
अस दानिन के दान कौ, देवो है धरकार ॥

कवित्त

आँखिन में सरम न धरम करम जानें,
सुकृत सुजस नाँहि राखत है लाज कौं।
'सुकवि गुपाल' प्रतिपाल करैं दीन, कौ न
कौन गहि रहै, न सँभारे परकाज कौ।

करनी करै न दिन भरै मरै कौडी-
काज, जोरि धन धरै न खालो करै नाज कौं।
कुजमी कुपूत कुकरम के करैया कर
कायर कुबुद्धी करा दैहैं करि राज कौं।

सूम : पुरुष उवाच

धरै सुमता सुप सदा, येसू मन को होन।
दाम लगै नहि गाठि को, जग में होन अदोन॥

कवित्त

मांगि न मागत, कोऊ जात दरवाजे जाइ
दुर्वचन दसैरा गारी गमी की रसूम कौं।
काढत 'गुमान' नाम दाता तें गरग अंक
नांही त्यौं गाय जगि रापै छान छूम कौं।

जुर्यो धर्यो रहत, कपूत धौं सपूतन कौ
परच न होत धन सेयो करै भूमि कौं।
जग में मसूम करै जानिए न धूम, ऐते
होत रोग-रोग गुण एते सदा सूम कौं॥

स्त्री उवाच

दोहा

मेवा सौ मरि जाति है एक दमरी के नाम।
याते भूलि न लीजिये, सूम गाठ को नाम॥

कवित्त

नाहक कुजस धरवावंत जगत मांझ,
नाम धरवावत कुटम पितु माता कौं।
गारी पाय लेत, कौडी देत प्राण देत, कोऊ
नांम नही लेत, अुठे जाको परभाता कौं।
कहत 'गुपाल' मर्पा चूस भौ मचूच, कवी–
परचै-पपावै नही, मांनि गोत नाता कौं।
ऋस रहै गाता, पर ओपरहू पाता, तऊ
अेक परिजाता, लेपौ सूम अरु दाता कौं॥

मंजूच : पुरुष उवाच

सवैया

बैठिकैं पचपचायनि में सदा, बातन ही की कर्‌यौ करै रेलें।
का[illegible] बाट में आमे नही, सदा 'नामगुपाल' नफाहू में पेलें।
कामके काजैं अधीन रहे, भअे काम पै फेरि रहे नहि भेलें।
सोषनें जान न देत है मोकि, जे और में आइकैं मूसर मेलें॥

स्त्री उवाच

कवित्त

जाके करै पै बुरौ समझ, जनो प्यार करै पै बिगार करीजै।
जो अुपकार कौं मानैं नही, तुर्दा दीन की देखि दया सौं न भीजैं।
झूठा हत्यौ निरदै करदी मनचोर कुरमें कं काहु न दीजै।
आपनौ चाहै भलौ जौ 'गुपाल' तौ भूलिकैं अैसे कौ सग न कीजै॥

स्त्री उवाच

दोहा :

सत्य काजै नीच घर नीर भर्‍यौ हरिचंद
सत्य काजै भेजे बन राम छोड़ि गद्दी कौं।
सत्य काजै करन नैं कुंडल कवच दये,
सत्य काजै धर्मसुत सहे कष्ट जादी कौं।
सत्य काजै बलि दई त्रिलोकी कौं पताल गये
सत्य काजै जगदेव दीयो सिर आर्दा कौं।
कहत गुपाल जेते सबही जुगादी बड़े,
बड़े कष्ट होत सत्य मार्ग सत्यवादी कौं।।

झूठा : पुरुष उवाच

कवित्त

जहाँ जाइ बैठे तहाँ आदर अनेक करै
पूछे घने जाम मान मार्‍यौ करै भोले ते।
सुकवि गुपालजू विद्वान करै दासौं लोग
भोग भोग्यौ करै मतलब काढ़ि ओले ते।
साँचौ बनि जात, ताइ यामैं केऊ घात, ज्यादू
किये पाछे हाय, कहा करै कोऊ पोलि ते।
सत्य बोलिबे ते जेते सकत न काम, अब
जेते काम सकत असत्यहि के बोले ते।।

स्त्री उवाच

सोरठा

मिथ्यावादी धूत, कहत लोग जानी सबै।
बोलत झूट अकूत, ते नर नरकहिं पावहीं।।

कवित्त

धर्म यस हानि, औ' मनानि होत धार्मि, भोगे
दुप आनि प्राण जात वात बात पोले ते।
जहाँ जहाँ जाय तहाँ तहाँ जाय झूठो होत,
होत बड़ो पाप, परताप ताप तोले ते।
मित्र नर्क जात, औ' अवासो वैठि जात, सत–
सगनि परेवा हाल मार्‌यो जात भोले ते।
कहत 'गुपाल कवि' पचन मे बीच बहु,
झूठन को होत दुप ऐते झूंठ बोले ते॥

सुतसंतति : पुरुष उवाच

जागत पोरि कुटुंब की, जग जस होत विख्यात।
गृहस्थाश्रम सुत भये, यतने सुप सरसात॥

कवित्त

चलन है नांम याते पितर त्रपति होत
वंसह बढावै बरसावै जग भूजो है।
जाने याजें केते राज रिषिन तपस्या करी,
है नरि अधीन देई देव तन पूजो है।
जगत में या बिन अनेक गुप हौंर, तऊ
फीको लगे धाम–गांम–नांम–घाम¹ हू जो है।
भनत गुपाल याही मनिषा जनम में
पदारथ रतन धन सुत सो न दूजो है॥

---

१. है म नहीं है। २ है. घम

स्त्री उवाच

दोहा

सुनि कुवड़ाई[1] जगत में, लक्षन देषि सपूत ॥
मात–पिता रु कुटंब कें, तब दुष होत अपूत ॥[2]

कवित्त

रहत विरान नहीं, पावत कमांन, होत
पर्द अप्रमान, पान पांन पुन्य दांन में[2]।
सुकवि 'गुपाल' दुष पावत है प्राण तब
करत कपूती कहुँ सुनें निज कांन में।
होत जब जुवान बस परत विरान जाके
पालत मैं आंनि नर्क भोगत अठ्यान में।
घटै बल जुवान, तिग विगरै निदांन, आंनि
होति ऐती आन, सदां सुत की संतान में।

कवित्त

पितर अभूत–भूत पूजने परत केते
देई देव ध्यावत में, सर्से रहै आन के।
वैद–स्यानें–जोतिसी हो पाये जात घर
बहु परच रहत जाके सदां पुन्य दांन के।
जीवन जनम जाको पारजौं कठिन सब
छोड़ने परत स्वाद आछे पांन पांन के।
'सुकवि गुपाल' कहु होत नहिं जांन तिय
विगरै निदांन होत सुत की संतान के॥

---

१. है. हँ ति बडाई
२. है. प्रति में यह नहीं है। इसके बदले "सपूत" का दोहा है। "कुल मरजादी......(कवित्त)।

बेटी की संतानि : पुरुष उवाच

कुल कलंक छिपि जात सब, नाते घर घर होत ।
पाप कटत सब देह के, सुता जास घर होत ॥

कवित्त

जानें घर बार, औ' सजन आवैं द्वार नर
नारिन के पायनि की होइ जानि हत्या है ।
निवारनि नान, औ पवित्र करें धाम, करवावें
पुन्य काम, धर्मरत अनगन्या हैं ।
'सुकवि गुपाल' कैई ठौर होत नाते, बड़े
भागि होत जाके, ताके दूजी ना धरन्या है ।
मानिबे कों मन्या, सुरा तारन तरन्या, भागि
करन कों धन्या, सो बनाई विधि कन्या है ।

स्त्री उवाच

दोहा

जाके जीवत जनम लौं, परत न कल दिन राति ।
देखन बेटी कों सुनिन, चिंता में दिन जात ॥

कवित्त

जनमत सोग, जन्म जीवन कों रोग, वर
वर चाहे जोग, सदा देनी परै बेटी कों ।
सासुर में रवावें, घर पूछो बार आवें, धन
परायो कहावें, नित चिंता रहै बेटी कों ।

'सुकवि गुपाल' राजु रंक कौं नवावें, पन-
पन नहीं पावें, करें भर के अमेटी कौं।
परत न छेटी, नैंचे दौलति इकेठी, बात
करत न हेठी सो बनावो धन वेटी कौं।

ब्याह सुख : पुरुष उवाच

चलन चलन भव गौं च न, भोगन भोग विलास।
ब्याह भये ते होत ? कनिक सुक्ख प्रकास॥

कवित्त

जग्य व्रत दांन सब याही ते सफल होत,
पावें जस नाम, ब्रहु वंस के बढाओ ते।
मानत अनेक मनपत कैंभू बातन कौं,
लछमी कौ होत परकास याकौ पाओ तें।
'सुकवि गुपाल' चुकें तिनत कौ रित, बधार-
पन अुतरत, सुप पावत बुढाओ ते।
मगल बधाओ, मुदित होत श्रप्ति पाओ भोग
भोगत सवाओ सो तिया कौं ब्याहि लाओ ते।

स्त्री उवाच

दोहा

तीरथ व्रत जप तप कछू, भजन भाव नहिं होइ।
करनो ब्याह सु नरक कौ, सांमां जग में जोइ॥

कवित्त

देह बल छीन, हित कुटम न हान, सैनी
परे सबही को पूरो पेट न कमाअे ते ।
जाइ न सकत, पाय काठ में लगो, गरब्सेरो
होत जीवत लौं बस पे बढ़ाअे ते ।
नौन-तेल-चुरी-पूनी लातो औ न लानौ
रहे दिन रैनि अग लगन न पाअे ते ।
'सुकवि गुपाल' नित परख सवाल सदा
ये ते दुख होत हैं तिया को ब्याहि लाअे ते ॥

सुहाग : पुरुष उवाच

बालन हित नित कुटम सौं, सुख हानि पिव-सार ।
पिय के संग सुहाग तें, सुख हाट अपरंपार ॥

कवित्त

होत रहे सदा सुत—सुता के जनम जामैं,
भूषन वसन भोग अवगाहियत है ।
'सुकवि गुपाल' पिव-सार ससुरे में नित
जावैं पीछैं सबही के मन भाइयत है ।
लाड़-चाव हुकमहु आदर अकर मन
मान के गुमान में न काहू लाइयतु है ।
प्रीतम के संग, अनुराग बस भये बड़े
भागिन तें जग में सुहाग पाइयतु है ॥

स्त्री उवाच

कवित्त

हाथ मैं न चूरी, कबी कांन मैं न बारी, परी
मन की न बूझी, बान भरि अनुसंग तें ।
गांठि मैं न गथ, रह्यो हाथ मैं न नेपौ तातौ
पायौ रातौ पहर्यौ न बसि कै सुजाग तैं ।

मनपति मानि, दीयौ लीयौ नहिं काहू भोग्यौ,
जनम दरिद्र तन जारि कलहागि तें ।
सुकवि गुपाल जाके फूटि जात भागि तिय
ऐसे ही भली है सदा ऐसे तौ सुहाग तें ।

जुवानी मैं व्याह : पुरुष उवाच

फिरि करि जुवानी चढ़े, सबही सौं नेह बढ़ै
कढ़ै आछो रूप तन तरुनी कौ छोअे तें ।
नित नअे नांते, दुहुधा ते दाति आवैं, पावैं
हृदय मैं चैन शात परत न बीओ तें ।

बढ़त गुपाल, मुसरारि सौं सरस नेह,
देह लाल होति, घरै बरैं कृत्त दीअे तें ।
जब लग जीवैं, हीयें रहत अनंद, अेते
सुष होत दूजा जुवानी मांझ व्याह कीअे तें ।

स्त्री उवाच

गित भोजन भूपन चाहें भले, नहि छोडि सकें घर घेरहि दीज ।
मन रापनौं भापनौं मीठौ परे, कतहू कल नाहि परे जब पीजे ।
घर रोप विना नहि काम सरे, यह रापे ते सासुरे के निन होजें ।
छीजें सरीर पसीजें तअू, नहि याते न दूजिहा ब्याह को कीजें ।

दूजी ब्याह पुरुष उवाच

ठसक वही मन में रहै, धमक न मारे जाइ ।
ब्याह दूसरे को बहुत रहत हिये में घाइ ॥

कवित्त

ताप को नसावे बूढे भये सुप पावे, फूल
अग न ममावै, काम पूरत है चाह के ।
'सुकवि गुपाल' तरुणी तरुण औ' बूढापे—
नों संतानि भयो करे घर जाह के ।
बन्यौ—ठन्यौ रहै, तन कलप लगाय, बग
धातुन कों पाइ, भोग भोग्यौ करे लाह के ।
नित नये चाय, धन बढत जिराय कहे
बात न अुमाह, बस दूजिहा के ब्याह के ।

स्त्री उवाच

दोहा

रापत जाके मनहि को सदा होत दुप घोर ।
दूजिहान की जोड़ को, तरयो करें सबकोइ ॥

कवित्त

देटा देटो दहून कों होत दुख नारी, इन्हें
कलह कौ दोस नहीं कहूँ छिजियतु है।
छदन्नों पठाय हित, घर में दुरानो करै
चोरन में बुरि डारै, निज लजियतु है।
सेज जोगी होति, जब गोरि जोगे होत, बात
पातरि में लावनि न जवहिं जियत है।
'सुकवि गुपालजू' बुड़ापे मोल निज लेते
दुजिहू के ब्याहन की होति कजियति है॥

दूजिहा की इस्त्री : पुरुष उवाच

दर्शन न काहू को कबहुँ, भारी होन निराज।
दुजिहान को जोड़ घर बैठे भूजे राज॥

कवित्त

बेटा-बहू नातिन के हाल सुख देखें वही
सबकी कहावे सदा प्यारी रहै नाह की।
तुम्हें 'गुपाल' सो नचायौ करै नाच जाको
चाह रहै घर में चलति बात जाह की।
रहै हृष्ट-पुष्ट कनगन ठनगन ठौनि
चटक-मटक सौं रहति बड़ी गाह की।
नेहा होत भारी, नहीं वहै नर नारी, सदा
दुजिहा की नारी, जैसे सारी बादशाह की॥

स्त्री उवाच

दोहा

छोडि धरम्ह सिंगार को कन्हूँ नान नहि होइ ।
करनो ब्याह सु नरन की नाम जग म जोइ ।

कवित्त

लजनो परन माग माथ ही महूनिन न
सरन न जान दिन यो ही वैम नागी क ।
सुकवि गुपाल जब रनि जारी हान नद
मर्यो करै मान यिवै जीन दवि प्यारी कै ।
सबही रनाव सुप कबहू न पाव सदा
यो ही दिन जात है पडारो माथ प्यारा क ।
पावै दुप नारी औ विटामें नर नारी धम
रापै गिरधारी सदा रजिहा वा नारी क ।

दूनैइस्त्री के पुरुष उवाच

दाऊ करे प्यार, दाऊ गज गप नार मरा
होहि अपार मजानीयो नर रनि की ।
सुकवि गुपालजू रहाय आरून पून
दुहरी सैंतानन ता मान सनपति की ।
रहसि-वहसि घल हुँस पर रहै वडी,
सहस में दीगे वान पावे सुभ गति की ।
वढे धन अति, जोगे अर रहै गा, तोपै
मिलै सुप सब दरै नुगार क पनि की ॥

स्त्री उवाच

दोहा

द्वै विवाह करि कै कहूं, तनक करै जो भेद ।
ले हवाल होइ जास के, पावै अनगन पेद ॥

कवित्त

अेक अंचै पांअु, अेक चुटिया कौं अैचै, निम
नारि जांम राति जे हवाल रहै जाई तैं ।
जाकैं नहिं जाइ, सोई जुती नये ठाढ़ी रहै
फजियत चारे अैसे भयौ करै ताई तैं ।
'सुकवि गुपाल' बनि दुविज कौ बेकरालो
कन्तह कौं मारयौ कहि सकत न साई ते ।
द्वै करि दुहाई, हत्या देनि रहै नाई, पालौ
पारै नहिं काई, राम भूलि द्वै लुगाई तें ।

रँडुआ : पुरुष उवाच

बन्यो ठन्यो तन देखि हिं, गावति है वहु शोइ ।
नव ब्याहे मिटि जात सब, रँडुअन की सुध होइ ॥

कवित्त

बड़ो परमाद जाको कामी रहनि निज
करत न कहीं कहीं जानी जौन वारे तें ।
'सुकवि गुपाल' निज सौंहें रहै मन, निज
भामिन मैं नहा मारची करत नहाने तें ।

जायवे कौं राव कौं दिपायौ करै भय जासौं
नित नई नारि हित रापति निहारे ते।
नाले मेटै सारे, रोमैं लरकान वारे, याते
होत सुपभारे रँडुआ कौ घरवारे ते॥

स्त्री उवाच

दोहा

रोटी–पाटी वास दुप, अरु कलक लगि जात।
राड बिना रँडुआन कौं, रहत दुष्य दिन राति॥

कवित्त

क्यों निगि नित तोता सौ पटायौ करै,
नित प्रति यामें घर होत भडुआन कौ।
'सुकवि [illegible] न' घरवारी न पत्यारी करै,
मर्‍यौ करै मान, जाके देपि घरवान कौ।

वास बसै न्यारौ, कहै बनारौ हत्यारौ, टोना पान
कै [illegible]नारौ पान कौ दै भडुआन कौ।
चनन न नाम, औ' [illegible]टायौ करै [illegible]
रहै दुप धाम निय [illegible] रँडुआन कौ।

राड के सुप : पुरुष उवाच

[illegible] हरि [illegible] जावी [illegible]।
[illegible] ने या राड कौ, [illegible] [illegible] ॥

कवित्त

मायके औं सासुरे के नीकें रहैं मन थिर,
कहै कोई गाई गोद रहै घर थापे को ।
उपजै भगति [illegible]–ज्ञान में लगति मति,
जप–तप–[illegible] करै सो लगै आपे को ।
'सुकवि गुपाल' होइ मरद समान सब
राखैं [illegible]–कानि मिटि जाव दुप जाने को ।
घर [illegible] [illegible] रह्यौ करै, तातें,
निरद्वंद [illegible] आरे, सुख पाइके रँडापे को ।

[illegible] उवाच

दोहा

घर घर में रसिक न फिरत कोउ न बूझत बात ।
ह्वै आपन बिन [illegible] के सकल सुख्य मिटि जात ॥

कवित्त

विश्वास न आवे, औ उपाधि न उठावे, सबै
सीधी हो दिखावे, दिनराति जाते डरिये ।
'सुकवि गुपाल' जासों जीतत न कोऊ कहूँ,
मानति न नेंक ताकों केतो परिचरिये ।
चढ़त रडापौं, पद ददनि न काहू, विकरे
पै डाटि सकै कौन ताको अेक करिये ।
मांडिवे को भांड, रहै भिरिवे को सांड, याते
भूलि काहू रांड को भरोसौ नहिं करिये ॥

कवित्त

होइ जो वै लाप की बढ़ावै तऊ पाप ही की
मानत न साधि डर रहत सरापे की।
भोजन न भावै दिन कुढ़त ही जावै सुष
सेज न सुहावै, न सँभारि सकै आपे कौं।
'सुकवि गुपाल' मन रापनौं कठिन, जाकी
राषैं लाज हरि हँसि बोलें लगैं पापे की।
पायो करै टापैं पच्यो जाइ नहि तापैं, कह्यौ
जात कहू कापैं, दुष अधिक रँडापे को॥

मतेई : पुरुष उवाच

दोहा

सब सौं निडर रहत सदा, कुल को करत सुघात।
सब में सिरें रहै मर्दा मतेईन की बात॥

कवित्त

माला रहै हाथ, जाकी सेर रहै बात, छोटि
उमरि के जात ही में देवै सुष चौगुनो।
जाकी झूठी बात, साची माननी परत निज,
साचीहू कौं झूठी सुनि करनों न घोवनो।
'सुकवि गुपाल' जाको मोघनो रहत पुनि
करनौ परत जाको अदब सु नौ गुनो।
माननो परत, औगुनो हू गुनो सो गुनो, सो
नेहा होत नाही ते मतेइन कौ सौ गुनो॥

स्त्री उवाच

दोहा

बुरो करति पिवसारियन, बुरवाई है बौत ।
मतेईन को अंत में, याते दुप वहु होत ॥

कवित्त

हितहू करे पै जाको अनहित मांनें सव,
वैर–भाव ठांनें, दात घरें रहै तेई कौं ।
'सुकवि गुपाल' रहै सवते अलग, काग
चुडामनि जैसे तासौ मूत नहि केई कौं ।
पाछे की न आस, अघ काटे ज्यौं फरास, नहि
जाकौ विसवास, सुप रहत न देही कौं ।
बूझ न मतेही, ताकौं टारत हतै ही याते
सवके मतेही, बुरौ जनम मतेई कौं ॥

सौतेला : पुरुष उवाच

कवित्त

सुत ते सरस सुप दीयौ करें सदां, वहु,
दवत रहन सो सँभारें भली मौत कौं ।
मांन औ' गुमान, तापै टसका वड़ौ रहै, वड़ौ
टसक सौं रापै हित करि करि वौत कौं ।
'सुकवि गुपाल' जाकौं मनपति मांनें धनी
कहै सोई होइ सव देप्यौ करें कौतिकौ ।
मांनें जो घरोत, धन जोरत अकौत, याते
केतै सुप होत, है सोतेलन ते सोत कौं ॥

स्त्री उवाच

दोहा

दूसरे को घर में न कवी देषि सके, मुष-
आवे सोई वकं सुष चाहत अकेला कों।
होतु है गुपाल' सब माल को अघंत, हाथ
परे पाछे दाम, दे न सकत अधेला कौं।
करि के कलेस, जर जमन न देइ, को
अुडायो करे धूरि, कुनें काढे करि भला कों।
पारत पटेला, औ' मचायें रहे हेला, याते
सौति ते सरस साल सालत सुतेला को॥

सौतिके : पुरुष उवाच

सवैया

दुष औ' सुष में दोअू अक रहें, अति गुप्प लहै तन ताप गयौ है।
बहु बस बढै अपने पति कौं, उर में अुपजै अनुराग नयौ है।
'रायगुपालजू' आनंद में अुर में अुपजै अनुराग नयो है।
सुम्मति सों जो रहे घर तो सुष, सौतिन को नहि जात कह्यो है।

स्त्री उवाच

सेज बटावति आधी सदा, नित देषत ही हियें जाति जरी है।
राषै न हेत सुता सुत सों, सुष बाप कछू ताको चाहे मरी है।
प्रीतम के सँग काम-कलोल की ताकों सुहाति न नेंक ररी है
'राय गुपालजू' या जग में नित चूंनहू को होइ सौति बुरी है॥

कातनहारी : पुरुष उवाच

कट कटाक्ष कटि ग्रीव नवि, छवि सों गतिसों लेति ।
चातुर कातन-हारि कों सबही सों रहे हेत ॥

कवित्त

दिन कटिजात मन ऊढम में लग्यो रहै
मौसर मरें न पास पैसा रहै धूत कें ।
'सुकवि गुपाल' पीधी पलिका पै पौढ़ि, घर
परच चलावै कांम करत सपूत के ।
आठऐं दिना कौ सदा पैंठ करि करि तातें
अलन चलन कर्यौ करें धिय पूत के ।
देह मजबूत, वस्त्र बनत बहुत सदां
सबही सौं शूत रहै कातन में सूत के ॥

स्त्री उवाच

दोहा

जोरत तोरत तार कों, त्यौर मंद परि जात ।
कातन कातनहार के, टूटत है कटि हाथ ॥-

कवित्त

मावस औ' पून्यो, ठिक व्याह औ तिहार वार
अकतो रहत पूजें देवों औ' अभूत के ।
'सुकवि गुपाल' पैंठ करनी परति त्रिकें
पुरिया के पुन्यन ते दीयें बड़े धून के ।-

पाय जात कोरिया पडेरे औ' सराफ नफा
पटै जब दाम हाथ मेजै मजबूत के ।
रोमे धिय पूत, देह दूपति बहुत, दुप होनह
अपूत बट् वातत में मूत के ॥

पनिहारी : पुरुष उवाच

कवित्त

सादी गमी ब्याह औ बधाई ठिर ठहुरे मैं
जीवना रहति मन दिनन निहारी को ।
घर में 'गुपाल' सानी जिस्मि आइ रहै बड–
मोरी लीयो करै भली स्यारी–अनहारी की ।
पनघट घाट पै निजारे मार्यो करै बोली,
ठोनी मारयो करै देह् रादनि नयारी की ।
क्यारी सधै न्यारी, देह रहनि सुपागे, बडी
होति मनुहारी, पानी देत पनिहारी की ॥

स्त्री उवाच

कवित्त

घर कटि जात औ कमरि रहि जानि ठेक
धरति गुपाल सिर, धरै घट भारी है।
लगनि चपेट, आइ जानि चोट पेंट, डर
ठेरर रपटिबे की कीचर अँध्यारी है ।
बोली–ठोली सहैं, मिन घर–घर वहैं, वस्त्र
सज की रहै न रहै राति दिन प्यारी है।
होनि बिभचारी, देर लगे पाति गारी, तीन्यो
पनन की हारी, गोई होनि पनिहारी है ॥

पुरुष उवाच

कवित्त

जुकि कें भग्न की वरनि नहि जाति छवि,
दवि जात रति सोभा देपि सुकमारी की।
जेंचत रसी के: अुरवसी के गे भाव करें
भुज की टुलनि आंपे चलनि अन्यारी की।
'सुकवि गुपाल' नाभि त्रिवली ललित जाकी,
कंचुकी में कुच अंग ओढ़े नील सारी की।
वैस करि वारी, फुलवारी में निहारी मन
गयौ पनहारी, अदा देपि पनिहारी की॥

कवित्त

लांवी लटकारी सुकमारी वारी वैस जाकी
ताके कुच पीन कटि छीन ब्रजनारी की।
नैन सफरी से, वैन मधुर सुधा से, छुर
कामहि जगावै, सारी ओढ़ि कें किनारी की।
'सुकवि गुपाल' मान मोती मनि मानिक की
वानिक की सोभा, हिय हरन हमारी की।
वैस करि वारी, फुलवारी में निहारी मन
गयौ पनहारी, अदा देपि पनिहारी की।

इतिश्री दंपति वाक्य विलास नाम काव्ये प्रकृति प्रबंध वर्णन नाम
चतुर्विंशो विलास:

पंचविंशो विलास

अथ परमारथ प्रबन्ध वर्णन

दोहा

चारि बरनआश्रमन के जे पाअे रुजिगार।
प्यारी के आगे सबै बरने[1] सुकवि गुपाल ॥

सुनिकें तियपरवीन ने बुधि बल दीनी डाट।
सबमें औगुन काढि कें तें[2] सब दीने काटि ॥

अैसो या संसार में मिल्यो न अुद्यम कोइ।
जामें दुष्य न अूपजै, सुष्य सदा ही होइ ॥

तब हिय हारि 'गुपाल कवि', कही सु तो सों[3] बात।
अपनी बुधि बल ते तुही, करि[4] अब कुछ विष्यात ॥

तब गुपाल कवि की तिया, करि विचार मन माहि।
बरनन कीनों सुकवि सों, तामें दुष कछु नाहि ॥

स्त्री उवाच

दोहा

कृत्य कुटम के काज कों, करत सदा सब कोइ।
जो जाकों नीको लगै, सोई नीको होइ ॥

---

१. मु. सकल वर्ण २. मु. सुघमें ते सुघ काढि के तें।
३. है. नारि सों ४. है. कही करि

सब उत्तम मध्यम सु वै सब निकृष्ट रुजिगार।
'कवि गुपाल' परवीन नर जानन मन को मार॥

एक स्वारथ रुजिगार यक, परमारथ को जानि।
इक धन प्रापति दूसरो, हरि मिलिवे को मानि॥

जिनमें करिवे के जिते 'तुम ने कह्यो न' एक।
वृथा करयो बकवाद तुम, बाँधि आपनी टेक॥

जे लौकिक रुजिगार ते[२], तुमन करे विख्यात।
परमारथ के हैं जिते, तिन मों[३] रहि अज्ञात॥

पुरुष उवाच

परमारथ रुजिगार जो, बरनि सुनाओ मोहि[१]।
तब तेरी सिष मानि कें, करूं जाय मैं सोइ॥

स्त्री उवाच

जिय जोष्यों को ज्ञान नहिं, जामें नफा अनेक।
प्यारे सो सुनि लीजियै, हम सौं सहत विवेक॥

परमारथ : पुरुष उवाच

कवित्त

पूजा, पुन्य, पाठ, परिपूरन प्रगट प्रेम
पैजपन पारि[३]कें प्रभू के पद परनौं।
ज्ञान, ध्यान, दया, दान,[४]दीन–सनमान कथा
कीरतन–व्रत–नेम तिया[५] संग हरनौ।

१–है: यह दोहा है :–परमारथ रुजगार जो बरनि सुनाओ मोहि।
तब तेरी सिष मानि के करूं जाय मैं सोहि॥
२. है. मु. ने ३. मु. न ४ मु. है ५. मु. से ६. मु. मोइ ७. मु. मरि
८. मु. कटिके ६. है. मु. नहीं है

नवमों सरल, साच सीलता संतोष साधि[1]
साधु-मन-मग-सतसग अनुसरनौ ।
गुरनकौं ध्याइ, 'श्रीगुपाल' गुण गाइ, साच
भगति बढाइ,[7] हजिगार पाछै करनौ ॥

नवधा भक्ति

कही सिरी भागौनि में निज मुख आपु गुपाल ।
सो तुम सौं बरनन करूँ नवधा भगति बिसाल ।।

भगवत वाक्य

प्रथम भगति सतसग करै मनन की,
दूजें कथा सुनै 'श्रीगुपाल गुन गान की ।
तीजें गुर सेवावै, चौथें मोह कौं छुडावै, पांचें
मत्र जपि करै वेद वचन प्रेमान की ।
छठें दम सील बइराग धर्म साधै, सातें
मोहमय जगत दास सेते अधिकान की ।
आठ में संतोष, नवें सरलता आवै जब
पावै नर नवधा भगति भगवान की ॥

दोहा

श्रवन कीरतन सिमृन पद, सेवन अरचन जानि ।
बंदन दास्य' सखरूप निज, आत्म निवेदन मानि ॥

---

१ मु. सोइ २ मु. सरि ३ मु. कटिये ४ है मु. में नहीं है।
५. है मु. येर ६ मु. साबि ७ है मु. [illegible] ।

ब्रह्मग्यान

उद्धव प्रति श्री कृष्ण जो कही ज्ञान की गाथ।
सो निर्गुन परब्रह्म की सुनिये चित दै नाथ॥

कवित्त

अकल अनीह जो अमन्न अविनासी अज
अनभव-गम्य हृदयेस को सुमिरियै।
अगुन-अद्वन, जो अनामय अपड निरबोध
सुपरासी छिन न्चक न बिसरियै।
'सुकवि गुपाल' बारि-बीचि में न भेद, सदा
सोतें नाइ-तोइ में न भेद डर करियै।
मन गो अतीत जो अनूपम अरूप-रूप
ऐसे परब्रह्म को सदाई ध्यान धरियै॥

सगुन

गुजन की माल, पौरि चदन की भाल,
मोरपक्षन के जाल, कर कमल मनाल है।
नासिका सुढार, तीषे नैन रतनाल, बक
भृकुटि बिसाल, अलकावलि सुढाल है।
मद-गज-चाल, मुप बाँसुरी रसाल, ब्रजबालन
कौं प्याल, करि करत निहाल है।
प्रेम प्रतिपाल, सग सो है ग्वालवाल, को न
देषत निहाल होत प्यारे श्रीगुपाल है॥

इतिहास

दोहा

श्रुति समृति मत्र साम्प्र मथि बहुत अेक यतिहास।
ताके श्रवनहि मात्र ते कलि-मल होतह नाम॥

दवापुरान भुअ भार हरि, भली भाति निरवारि।
प्रगट असुर मारे बहुरि, छत्री रूप सुधारि॥

असुर मनुज वधु धारि निज, बल बढ़ावने हेत॥
करन लगे मख चाहरन, सुरन जीतिवे मेत॥

सुर रक्षन मोहन असुर नें हरि बौधवनार।
साम्प्र बनायौ रिपुन कौ मोह करावन हार॥

मोहित है ता साम्प्र तें, तजि मख गअे पताल।
जगय करन वारे दनुज साम्प्र गह्यौ ततकाल॥

दनजन सास्त्र पाषड की युक्तिन सौं जग मोहि।
जन अधार कौ हेत चो दयौ वेद मत पोहि॥

भगवत वाक्य

बटत अधर्म जब, जब धर्म हानि होति
पारथ मैं आपै कौ प्रगट करू चाह कँ।
साधन उबारुँ, सब दुष्टन कौं मारुँ, रक्षा
धरम की धारु, जुग जुग मास जाइ कँ।

अपनी प्रतिज्ञा यह सुमिरन करि मन
संकर कौ जानि निज रूप मम भाय कै।
ऐसे 'श्रीगुपालजू' की आज्ञा लैकै जब, तब
मकर ह्री मकर अचार्ज भयौ आइ कै ॥

श्रनी

चारि हजार बर्षि मे वर्ष, गर्भे अगि होतन होतन कीजिये ना।
बड़े ब्राह्मनओ बुधमानन वौं, मनै जानि सन्यास में लीजिये ना।
असुमेध गवाचय मानस पिंड ओ, देवर सौं सुत कीजिये ना।
कलि में सुनि पाचों विवर्जित ये रहिते सुनन्यासकों लीजियेना॥

दोहा

बुद्धि : मांन ब्राह्मनन ही, करै वेद मत मांनि।
तिन दिन कछु सन्यास के, कालहि वाकी मांनि॥

ह्वै अबुद्धि : त संन्यास श्रुति मार्ग चलावन हेत।
गौराचारज सिष्य सुक, सुम्भिन वदरि निकेत॥

बालपनहि अुपवीत लै लयौ मरन गुर जाइ।
तिन सिषि गोविंदचार्य सौं सन्यासाश्रम पाइ॥

जीति बौध दिगविजै करि, जथा जोगि श्रुति धारि।
ब्रह्म बोध कौ लोक में प्रगट करत भअे आप॥

अधिकारी तह बोधनें, भजे बोध आकार ।
तोऊ दुरलभ जग नरन ब्रह्म गोग अधिकार ।।

भगति मार्ग की प्रवृति हित, करि किरपा भगवान ।
सैमादिक निज पार्षदन, घर आज्ञा दई आनि ।।

करी भगति की प्रवृति जिनि पूजन क्रिया दिपाय ।
ग्यानधिकारी अन्यकलपि, दीनौं ज्ञान अडाय ।।

योग तीनि में नेक है, ग्यान कर्म भक्तयोग ।
जीवन के कल्यान हित इन सम और न जोग ।।

कवित्त

कहै करि विरक्त जिन त्यागि दीने कर्म
मत तिनकी गुपाल ज्ञान जोग होन पाको है ।
करमन ते छिन को विरक्त नहिं मन होन,
कामना करत ते कर्म जोग ताको है ।
भागिन ते, मेरी कथा माझ रति भई न विरक्त
नहिं बहु न विषय मांझ छाको है ।
भागवनि मांझ भगवान यह कही सदा
सिद्धि होन मेरी भक्ति जोग जग जाको है ।

दोहा

श्रुमत माहि जा जोग कौ, जाको है अधिकार ।
होअ प्रवृति जामें सोई, कह भगवान विचारि ।।

त्रय कांडन में सिमृत कौ, बहु कल्यान को मूल ।
ज्ञान मार्ग जिनि लोप किय, करि हरि वात अटूल ।।

क्रिया महत पूजान के, अधिकारी कम जांनि ।
जीवन कौ अद्धारःर असुमर्थ होत है मान ।।

सदा सप्रदाअे कही, वेद न कही विचारि ।
ताको तव तिन नें करी प्रथक प्रथक नैं चारि ।।

यद्यप दोप कछू न तँह, प्रगट करी हरि भक्ति ।
तअ जग मे करनी कठिन, पूजा कियन सजुक्त ।

ध्यान किये सतजुग विषें, त्रेता मषते जोइ ।
द्वापुर पूजैं फल मुकति, हरि कीर्त्तन ते होइ ।।

दोप भरे कलजुग विषें, लपियत वड़ गुण अेक ।
कृष्ण कीरतन करि मुकति, प्रप्ति होति सविवेक ।।

कृष्ण कीरतन नाम ते, कलि म जो फल होइ ।
कहि अधिकारिन भागवत, द्वापुर पूजैं सोइ ।।

पूजा की परधानता, द्वापुर युग में जानि ।
कृष्ण कीरतन नाम ही कलजुग में परधान ॥

सिमृत के अनुसार निज योग सिद्धि के हेत ।
नाम कीर्तन ही अवसि, निरनौ किय‍ै सर्वोन ॥

यदपि श्रवन अरु कीरतन, कहे यहा तौ दोइ ।
निन जोगन की ठौर करें, नाम कीरतन जोइ ॥

बडे बडे साधनन ते, लहत चारि फल सोइ ।
नारायन आश्रत नरन, बिन श्रम लहतह सोइ ॥

विधि नारद सवाद यह, कह्यौ वेद के माँझ ।
वेद पाठ साक्षात सो, लिखियत निरने काज ॥

विधि नारद सवाद

द्वापुरांत में देव रिषि, ब्रह्मा ढिग भयौ जात ।
कहि भगवन विचरत जगत, किमि जग तरिहू तात ॥

कहन भयौ ब्रह्मा तबै 'भलौ प्रस्न तैं कीन ।
सब वेदन कौं रहसि सो, मुनि यह गोप्य नवीन ॥

जाकरि कै कलि कू तरहु, सोहै जग मैं नाम ।
हरिनारायण आदि दै, श्रीभगवन सुष धाम" ॥

फिरि नारद पूछत भयौ "भगवन नांम सु कौन"।
कहन भयौ ब्रह्मा तबै "मुनि सुत वरनूं जौन"॥

मंत्र

हरे राम हरे हाम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

नाममाहात्म

ऐसे इस हरि नांम है, पाप हरन जग मांहि।
इनते परे अुपाय कोअू, वेदनहू में नांहि॥

कवित्त

षोडस जे नाम होई षोडस कला को लिगि,
है रह्यो ज आवृत सो नास भयौ तिन कौ।
नासिकैं लवर्णहि, प्रकास्यौ परब्रह्म ऐसैं
मेघन के हटेते प्रकासैं रवि रस कौं।

नारद के पूछें मंत्र विधि कही ब्रह्मा सदा
सुचि दा असुचि विधि चहिये न जिन कौ।
सालोका, समीपा, अरु सायोज्या, सरूपा पाय
नाम जपे ब्रह्म लोक प्राप्ति होत तिस कौ।

सवैया

नाममहात्म

यह्ही निरनैं कियौ वेदहू में, सब और जे कांम निकांम ही हैं।
अतिहास पुरानऔ' संघिता सिमृत, तंत्र जिते कह्यौ तामही है।
सुप काहू प्रकार न जीवन कौ, 'सुगुपालजू' जीवन याम ही हैं।
गति और नही है नही है नही, हरि नांम ही है हरि नांम ही हैं॥

भारतीय महाविद्यालय ... निधि

नामदृढ़ता

कर्म भक्ति ज्ञान तीनि कांड के सम्प सदा
नाम ही को थाप्यो तिन कहि निमि काम के।
तिन के विधान तीनि वार कहने में भिन्न,
गति कहने में वही कोऊ नहि काम के।
जप–तप–व्रत–नेम–दया–दान–सौच–सील
सरधादि साच सुभ कर्म जे अराम के।
वेद औ' पुरान, सिमिरत माझ कह्यौ सव,
जतन विरथ विन लीयें हरि नाम के ॥

कवित्त

करत करत जग्य करत में चूकें, जाके
सुमिरन कीयें सव पूरे होत काम है।
जप–तप–जग्य–क्रिया आदि कों मे घटती जो,
पूरन तूरत होत सुमिरन नाम है।
'सुकवि गुपाल' ताको पावत न पार–वार
नेति नेति करि वेद गावें गुन–ग्राम है।
सदा सुष–धाम, सर्व व्यापी निमकाम, अज
ऐसे हरि अच्युत को करत प्रनाम है ॥

दोहा

सव वातन कों सुमिरि कें, जासें जपियें नाम।
भगति मुकति पावें सुनर, सेत नाम निसकाम ॥

कवित्त

होइ न विराग जब लग करै कर्म, तथा
कथा श्रवनादि श्रद्धा जब लौं न मन है।
देवता सरव भूत नर-रिषि-पित्र पंचजग्य
के जे पूज्य जग मांझ जेते जन मैं।

तिनको किंकर औ' रिनिया न होत कबौं
राज नजे मेरे मुनि मानि लै वचन है।
सब परकार लषि, सरन की जोगि सब,
कर्मन को छांड़ि मैं मुकुंद की सरन् हैं॥

सवैया

त्यागि के आपने कर्मन को, हरि के पद पंकज को भजे जो है।
भक्ति में जो परपक्व न होइ, मरै कहूँ जन्म लै जाइ कै सोहै।
हनुमान-विभीषन आदिक जेते, कह्यौ तिनकौका बुरौ कछु ओहै।
आपने कर्मन को करै जे, हरि कौ न भजे तिनकौं कहा होहै॥

गीतक

गीताहि कौ सुनि वचन मम या जग्यको जग्थासिजो।
कर्म कांडरु वेद को उल्लंघि करि वर्त है सो।
वर्तमान जु त्रगुण में नर कर्म-कॉण्ड करत वो।
यह ज्ञान कांडरु कर्म ते अर्जुन तू त्रगुणातीत हो॥

कवित्त

बिरक्त भक्ति ज्ञान जोग अधिकारीन
आदि शास्त्र बेन मुनि कर्मन करामनौं ।
कर्मन के त्यागे रति भई हरि माझ, ब्रह्म
ज्ञान अपदेसि तिनें ब्रह्म दरसामनौ ।

नहीं जे दृजानी जे पै बिरक्त है के लगे,
कर्म ज्ञान मार्ग तिन भक्ति में लगामनौ ।
मर्मे मर्मे मान तिन गुर को प्रनाम करि,
नाम कीरतन हरि गुनन को गामनौ ।।

अरिल्ल

मेरी भगति ते विमुख है के शास्त्र को जो पढ़त है ।
न्याय साम्यादिकन में सो डूबि के वृथा करतु है ।।
तिन कौं न जानत मुकति होहै महस जन्म भ्रजन में ।
जे राम हृदय के राम मनन गमनि ते जिय अत में ।।

सवैया

करि पूरब भूमिका में जो अुपासना, अूपर भूमिका पामनौं है ।
मन्यादिक वेनन भक्ति-हीं नहिं, भक्तिए जानन आमनौ ।
यह भक्ति महात्मर्म ज्ञानहिकी कहीं भूमिकाको जो बतामनौ है ।
गुरकी, हरि की, करि भक्ति 'गुपाल' समेपे हरीगुन गामनौ है ।।

ब्रह्मविचार

जाकी साक्षात बुद्धि बरनति तत्व छूटै,
पापन तें जीव दृष्टि परै ब्रह्म ठार में ।
कीनो है सनान सब तीरथन माझ, जो'
सहस दस कीनें मानो जग्य तहवार में ।

पूजे देव सकल प्रथी को दान दीनों सब
जानें निज पितर उधारे हैं संसार में ।
पूजिवे के जोगि जोई जाको थिर व्है कै अेक
छिनहूँ लगत मन ब्रह्म के विचार में ।।

कवित्त

स्वपच प्रजंत याही बात ते बड़ो तेरो नाम
बरतत अग्र जिव्हा के ठिकाने में ।
करे हैं गुपाल जिनहीं नें तप होम सब
तीरथ सनांन जेते प्रथी में बपाने हैं ।।

तृतिया कंद सिरी भागवत मांझ यों कपिल—
देव प्रति कही देवहूति माने हैं ।
सबही ते बड़ो जिन पढि लीने सब वेद
तेरो नाम जग में गृहन कर्यो जाने हैं ।।

कवित्त

पाप करि भारी ध्यान अच्युत कौं धरैं, जेते
छिनही में तुरत तपस्वि होत पीन हैं।
पापिन की पगनि की परस पवित्र पुनि
गंगादिक तीरथ पवित्र करैं जीन है ।

कुलहू पवित्र जाकी जननी कृताथ औ'
वसुधरा हू भागवती भई जगजीन है ।
ज्ञान जाको पूरन औ' सुपको समुद्र सोई
ताको चित भयो परब्रह्म माझ लीन है ।।

कवित्त

कुलहू पवित्र जाकी जननी कृतार्थ यह
प्रथी पुन्यवन भई जाके अनुराग ते ।
सुरग में सुस्थित प्रपित भअे जाके धन्य
जा कुल में वैष्णव भयो सुत भाग ते ।

यज्ञ आदि सकल श्रुती के वेत मुनि कवी
कीजिये न समय गुजार यह जाग ते ।
ज्ञान जोम भक्ति जोग में है प्रीति जाकी दृढ
दोष होत बाद मानि कर्म ये न त्याग ते ।।

कवित्त

देपिवे कैं जोगि यह आनम गवन याते
कीजिये वेदांत कौ श्रवण दिनराति है।
भक्ति ज्ञान जोग कों कह्यौ जो नेम विधि जाग–
बलक मईनेई सो वही यह वात है।

पक्ष मे जो प्राप्ति भावादिक करिबोध जे
छुटावन है तिन के न आवे कछु हाथ है।
'सुकवि गुपाल' जे कहत अेमे लोग सदां
जिनकी कहनि जानि नीजे पक्षपात है।

सवैया

सब कौ नहिं वेदरु तंत्रन कौ, अधिकार कह्यौ सो सुकर्हूं जिये है।
निहिते सबके उपकारय कौ नाम, मंत्रहि भाषा में कूजिये है।
मुनि संमत कौ कह्यौं न कवी, यह भाषाते सिद्धि न हूजिये है।
निसंकटक मारग है सो वह्यौ, सु सदां हरि कौ तहां पूजिये है॥

नामभाव

किसके तहि कौ करिके जो कहे, अथवा परिहास कौ जोवत है।
पद पूरन अर्थ के काज कहै कि, कहै कहुँ जागत सोवत है।
अवज्ञा करिकै कबहूं कि कहै, कि कहै रिस में जव भोवतु है।
कहु जैसेहूं तैसें लिये हरि नांम, सु पापन ते सदां पोवतु है॥

कवित्त

चक्रायुध हरि जो है ताके चित नामन को
    सदा सरवत्र कहै दिन औ रयनि को ।
कीर्तन जिनके में होनि न असुचि आप
    होनुह पवित्र कर्णवालो सवयत को ।

हैके अपवित्र, वा पवित्र सर्वथ सदा होतु है
    अवस्थ औ की प्राप्ति मा कथन को ।
बाहर औ भीतर सों हातुह पवित्र साई
    सुमिरन करे हरि कमल-नयन कों ॥

कवित्त

मरती बपत अजामेल अधमी जो नाम
    पुत्र मिस लेकें गयो भगवन धाम है ।
कहनों कहा है ताको श्रद्धा करि कहै यान
    भागवत नाम कह दो निज मुख स्याम है ।

कोऊ यमलेछ काहू सूरर के मारें कही,
    मरती बपन मोहि मार्यो या हराम है ।
बैठि के विमान पर बैकुंठ धामहि को है—
    ब चत्रभुज ह्यो गयो हरि नाम है ॥

कवित्त

दक्षन दिसा में सर्व लोकन के मांझ, यह
 है रही है विदित कथा सो सरबत्र है।
नाम के महातमें भाषादिक करि कुछ, होत
 नहिं घाटो यह सुनतहिं चरित्र है।

कानह र कन्हैया कान्ह कान्हुआ कन्हरहु
 आदि नाम सीधे पोइ देत अपवित्र है।
भाषा मांझ बिगर्‌यौ, हूजौ भी 'श्रीगुपाल' नांम
 सब जग जीवन कौं करत पवित्र हैं ॥

कवित्त

जौपै देववानी कौ बनाइ करि कहै तोपै
 भाषा करि कहनौ परत पुन पुन है।
अरथ करत सब जनन कौं बोध यातें
 दुहरौ परस्रम सुहीन जाके सुनहें।

वेद कौ अरथ जौ पै भाषा करि कहै तातें
 येक बार सुनै होत स्रवन सवन है।
कहत गुपाल यहै समुझत हाल सदा यातें
 यह भाषा मांझ बड़ो होत गुन है ॥

सवैया

भाषा की न हो प्रमानता है, मनवृत्तिहि को जो पै मारक है।
ऐसे होइ तो जोनी औ बोधेके सासन, प्रमानो कहैया विचारक है।
याते वेद ही उत्तम सब्बाहै सास्त्र सुनाही को सर्व सुधारक है।
सो 'गुपाल कवी' करिभाषा कह्यो नगरे जगकोनोई तारक है॥

कवित्त

साक्षात निज रूप यही श्रीगुपालजू में
सास्त्रन के माझ निज सहित समाज है।
सदा प्रीति करि सालिग्राम द्विज साधन को,
वेद विधिवत पूजो त्यागि लोक लाज है।

रामनाम जप करे तुलसी की माला धारि
जपौ दिन रैनि तब पूर होत काज है।
समुद्र संसारहि के पार करिवे की और
आसरो नहि है राम नाम ही जिहाज है॥

शिक्षा

मन जीवन पै सु सदा करती नहीं नै प्रभू को रिझावनो है।
करनै यह देस को पालन ना यह ऊपर को करनावनो है।
यह मे वृथा जन्म बितावत क्यों कबहूँ कछु काम न आवनो है।
गिरती भई भाचिय भीतिहि को, सु प्रथा यह चूंनो लगावनो है।

चतुश्लोकीभागवत

सवैया

चतुश्लोकी श्रीभागौतिमैं सो कही, भगवाननैं ब्रह्मासौं निजबातैं।
मेरो यहै पर्म्म गुह्यजुग्यान, विरागहि के सु समन्वता तें।
रहस्य जो भक्तिह ताके सुसजुत, ताही तैं तू मनदै सुनि यातें।
ताही के अंग जे साधन है, सब मेरो कह्यो मुनि कै गहि यातैं।

सरवांग में व्यापक हौ जित तो, तित सच्चिदानन्द हो निगृह तैं।
स्यांम सुंदर रूप लौ सचिदानन्दहि, हैं गुन रूप सम गृह तैं।
तू यकागृह ते मन दै यह में, सुनि व्हे हैं कल्यान सु निगृह तैं
सदा तैसोई तो कौं य तत्व विज्ञान, सुहोइगौ मेरे अनुगृहतैं।

सुतपत्तिहि के पहले ते सदां, सब आगे ते मो ि की सत्य यहैं ही।
कछु मेरे ते अन्य सथूल औ' सूक्षम, कारणहीन भये सब जेहीं।
जग नासह बाद भये पर में, जग में जोहै सत्य सो औरन केहीं।
सब के सुनि सुद्ध के कारनकौं, अधिष्टान सदां यक सत्यहीमैंही॥

जो नही है तिहुँ कालहु में, जग होत प्रतीती सबी कौं सही।
प्रगटै मेरो सत्य सरूप सदां, नहि दीसत माया सुजांनि यही।
अनहोते द्वै चन्द्रमा आदि अभासतैं, भासत जैसै किसी कौं कही।
मेघ में ढांक्यो भयो जैसैं सूरज, तैसें सुभांन में होत नही॥

महा भूतोर भूत मनौन में मैं, जल औ थल आदि प्रवृप्टि मही।
तिमकों तिनके कछु भिन्न न हों, मेने होन नहोहै प्रविप्ट जहीं।
निसकों कछु मेरे ते भिन्न न होने ते, हौन प्रविप्ट कवो सो नही।
सदा तैंमे तिनों महा भूतान में, मत्ता रूप होते हौ प्रवृप्ट मही।

कवित्त

आत्म तत्त्व ज्ञान को अपेक्षा है तिने करि,
    जन्वै वितरेक मव जगो मान्यौ चहियें।
मर्वदा जु मव ठौर सच्चित सरूप घट–
    पटादिन व्यापक मु जैसो ठान्यो चहियें।

सोई 'श्रीगुपाल' में ई सर्व अवस्था माझ
    जाग्रत औ सुपन सुसुप्त आन्यो चहियें।
मानयो रूप हो करि के व्यापक है जाको सदा
    अन्वै वितरेक करि मान्यो ताहि चहियें॥

कवित्त

नाम रूप घटपटादिकन में सव ठौर सव
    भण मान ब्रह्म को सरूप लपि लैहै तू।
मोई श्री 'गुपाल' मवही में सदा व्यापक
    अवस्था अेक अेक में न व्यापी सदा पैहै तू।

आत्मा ही ब्रह्म अेक अेक मे नहीं सो झूंठ,
अैसे मेरे मनै जब मन में मूं दैहै तू।
सब परकार करि जगत् की अुत्पत्ति के
विविधि प्रकारन मे मोहित न ह्वैहै तू॥

सवैया

श्री भगौति सर्व बिदान को सार सुतात्ह को सार प्रकासक है।
'श्री गुपाल' सोई परकास कर्यो कलि रूप तिमाम निभासक है।
ज्ञान रूप जो चद अुदै किय नाश्नो, अमृत रूप प्रकासक है।
जग पाप के रूप जे तापनिते ओ अग्यान अंधेरे को नासक है॥

सांतरस

कवित्त

भूलिये न हरि नर देही को सरूप पाय,
यह नर देही भव सागर को सेतु है।
करि लै सुकृति कृति यामें जो बनति तोपै,
मोपै सुनि करि तू गुपालजू सों हेतु है।
साँच सुप भापि तजि साँप सीलताइ रापि
हरि जस चापि सापि वेद कहि देतु है।
भले की भलाई अरु बरे की बुराई जग
जैसे को सु तैसोई विधाता फल देतु है॥

कवित्त

देह धरे 'सुकवि गुपालजू' बड़ाई यही
आप भलो कीजे सो विचारे बुरो जाहू को।
सबही के दण्ड देन-हारे समरथ हरि
जानत भरम वेई चोर और साहू को।

कुवचन सुनिकै उदास चित्त होइ न
नौ तकै रहि आसरो सु और-निरवाहू को।
जोई ऊँचो चढ़िहै, सो आवह गिरैगो याते
आपने तो जान बुरो करिये न काहू को॥

सवैया

कित्ति वही जो कहे सगरो जग, चित्त वही गिरि को जो घटावै।
दित्त वही सुपने न कहे, अरु भृत्य वही नहिं नेक हटावै।
चित्त वही जो लगे 'श्रीगुपाल' सों, वित्त वही नहि धर्म हटावै।
हित्त वही हिमते न टरे, अरु मित्त वही जो विपत्ति बटावै॥

कवित्त

आपनों कहावै सांचों हित ह्वै जनावे कहा
मीठो बोल बोलि सूनो वचन सुनाइये।
मित्र मन मोती को न पानिप उतारि डारे,
कुपथ निवारि नित सुपथ चलाइये।

भनत 'गुपाल' निज हित सदौ अेक यान
प्रीति-रीति यही नित सुष सरसाइये ।
औगुन दुराइयें, औ गुन प्रगटाइ,सु
जाको अपनाइयें न ताकों छिटकाइये ।।

दोहा

तननी करि कछु कीजिये, कुल कुटम के काज ।
कीरति कलि में कवि कहें कवहु न होइ अकाज ।।

कवि गुपाल या लोक में हाय रहे नव निद्धि ।
सुष पावें परलोक में होइ जगत परसिद्धि ।।

यह सुनि कवि तिय के वचन मगन भओ मन मांहि ।
तो सी या संसार में दूजी तिय कोऊ नांहि ।

माता पिता भ्राता सुहृद, यद्यपि बहु परिवार ।
तिय समान दाता नहीं, कोऊ या सन्सार[1] ।।

इस्त्रीसुष

कवित्त

घर कों रषावें, सुष संपति बढ़ावें काम-
तपनि बुझावें चित चिंता कों नसावें जे ।
भोजन जिमावें नित सुषमें गमावें दिन,
हित उपजावें हिय कुसल मनावें जो ।

---

१. मु. तियसम दुखदाता नहीं, कोऊ या संसार ।

उद्यम लगावै, जग जस करवावै
सब दूषन नसावै, भली टहल बनावै जो ।
'सुकवि गुपाल' घर ऐसी नारि आवै जो पै
जीवत ही जग में मुकति नर पावै जो ॥

पतीवरता

पतिवरता पन साधि कै पतिनिहु पीयहु सेय ।
सूरज मडल बधिहै, सती होइ जस लेय ॥

कवित्त

पति देव जाने पति बन्धुन की सेवा ठाने
रहै अनकूल पतिवरन हियान के ।
रति सों अराधिकै टहल निज हाथ करै
छोटे बडे पूरै मनोरथ हियान के ।
सुचि सावधान ह्वैकै इन्द्रिन को जीतै लोभ
आलस न करै कर्त्ती परिकै सयान के ।
'सुकवि गुपाल' जान दूसरो पिया न, कहै
लच्छन समान न पतीव्रत तियान के ॥

कवित्त

उत्तिम तिया कै तिन हिये मन बस्यो करै
सपने हू आन पुरुष न जग जानही ।
मध्यम जु नारी पर पुरुषनि कों देख ऐसे
निज सुत पति भ्रात बंधु के समान ही ।

---

१ सु ... नर सात गुपालकवि पतिव्रता तिन होद ।
सातु सर ... पतिहि ... [illegible] ।

अधम जु धर्म कुल समझि के रहै औ
कनिष्ट अवसर तिन रहै भ्रम न हीं।
वेद औ पुरानन सुजान ते सुनी चारि
भांति वो गुपाल पतिव्रता बखानहीं ॥

दोहा

परमारथ समझे नहीं स्वारथ में लौलीन।
ऐसी या संसार में रहति नारि मति-हीन ॥

कवित्त

व्रथा ठान ठाने, दया धरम न जाने, सुर
दीन को न माने, साधु संग न पिछाने हैं।
भरी अभिमाने, समझै न लाभ हाने, पाप
पुन्य को न छाने, हिय अधिक अजाने हैं।
गहकि के 'सुकवि गुपाल' गुन गावै नाहि
टोले निज धन की उमंग ताने ताने हैं ॥
हरि को न माने, मोह माया ही में साने, तिय
स्वारथ ही जानें परमारथ न जानें हैं ॥

दोहा

या कलजुग में बहुत है घर-घर ऐसी नारि।
तिन को कछु बरनन करौं, सुनि प्यारी सुकमारि ॥

इतिश्री संगतिसागर सिंगार नाम ग्रन्थे परमार प्रसंग वर्णन पंचविंशति तिरंग

षटविंशोविलास

शान्तरस प्रबंध

पुरुष उवाच

अब कलि माहि गुपाल, बहु ऐसी जग माहिं।
परि तोसी तरनी कोऊ बिरली देखि जाहि॥

सुनि कें तेरी बात कौं, अुपज्यौ हिय में ज्ञान।
भजन भावना भगति बिन वृथा गये दिन जानि॥

कवित्त

योंही जन्म खोयो, मायावाद में बिगोयो कब
ही न सुख सोयो, भयो रिसैं ही के बाट कौ।
दया-धर्म कीनो नाहिं, हरि रंग भीन्यो नाहिं,
साधन कौं चीन्यो नाहिं, करि पुन्य-पाटकौ।
लोक में न जस, परलोक में न बस गुरुत
न अुरधार्यो, न पवैया भयो बाट कौ।
कहत 'गुपाल' नर देही कौ जनम पाइ
धोबी कौ सो कुत्ता भयो घर कौ न घाट कौ॥

कवित्त

माल कौ भयो रे, मनुमान कौ भयो रे, कैई
ख्याल कौ भयो रे कै कुटंब प्रतिपाल कौ।
ठाकरौ भयोरे, मायाजाल कौ भयो रे, याही
हाल कौ भयोरे, कै भयो रे भागि भाल कौ।

---

१ है. हर न है प्रति में इससे पहले यह कवित है :
"कहत गुपाल गना मनो रहुआई परि
भनि न मोहें नाम ऐसो सो सुनाई"

कालको भयो रे, त्रिनचान को भयो रे,
परिपाल को भयो रे, कै भयो रे तानताल को।
दान को भयोरे, धनमालको भयोरे, नर
चाल को भयो रे, न भयो रे तू 'गुपाल' को ॥

कवित्त

भानिजी, भनज, भैया, भाभी, नना, ननी, माई,
मया, मौसी, मौसा न भरो[१] मौ पितु माई को[२]।
सारी-परिहज, सारो[३]-सारान ससुर-सासु
फूफी अरु फूफा न बहनि बहनाऊ को।

दासी-दास-परोसी परोसिनि, मिलापी, मित्र,
दादी दद्दा, चाची, चचा, नाई, को न दाऊ[४] को।
कहत 'गुपाल' बेटा, बेटी, काकी-कका, यह[५]
कुटम सबै तो झूटो कोऊ नहिं काहू को[६] ॥

कवित्त

विषै बीज बोवै, मन भक्ति मे न भोवै, मंद
त्याग तन खोवै, तन ऊपर ते धोवै तू।
कहत 'गुपाल' तू गुपाल छवि जोवै नांहि,
त्यागि कै जँजाल जान सुर्यै क्यो न सोवै तू।

---

१. ह. भरोसो २. ह. माऊ ३. ह. माहू
४. ह. ताऊ ५. इह ६. काऊ

माया काज रोवै नहि रोवै यदु तेरो, मन
    मानि करि मद हरि गुन में न पोवै तू।
विषै टकटोवै भव भर लोभ डोवै नित
    नोवै-नोवै करि वाह नर जौनि पावै तू।

कवित्त

कान्ह को कान न करी कान को न कर्यो
    कौरी-कामिनि न काम काजै करी कनिकोरी ते।
भजन गुपाल भव भीर को न भान्यो भाव
    भक्ति न जान्यो भूम्यो भवि भाग भोरी ते।
नर भर्यो तरन नरन तेह तामस में,
    तन में तरंग लोभ तिनुका लो तोरी ते।
मोह मय मदन मरोरनते मार्यो मात,
    माया मद माते मन मानी नाहि मोरी तें।

कवित्त

छिन छिन छायो छवि छल छर छदन म
    छलिवे को छेडी छिन छार लो न छोरी तें।
निरखे न नैनिन निकुंज नंद नदन '
    नर-देहि पाय नीकी नीति न निहोरी तें।
विरह जरायो, जग जालरे जंजाल, जग
    जीवन मो लागि प्रीति जीवन मो जोरी तें।
मोह मय मदन मरोरन त मार्यो मात
    माया मद-मात मन मानी नाहि मारी तें॥

कवित्त

घरि-घरि धन धन-धामन में धायौ धूत,
घ्यायौ नहि घरि के धरम धुर धोरी तें।
वृन्दावन वीथिन विलोकी न वहार वर
वादिन मों वादि-वादि वृथा वैस बोरी तें।
गरव गरूर में 'गुपाल' गुन गायौ नाँहि
गयान गुर गह्यो न गरायौ गात गोरी तें।
मोह मय मदन मरारन ते मार्यौ मांन
माया मद माते मनमानाँ नाहि मारी तें॥

कवित्त

बाजे बजै बाजे बाजे बूझि है न बात, भमि
मिष्टाचार कैहै इह देह तन नाजे पै।
सुकवि 'गुपाल' साथ कोयो ही चलैगो, तू तो
जायगो अकेलो जमराज दरवाजे पै।
आइहै हकारो, जब छोड़ि है पसारौं, नेंक
वारौ न लगैगो, कहूँ बचि है न भाजे पै।
रे नर निलाजे, कोऊ आय है न काजे, काहे
राजी-राजी फिरे म्यारे कूकर के खाजे पै॥

कवित्त

पाछै पछितैहे, जमदूत घेरि लैहैं, सब हाल
छोड़ि दैहैं, मग देपि के विहाल की।
काम भजे पाछ, कोऊ काम नहि ह्हैं है, यह
झूठो मोह-जाल, तिय सुत धन माल की॥

आये पाछे काल पुनि ह्वै है न सम्हाल नेक,
छिनको भरोसो नाँहि, पानी भरी खाल कौ।
रे नर गमार, मनि करे नु अवार, मत
छोडि कै जंजाल, भजि मदन गुपाल कौं॥

करुणाष्टक

सवैया

दुख औ सुख को भुगतै यह ही सा बछू न रन मन्सूवा करै।
जब काल परै, कोऊ काम न आवै, परे बिन कामतो हूहा करै।
'कविराय गुपाल' विचारि कैं याते, भजौ हरिको भला हुआ करै।
अपनी-अपनी गरजी जग है, यह कौन किसी कौ धुआ करै॥

जो जलमे गज को गह्यो ग्राह, भयो बिनपोरिष व्याकुल भारी।
ज्यों भरि सूंड दिपाति रही, तब दीन ह्वैकें सुमिरे श्रीमुरारी।
सो सुनिकें करुनाविधि आय, उबारि लियो बिपदा निरवारी।
आरनि ह्वै कै प्रवीन कहै, प्रभु अैसे ही कीजै सहाइ हमारी॥

द्रौपदी अंग उधारन को, दुरजोधन दुष्ट अनीति विचारी
मध्य सभा पट खैंचि दुसासन दीन व्है गावहि कृष्ण पुकारी।
चोर बढ्यो जन कृष्ण ज्यों खैंचत पायो न अन्त परयो तनहारी।
आरनि व्है कै प्रवीन कहै प्रभु अैसे ही कीजै सहाइ हमारी॥

यो प्रहलाद पिता अति कष्ट दयो हरि को नवि के दिखरारी।
ज असि मारन काढि उठ नृसिंघ की देह नवै प्रभुधारी।
खंभ कौं फारि उठे ललकारि कैं भक्त उबारि दयो बर भारी।
आरनि व्है कै प्रवीन कहै, प्रभु अैसे ही कीजै सहाइ हमारी॥

सवैया

ज्यों तिय भांमा सुदमा तिने, दई दारिद ने विपदा व तिभारी ।
जे पठअे हठि के हरि पें, अुठि आदर सों मिले कृष्ण मुरारी ।
जो विसुधा बकसी दुज दीनहिं, इंद्र कुबेरहु कों न निहारी ।
आरति ह्वै के प्रवीन कहें, प्रभु अैसे ही कीजे सहाइ हमारी[1] ॥

ज्यों अजामेर महा अधमी, अजसी कुकृती निज धर्म प्रहारी ।
अंतस में सुत नाम नरायन, टेरत ही जम फांस अुतारी ।
नाम प्रताप ते पाप गअे सब मुक्त भयो हरि रूप मँझारी ।
आरति ह्वै के प्रवीन कहे प्रभु अैसेही कीजे सहाइ हमारी[2] ॥

भीलिनी गीध गजूतम नारि भरी अघ की गनिका तुम तारी ।
देवा पुजारी धनी बमध्वजुज सुवन की पैज कही बच पारी ।
रुदा, कुम्हार, जुलाहा कबीर, धना पुनि जाट की ब्राट निवारी ।
आरति ह्वै के प्रवीन कहे प्रभु अैसे ही कीजे सहाइ हमारी[6] ॥

छीपिया नामा, चिमार रिदास, करी सदन सों बड़ी हितयारी ।
ज्यों नरसी, महता, चंद्रहास सदा सब द मन की रुचि सारी ।
जै मुनि सेनां, तिलोक सुनार, को रूप धरयो विपदा निरवारी ।
आरति ह्वै के प्रवीन कहे प्रभु अैसे ही कीजे सहाइ हमारी[3] ॥

मै अति दीन मलीन अपी अति, कर्म को हीन कपी विभचारी ।
दान दियो नहि कीयो कछु व्रत, याते हिये यह बात विचारी ।
रावरी मैंने लई सरने, क्यों सदां तुम दासन को रुचिकारी ।
आरति ह्वै के प्रवीन कहे प्रभु अैसे ही कीजे सहाइ हमारी[1] ॥

गाय गुपाल अधीन ह्वै कै, हरि दम्पति मानति कीनो अवाम है।
आठ गर्त्त यन मे परनाम, याते धर्यो नगन-पटन नाम है।
मीर्षे सुनै रु पढ़ै नित नेम कें, ताकें कट्ट गुप मानि धाम है।
पापमिटै अरुजै अरु भक्ति, औ होत सहाय निरन्तर राम है ५॥

कवित्त

घर घर कारी दुरगागन को गहन चीर
द्रुपद दुलारी भारी देह दुख दयो है।
राधा भीमसेन मे न छोड़यो पुरुषारथ औ
पारथ ने चलीह री बुधि बस भयो है।
लाज की रवैया और दीनन गुप न मौ न
हिय की लगनि अब मोसों अट गयो है।
दीजे न अवार प्रभु केवट है पार करो
आज हरि लाज की जिहाज डगमग्यो है॥

इति श्री दर्शन विलास नाम काव्य समाप्ति मङ्गल मय
प्रथम पदाविला विलास

सप्तविंशो विलास

पुरुष उवाच

घर मे जे निज कुटुम सौं, कलह करति (नारि ।
तिन को कछु बरनन करूँ सुनिप्यारी सुकमारि ॥

फूहर कलहा पचीसा स्त्री उवाच

ननदकूं लत्यावै लात सासु कूं चलावै, जाइ
द्योरानी जिठानिन के फारे लहँगाई को ।
देवर कों जाय जाय पटकन मारे, मोंछु
जेठकी उपारै, नेक डरपै न काई को ।
घर के पसम कों, पपेमनीन मारे, जामौं[1]
डरपि के भाजि जाय ससुर अथाई को ।
कहत 'गुपाल' याते भलो रँडुआई परि
भूलिके न लीजै नाम ऐसी तो लुगाई को ॥

कवित्त

उठै[1] ललकारी भीष डारै न भिषारिन के
दया नहिं जाके जैसो हिरदो कसाई को ।
सूजी रहै वंब सी, कुटंब सौं कलह करि
आवे औ' गवे ते, रुपी रहति नराई कों ।

---

१. मासको २. है जाने ३ है. डठै

जिदिबे कौं त्यार, राखै काहू सौं न प्यार,
कबौ आदर न करै भूलि भाई औ' जमाई कौ।
कहत 'गुपाल' याते भलौ रँडुआई, परि,
भूलिकै न लीजै नाम अैसी तो लुगाई कौ ॥२॥

पानि औ चबानि, परभात होते अुठै सूधी
बात बतरात ही मैं ठानति लराई कौ।
बेटा-बेटी कुटम कसम की न लेइ सुधि
आप पाय जाय करि मेवा अढाई कौ।
डरनि न जरनि-बरनि रहै सदा, अैव
कौडी हू कौ करनि पत्यारौ नहिं काई कौ।
कहत 'गुपाल' याते भलौ रँडुआई परि
भूलिकै न लीजै नाम अैसी तो लुगाई कौ ॥३॥

करै तू-तराक औ' मराक जुवाब देति, साम्हौ,
है करि लराक रुपी रहनि लराई कौ ॥
दौरानी-जिठानी सासु-ननँद तें रपै, जेठ-
देवर-ससुर डर मानति न काई कौ।
स्वामन्द कौ जुवाब, कबौ काढन न देइ, मुँह
साम्हौ आइ लेइ लूंड मारै हड़ियाई कौ।
कहत 'गुपाल' याते भलौ रँडुआई परि
भूलिकै न लीजै नाम अैसी तो लुगाई कौ ॥४॥

---

१ [illegible] इसकी जगह पर यह पंक्ति है
दौरानी जिठानी सासुननदनि सौं [illegible]
देवर ससुर डर मानत न काई क

पाइवे को स्वाद न, पहरिवे को स्वाद, जाड
वाद–बकवाद कि फिसाद भड़िआई को।
नवहीक[1]कोई कछू मिय को यहत, जाके
चढ़ि बैठे ऊपर अुतारे पगियाई को।
पोसन करन, काम करत, अरत, मामु
ननंदते नरन झूरत जात जाई को।
कहत 'गुपाल' याते भलो रँडुआई, परि
भूलिक न लीजे नाम अैसी तो लुगाई को ॥५॥

सोवति रहति सदा रोवति कहति बात
धोवत न देख्यो मुख भोजन को नाई को।
हारनि[3]न तन, कडहारति[4]रहति सो
पुकारत मैं बोल दस कोस सुने जाई को।
बड़ी अर ठाने करतूति को न माने, पान
पीवत हू छीकत ही जात दिन प्राणी को।
कहत 'गुपाल' यात भलो रँडुआई, परि
भूलिकें न लीजे नाम अेसी तो लुगाई को ॥६॥

सब तें चुराइ कें मँगायो करै चीज मित,
पायो करै आप मूँडी र रै लरिकाई को।
दांतन निपोरै, गोड होड़न[5]सु बोरै, सेर
तीनिहूँ ते, पेट न भरत है अधाई को।
आहि करि काम कू कराहिकें उठति नित
दाहयो बोल केई बेर–बेर करै जाई को।
कहत 'गुपाल' याते भलो रँडुआई परि
भूलिकें न लीजे नाम अैसी तो लुगाई को ॥७॥

---

१. है. कवहुँक २. है. जुरत लरत ३. है. हारत
४. है. कडहारत
५. है. औ मारत

बैठी रहै राति दिन हाथ ही पै हाथ धरे
घर–घर झांकै नहि लालो न कमाई कौ।
न्हाइब को पानी ताहि मदुही मो राधै रै
अधैन सी औंटाय के समोवनि न ताई कौं।
जोरें रहैं नन, नाक भौंहन मरोरें रहै
मारे रहै मुख सिख मोपै न मिपाई कौं।
कहत 'गुपाल' याते भलो रँडुआई, परि
भूलि कै न लीजे नाम ऐसी तो लुगाई को ॥८॥

मांगन म पानी आनाकानी करि जाति, अरु
भोजन के समै नित टानति लराई कौं।
बहुत कुठेहर से थोपि धरै रोट कच्चे
थोरीई करति सो भरे न पेट भाई को।
धमधम पीटै, सबही सों जाय हीटै, बैन
कहति न मीठे सिर बांधि बुरवाई को।
कहत 'गुपाल' याते भलो रँडुआई परि
भूलिकै न लीजे नाम ऐसी तो लुगाई को ॥९॥

भानिजि औ भानिज भतीजिन न देखे नद
बेटी औ' जमाई देखि सकत न भाई को।
ब्याह–भात–छोछिक–बधाई पत्र देखि जिय
आओ औ' गओ को टूक–टूक होत जाई को।
पाइ न पचाइ सके याते विधना नें इक
छोडि कै भलाई दीन सब गुन ताई कौं।
कहत 'गुपाल' याते भलो रँडुआई परि
भूलि कै न लीजे नाम ऐसी तो लुगाई कौं ॥१०॥

---

१ है बदहार २ है औ मारन ३ है भोजन
४ है साथ ५ है करैं कै

अुटत ही प्रात बात दूत की मिरावे अुत,
घर घर जाय करवति नराई कौं।
नाज नहीं आवे गारो देइ'औ दिवावे, सदा
जाय कुसवारी करें भाई औं जनाई कौ।

हारति न नेंक ललकारत औं मारन
पुकारत में दीयो करें देस में दुहाई कौ।
कहत 'गुपाल' याते भली रँडुआई, परि
भूलिके न लीजे नाम ऐसी तौ लुगाई कौं ॥११॥

चल्यौई करनि है कतरनी सी जीभ, तो भी
रातिदिन कहू मुप दूपत न काई कौ[1]।
नापि हो के जाइ अरु नापि ही कें आयो करें
परी रहै चीज पं अुटावनि न वाई कौ[2]।

रूठे कौं मनावनि न, फाटे कौं न सीमें कबौ
जाघ तोली फौंक चनि जासु क्यो न काई कौ।
कहत 'गुपाल' याते भलौ रँडुआई, परि
भूलिकें न लीजे नाम अैसी तौ लुगाई कौं ॥१२॥

पीसिबौ न कूटिबौ न, रुठिबौ रहत सदा
होठिबो करतु है, कुटब सदा जाई कौ
तीसरे हू पहर जगाअे ते न जागै, जाकौं
दिनहू में सोइबौ है पहर [illegible]ाई कौ।

आपनौ सदाई पायो न्हायो देपि सकै
और घरके कौं करनि सम्क नहि काई कौं।
कहत गुपाल याते भलौ रँडुआई, परि
भूलिकें न लीजै नाम अैसो तौ लुगाई कौ ॥१३॥

---

१. है पाड २. है पावावें ३. है, जाई ४. है काई

मातन न्यावै, गूथ-हयन चलावै, तन
    काहू सो छुहाइ करि लेति है लराई को।
तहूँ न लखूरे, भारी रिस करि रूरै, दाँत
    काटि करि घूरै, डाटै मानति न काई कौ।
करि गपिहाई देति देस में दुहाई, नेक
    डारनि न आलन सो कोमन में काई को।
कहत 'गुपाल' याते भलो रँडुआई, परि
    भूलिकै न लीजै नाम ऐसो तो लुगाई को॥ १८॥

जैमत के समै नहि ते मन बलाय जनै
    मैमन मिलाइ स्वाद पोवति मिठाई को।
टढ़ी-मेढी छोटी-मोटी-रोटी करि डारै कि तो
    रापी कचकची कि जेराइ देत जाई को।
गाढो करि भात को निकासति न माँड, राड
    पीरि-पाइ डारै न अुतरत[1] मलाई को।
कहत 'गुपाल' याते भलो रँडुआई परि
    भूलिकै न लीजै नाम ऐसो तो लुगाई को ॥१७॥

न्हाइ नहो धोवै, कबी अूजरी न राखै घर
    कूरो करकट न बुहारै अँगनाई को।
करै करति वार पुले यारनु न निवेग्यिति
    न हेरनि न हँसि मुख फेरि कहि[3] काई को।
मारति-रहति बेटाबेटो पुचकारति न
    कबी[4] न्लकारति न स्वान ओ' जिलाई को।
कहत गुपाल' याते भलो रँडुआई, परि
    भूलिकै न लीजै नाम ऐसो सो लुगाई को ॥१६॥

---

१ है उतरति २ है कहो ३ है नाम ४ है नही

१ है धबु २ है कै

३ है म गाली मुख दीन्यो करै जाई को। ४ है पंतार

रंद भरि पांनी जामें डारति मटीक दारि
मरदु वद् जो दृढि लावे दीज जई कौ।
छौंकि तरकारी, जारि कारी करि देइ सो'
अुमजन न देइ लै अुवारि धरै वाई कौं।
पांनी अरु नाज आप आपकू रहत जाके,
दरिया औ' साग में सवाद गुठिनाई कौ।
कहत 'गुपाल' याते भलौ रँडुआई, परि
भूलिकै न लीजे नांम अैसी तो लुगाई कौ ॥१७॥

सोवत के समै में सरीर की न रहै सुधि
बेसुध है तरौ सिरौ दीस्यौ करै ताई कौ[१]।
अगिवारे सोवै तौ लुढ़कि पिछवारैं जाइ,
ठोरत है अैसें सुनें कोसत में वाई कौं[२]।
चढ़ि चढ़ि बैठे चिललाय बररायं[१] जब
औदकि परत सब गार मुनि वाई कौं[२]।
कहत 'गुपाल' याते भलौ रँडुआई, परि
भूलिकैं न लीजे नाम अैसी तौ लुगाई कौ ॥१८॥

पवत में पाति, अरु पीसति चवाति, झारें
जाति वतराति, रहै दुप कुनवाई कौ।
अुठत ही प्रात जुआं मारति रहति सो,
पुवावति न कहू लहँगा और डाढियाई कौ।
सवरे सरीर पै वहयौ हौ करै औघ तअू,
परभी परै हू न अन्हैवौ होत जाई कौ।
कहत 'गुपाल' याते भलौ रँडुआई, परि
भूलिकैं न लीजे नाम अैसी तौ लुगाई कौ ॥१९॥

---

१. है बरराय २. है. पाई कौ

बद से है जघ बडी वत्र मे निनत, कुच–
एक एक जाको यह सेरक अढाई को।
कहुनी लौं हाथ पाअु टाग लौं अुघारे रहै
ढकत न अुर सिर पुल्यो रहै जाई को।
होठन चबाइ कै, चुरैल के से डारै पांय,
चलत हलन पेट भैसि की सी धाई को'।
कहत गुपाल याते भली रैंडुआई, परि
मूलिके न लीजै नाम ऐसी तौ लुगाई कौं ॥२०॥

छरत में नाज, झारि सेरक बहारे डारि,
पीसत में आधो करे गाड गलुआई को।
छानत में चून कछू भुमी में मिलावै इतअुत
में अुडावै, जब माडति है ताई कौं।
पानी में बहावै औ कठौती में लगावै, कछु
सिर में छिपावै, काम सेरक अढाई को।
कहत 'गुपाल' याते भली रैंडुआई, परि
भूलिकै न लीजै नाम ऐसी तो लुगाई कौं२१॥

बच्चा गोद लैकें अरु जच्चा बनि बैठे जब,
होत हाल ऐसो[1] घर नाहरि ज्यों ब्याई को।
साजी पाय जाय पैनी चारिक गसाई करि
पीवति हरि गाडी, भरिकैं कराही को।
मूड से धनाय लाडू, पाय दस बीस तअू
चाहनि है ऐसे पाय जैहे मनु माई'को।
कहत 'गुपाल' याते भली[2] रँडुआई परि
भूलिकै न लीजै नाम ऐसी तो लुगाई को ॥२२॥

---

१ है जाई
२ ? ऐसे

तेमन परोसि आपजें मन कौं देंठें जब
नहम न लागें पात सेइक लड़ाई कौं
धापे पेटहू पे सो सडाके मारि जाय, औ
सपोटि जाय हड करि चारिक गसाई कौं।
लेकरि डकार को डहारति है ठाड़ी द्वार
फूलि करि पेट सों नगारो होन याई कौ।
कहत 'गुपाल' याते भलो रडुआई परि
भूलि कें न लीजै नाम अैसी तौ लुगाई को ॥२३॥

होंठन भलौं पीकहि वहावति है वीरी पाय,
गालन के नीचे लौं वहावं कजराई कौं।
महक सरीर की सिगारति सिंगार ज
तेल कौं वहाइ करि पारें पटियाई कौ।
पहरि न जाने, नेक भूषन वसन, रहै
अधपुनी आंगी न सँभारें अचराई[1] कौ।
कहत गुपाल याते भलौ रडुआई परि
भूलिकें न लीजै नाम अैसी तौ लुगाई कौं ॥२४॥

होठ अंटिनी कैसें क, रिछिनी केसे हैं वार
लंगूरिन की सी भौहें, धूति सूपजाई कौ।
मुसक सी पेट, जाके पाय हाथ धूहरि से,
चोथरासी चुचौ टुंड चपटा सो याई कौ।
अंचा-तानी आंखि, मुप ठीकरा सौ फूट्यो मेडकी
सी है नांक माकसी सी भग जाई कौं।
कहत 'गुपाल' याते भलौ रँडुआई परि
भूलिकें न लीजै नाम अँसी तौ लुगाई कौ ॥२५॥

इतिश्री दंपतिवाक्य विलास नाम काव्ये फूहर प्रबंध वर्णन नामविंशो विलास

1- कजराई

अष्टविंशो विलास

अथ शिक्षा प्रबंध

दोहा

गुनदायक घायक विघन, गण नायक गुरवेस ।
सिवसुत गमिजुत बुद्धि भुज जै जै देव गणेस ॥

कवित्त

ईसुर की भक्ति में सदैव मन राखे भेद
काहू को न दीजे निज मनहि को जाइ के ।
बालक तिया की कही को न परतीति कीजे,
यन सो न कहै भेद मनहि की चाइ के ।
बिना अपदेस भनो चरचा के बिन सुप-
—ते न कयो कहिये बचन, कहूं धाइ के ।
बडोई चतुर होइ चले यनि चाल जोई
अते बैन मानें जो 'गुपाल कविराय' के ॥१॥

तियन सौं हित बहु राखिये न कहूँ, कीजे
राजा के न तिन की प्रतीति हित पाइकें ।
टहल जो' चाकरी में बैठि इन गग रहे,
पहले दिना को मरज ही सौ जाइकें ।
बिपति परे पै, और क्रोध के वखत, नफा
टोटे में परखिये सुमित्रन की भाय कें ।
बडोई चतुर होइ चलें यनि चाल जोई
अते बैन माने जो 'गुपाल कविराय' के ॥२॥

मूरिप के संग कबी बैठिये न जाय,
कवि-पंडित-चतुर सतसंग करौ चाय कैं ।
भले काम करत में ढील नहिं कीजै. बड़ौ
पदारथ पाइयै, तरुन तन पाइकैं ।
यामें दोऊ लोकन के काम कौं सँभारैं रापैं
मित्रन कौ हित ते सुमन वचकाइ कैं ।
बड़ोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई
अैन बैन मानै जौ 'गुपाल कविराय' के ॥३॥

माता औ पिता कौं बड़े आदर तें रापैं, पुनि
तथा योगि सेवा करैं, मन बच-काइ कैं ।
मानिये अधिक गुरुदेव कौं पिता ते सब,
काम में समान रापैं, अनुगामी सुभाइ कैं ।
निज तन काज, कछु दांन देत रहौ, तरुनाई
तन पाइ कछु भलौ करौ जाइ कैं।
बड़ोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई,
अैसे बैन मानैं जौ 'गुपाल' कविराय के ॥४॥

नीति ही में चलैं, पन करि नहिं हलैं, काहू
देपिकैं न जलैं, निरछलहि सुभाइ कैं ।
आमदि कौं देपि करि, बरतैं परच पर्च,
करनौ अधिक मूर्षताई है अघाइ कैं ।
आमदि परच समैं रापियैं मधिम रीति,
चातुराई यह कछु रापनौं बचाइ कैं ।
बड़ोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई,
अैसे बैन मानैं जौ गुपाल' कविराय के ॥५॥

यथा योगि पाहुने की टहल बनाइ करै,
कहै नहि निज दुख तिहु कौं सुनाइ कै।
देखत मैं वाके आगे काहू पर क्रोध मन-
मूम बतरामनि ना करै कहुँ जाइ कै।
नेत्र रसना कौं पर-घर रोकि राखै, तन
बसनन राखै नित अुज्जल बनाइ कै।
बडोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई
अंत बैन मानैं जो 'गुपाल' कविराय कै ॥६॥

सचन सौं रिति रहियै सभा न बहु राजनीति
विद्या सास्त्र, नीति सब सुत कौं पढाइ कै।
यथा योग बरनियै जैसौ जहाँ देखै सब
काम मैं समान राखै अुद्यमी सुभाइ कै।
तिन्हूँ मैं चार्‍यौ ओर देखि बात करै तम
राखै अभ्यास नीद भूख बैन चाइ कै।
बडोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई
अंते बैन मानै जो गुपाल कविराय कै ॥७॥

बिना ही विचारै कछू करियै न काम, वस्तु
काहू की मैं मन न लईयै कहूँ जाइ कै।
दुष्टन तें राखै न भलाई की भरोसो, बिन
काम कै परेहू बानि जानियै सुभाय कै।
कारज जो कोई आज होइ सबै जारौ, ताकौ
कलि कौ भरोसो नहि कीजै अलसाइ कै।
बडोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई
अंतै बैन मानै जो गुपाल' कविराय कै ॥८॥

सतपुरसन सौं न कहियै कठोर वैन
माथे न चडैये छोटे मांनुस कों लाइ के ।
काहू कों न कीजें मुपत्यार घर आपने, न
कीजें मुपत्यारी पर घर कहूँ जाइ के ।
झगरे पुराणे कौ अचार नहि कीजें, पर
वस्तु में न वस्तु निज धरिये मिलाय के ।
बड़ोई चतुर होइ चलें यनि चाल जोई
अेते वेन माने जो 'गुपाल' कविराय के ॥९॥

निज धन वस्तु कौ जु भेद काहू कों न दीजे,
भाई–चारे सों बिगारियें न रिसियाय के ।
धीरज ते करें काम, काहू को न पोटी कहै,
काहू के बिगार को न माम हूजे जाय के ।
झगरौ विगार काहू ते न कत्री कीजे औ' रु
परको परपिवें न वल जोम पाइ के ।
बड़ोई चतुर होइ चलें यनि चाल जोई
अेते वेन माने जो 'गुपाल' कविराय के ॥१०॥

काहू सों न निज पांन–पांन साझें रापें, पुनि
सूर्य ते पहल नींद तजियें मुभाइ के ।
क्रोध के वषत मुष मौन ह्वैके रहै, ताके
परवस ह्वै अनीति होइ न दुपाइ के ।
घोंटुन में सीस कवि रापि के न बेंठे, बेंठे
दरजा सथान पहचांनि सभा पाइ के ।
बड़ोई चतुर होइ चलें यनि चाल जोई
अेते वेन माने जो 'गुपाल कविराय के ॥११॥

पान धरियै न वक्यो काहू को मुजन में,
रानि कौं नगन अुठियै न कहू जाइ के ।
वड पुरमनते न चलो वटि आगे, वात
काहू की मैं आप अुठि बोलियै न धाइ के ।
नगन पीठि पसू पै सवार नहि हूजे, पीछे
कीजियै बडाई मुख प न कीजै आइ के ।
बडोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई,
ऐते बैन मानै जो 'गुपाल' कविराय क ॥१२॥

मत्त अरु वावरे ते बात नहीं करे, लोभ
काजे दुरमति नहि पोवे कहुँ जाइ कै ।
आपनों किहू को केवे वैरी न बनायें रहै
झगरा लराई ते अलग मुख नाइ के ।
अँगूठी, रुपैया, छला विना कहुँ रहियै न
कहियै जो बैन मुख कहियै मुभाइ क ।
बडोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई
ऐतें बैन माने जो गुपाल कविराय के ॥१३॥

मिथ्या बोलियै न औ' महज सौह पाइयै न
भूलियै न अुपकार काहू को कराइ क ।
निकमा न रहि सबै आदरतें रावै, नाते
आपनो भी आदर अधिक होइ जाइ कै ।
गई वस्तु कौ न पीजे सोच मन माहि, वैरी
को न निरवल कबी जानियै दुपाय क ।
बडोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई
ऐतै बैन मानै जो गुपाल' कविराय के ॥१४॥

मन में न राखे पोट टोज सों न रोपे बाद
मन भय राखे नित मृत्यु को अघाइ के ।
द्वै मनुष जहा बतरात तहां जाइयें न,
समय विचारि बात कहियें बुलाइ के ।
प्रीति करि सेवा कीजे साध, गऊ, ब्राह्मन की
बात नुकसान वही सुतेज सुनाइ के ।
बड़ोई चतुर होइ, चलै यनि चाल जोई
अेते बैन माने जो 'गुपाल' कविराय के ॥१५॥

कारन रहहु भगवान की भगति तुमें
चाहत है जोई तिसे चाहो तुम जाइ के ।
काम काम के सों नित काम लेने रहो ओ
लितूर वावरे सों दूरि रहियें सु जाइ के ।
क्रोध के समें में कछु अरज न करो, आसमी
के दुष देने में न राजी होउ आइ के ।
बड़ोई चतुर होइ चलैयन चाल, जोई
अेते बैन माने जो 'गुपाल' कविराय के ॥१६॥

हित गुरदेस, ग्रंथ कविन सों सुनें, बात
कहिवे को होइ न, न जिसें कहो जाइ कै ।
नहिं मांगने की होइ, जिमें मति मांगो, हरि—
अेक काम कों न जल्द कीजे कहुँ चाइ के ।
अेक बेर लें लई परक्षा कहु जाकी, ताकी
दूसरें परक्षा फेरि कीजिये न आइ के ।
बड़ोई चतुर होइ चलै यनि चाल जोई
अेते बैन मानें जो गुपाल कविराय के ॥१७॥

झूजै न जमान, नहिं पेंचियै कमान, कूआ
फांदियै न, पेलियै न जूआ धन पाई कै ।
चलियै न सांझ, कहूं रहियै न मांझ, औ'
अहार–विवहार मे लाज कीजै जाइ कै ।
मरें कौं न गारि दीजै, बोल ना परे कौं औ'
अघटियै न कबू कुछु काहू कौं पवाइ कै ।
कहोई चतुर होइ चलें इनि चाल जोई
मेरे बैन मानैं जौ 'गुपाल' कविराय कै ॥१८॥

इति श्री दंपति वाक्य विलास नाम काव्ये निति उपदेश वर्नन
अष्टविंशो विलास

अथ ज्ञान अुपदेस

याते स्वारथ सहनि करि, परमारथ को काम ।
हायन रे अुद्यम करो, मुपते सुमिरो राम ॥

यह 'गुपाल' कवि सीष मुनि, कीनो अुद्यम जोइ ।
स्वारथ ही के करन में परमारथ जिमि होइ ॥

यांविधि नुप गजन सदा श्रीवृन्दावन धाम ।
दरनि वाक्य विलास में मगन आठहु जाम ॥

कवि 'गुपाल' यह जगत हित, कीनो वाक्य विनोद ।
अब अपने रुजिगार, मुनि सब कोअू पावत मोद ॥

मतमें दोष निकारि तिय, अुपजायो दृढ ग्यान ।
तृष्णा कों निरवर्त्त करि भजवायो भगवान ॥

विधि के या परपच मे, मिश्रत गुण अरु दोस ।
तिनके गुण औगुनन कों जानत जिनकों होस ॥

विनजानें गुन दोस के, होइ न संगृह त्याग ।
त्याग किये बिन होत नहीं, हरि चरनन अनुराग ॥

बिन अनुराग मिलै नहीं, चारि नरै की मुक्ति ।
त्यागें मुकति मिलै नहीं, प्रभु की पूरन भक्ति ॥

सो सुभगति भगवान की, गावत वेद पुराण ।
ता तिय को निज पतिहि में, सुलभ करि दई आनि ॥

'कवि गुपाल' कों, त्यार मन, हरि में दियो लगाय ।
ससारिन रुजिगार कों, सुप-दुप दियो दिपाय ॥

षटक छुटामन जगत को, अुपजावन हिय भक्ति।
दंपति वाक्य विलास कवि किये गुपाल निसक्ति॥
रस सागर दे आदि बहु, किये ग्रंथ अभिराम।
कठिन अर्थ' रु श्लेषयुत, कीने तिनमें बाम॥

कवित्त

दंपति विलास रस सगार सुभय पच
बधाई काव्य प्रश्नोत्तर षटरितु भीन है।
चीर हर्ण लीला, दानलीला मानलील, वन–
भोजन की लीला, वनी वेनु–गीत, चीने है।
दसम कवित, अल्किनामा, नखसिख, गुरकोमदी
जमुनगन अष्टक नवीने है।
ब्रज जात्रा ग्रंथ औ' वृन्दावन विराम, आदि
अष्टादस गृन्थ ये गुपाल कवि कीनेज है॥१॥

दोहा

सब कोऊ समझें न जिह, समझें ताहि प्रवीन।
यात लौकिक गृन्थ यह कीनो सुगम नवीन॥
समझे मूजिम देखि कें, कियौ गृन्थ गन्नाम।
आनु कालि के नरन कौं, मुनि मन होइ हुलास॥

सामयिक रुचि

आल्हखड ढोलादि दे, अैसी अैसी बात।
यन के रिझवैया बहुत, या जग में विख्यात॥

कवित्त

आल्हखड, ढोला, हीर–रांझ यार पूतरो की
गारे बारे वदन में, मनि गह्–गहो है।
इस्क लसे मजनू का गावत निहाल दे
छबीलिया भटियारी मस्त बुद्धि रहि गई है।

दीन वपत.जी, माधवानल की कथा बहु
किस्सा औ' फरोमिन में, मति महि गई है।
कहत 'गुपाल' अ नुहानि के जमाने बीच
अैसी–अैसी बातन की चाह रहि गई है ॥२॥

दोहा

जे . तगवि कविता करें रही न निन की बूझ।
याते मन को मारि कवि, मत्र सौ रहे अबूझ' ॥

बद पन्यों, जोतिष, पुराण, पडिताई, 'न्याय
नीति, धर्म, सास्त्र की न बात कान दई है।
बेदन रचा की नहिं, ज्ञान परचा की नहिं,
हरि अरचा की, चरचा की बात गई है।
बहु पुन्य पाट की न, सुधरम बाट की न,
परच के काट की न, काहू मति लई है।
कहत 'गुपाल' आजकाल के जमाने बीच
अैसी अैसी बातन की चाह उडि गई है ॥३॥

शान सूरताई सील साहस, सहूर, सुध,
मरम, सरुप, सरधा की सरमाति रही।
भजन 'गुपाल' भाउ भगति भलाई, भर्म
भादर, भरोसो, भीग भाइप की पांति रही।
दान, सनमान, पान–पांन, राग–रंग, अैस
काव्य चरचा की चतुराई रीति भांति रही।
मीत की मिताई मरनागति सहाई, आदि
अैसी बात अब कलि-काल में ले जाति रही ॥४॥

---

१. है. बनिताई २. है थल थलो ३. है जाति रहो ४. अगूझ

मनि भई भिष्ट, पाप छाय गर्यौ सिष्टि, माझ
पर तिय छोडि, परतिय धरनें लगे।
धनवारो देखि गुरु, चेला कौ करन लागे,
झगरि-झगरि बाप-बेटा लरने लगे।
धनरुजिगार की घटाई भई माझ,
बिना अन्न नर सब भूखे मरनें लगे।
'कहत गुपाल" बरसें न मेघ माल, याते
कलि की कुचाल ते अकाल परनें लागे ॥५॥

धरमते हीन औ' मलीन पर तिय लीन,
बिन रुजिगार, सब दुख भरने लगे।
कीरति, प्रताप, धन, धान्य, परसपति कौ
आपुस में देखि-देखि नर जरनें लगे।
ताप सौं तपत, बेटा बाप ते कँपत नाहि,
पाय के सपत झूठी, पाप करने लगे।
कहत 'गुपाल' बरसें न मेघमाल याते
कलि की कुचाल ते अकाल परनें लगे ॥६॥

हिंसक, हरामजादे, हिजरा, हरीफन, को
चाह रही मीठी मुख आगें कहै तिनकी।
कपटी, कुकर्मी, डिम्मधारी, औ डिफालिन, की
अनिपुष्ट स्यालन नो, लीयै रहै मन की।
कहत 'गुपाल' चतुराई की न बूझ रही
रह गई चाह भारी चोर चुगलन की॥
धूम मसखरी, औं धूमामदी बरामदी की,
अब कलिकाल में कमाई रही इन की ॥७॥

दोहा
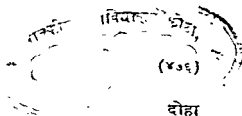
यातै 'मुकव गुपाल' औ, देसु दोस मति कोइ ।
जामूजिम*देषी हवा, ता सम बरनी सोइ ॥

गृंथ अनुपम यथामति बरन्यौ 'मुकवि गुपाल' ।
याके कंठ करैं बड़ौ, वुद्धि होइ ततकाल ॥

नरनारीं मूरष मुघर, सब के अुमगे गात ।
राज-सभा डुनभान नें परै न पार्नी यात ॥

०औरन की झूठी कहै, मांची निज ठहराइ ।
तासों कोई बात में कोइ न जीतै प्राइ ॥

विछुरन दुष्यः दुराय तिय, किय निषेध्र आभास ।
आछें यालंकार को कियो गृथ परगास ॥

०कवि गुपाल बरनन कर्यौ, मन वुधि को मवाद ।
तार्कों मुनि गुनि रसिक जन, लेभु मकन मिलि स्वाद ॥

फल स्तुति

दंपति वाक्य विलास कौं पढ़ै मुनै चितलाइ ।
कोभू बातन के करन,[१]हारि न आवै ताइ[२] ॥

सब जग[३]दुष मय जानि कें, हरि-में लागै चित ।
भजन भावना भगनि में पड्यो रहै निन नित ॥

इतिश्री दंपतिवाक्य विलास नाम काव्ये फलस्तुति वर्णन नाम अष्टाविंशो विलास

---

* यह दोहा नहीं है । १. है- चम २. है- रजगारन ३. है में
४. है- जाहि ५. है- उयम मे